अंक 305 वर्ष 61

भाषा

नवंबर–दिसंबर 2022

फ़ीजी विशेषांक

भाषा
नवंबर–दिसंबर 2022(विशेषांक)

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

संपादकीय कार्यालय

संपादक भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

अमित शाह

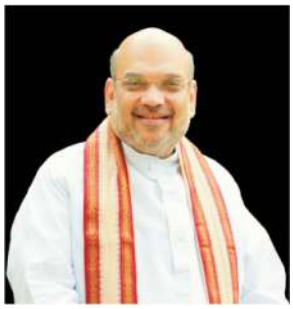

सत्यमेव जयते

गृह मंत्री एवं सहकारिता मंत्री
भारत सरकार

संदेश

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय का आगामी अंक फीजी में आयोजित होने वाले विश्व हिन्दी सम्मेलन पर केंद्रित है। जो प्रशंसनीय है।

संविधान के अनुच्छेद 351 का अनुपालन करते हुए केंद्रीय हिन्दी निदेशालय अपनी महत्वपूर्ण कार्य योजनाओं के द्वारा न केवल हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसाद का महत्वपूर्ण काम कर रहा है अपितु भाषाई माध्यम द्वारा देश को एक सूत्र में पिरोने का भी प्रयास कर रहा है। किसी भी देश की सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों को अक्षुण्ण बनाए रखने में भाषा की एक अहम भूमिका होती है। इस गुरुतर दायित्व का निर्वन भारत में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा कुशलतापूर्वक किया जा रहा है, जो सराहनीय है।

माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने विभिन्न मंचों पर हिन्दी में संवाद कर देश ही नहीं अपितु विदेशों में भी हिन्दी को गौरवान्वित किया है, जो हमारे लिए अनुकरणीय है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारे सामूहिक एवं सार्थक प्रयासों से अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हिन्दी भाषा के विकास के प्रति कृत संकल्प रहना होगा।

मैं, 'भाषा' पत्रिका के संपादक मंडल को अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करते हुए 12वें विश्व हिन्दी सम्मेलन की सफलता की कामना करता हूँ।

(अमित शाह)

वसुधैव कुटुम्बकम्
One Earth. One Family. One Future

विदेश मंत्री
भारत

सत्यमेव जयते

आजादी का अमृत महोत्सव

Minister of External Affairs
India

संदेश

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि केंद्रीय हिंदी निदेशालय फिजी में होने वाले '12वें विश्व हिंदी सम्मेलन' के अवसर पर अपनी प्रतिष्ठित द्विमासिक पत्रिका 'भाषा' के आगामी अंक को फिजी केंद्रित विशेषांक के रूप में प्रकाशित कर रहा है।

हम देख रहे हैं कि आज विश्व संचरण काल से गुज़र रहा है जिसमें भाषाओं की महती भूमिका है। भाषा के माध्यम से ही कोई पीढ़ी अपने संस्कारों को भावी पीढ़ियों को सौंपती है।

समय समय पर हिंदी लेखकों के साथ-साथ हिंदीतर भाषी रचनाकारों की हिंदी रचनाओं व अनूदित रचनाओं का प्रकाशन निश्चित रूप से भाषाई सौहार्द्र को बढ़ावा देता है और सहयोगात्मक वातावरण बनाता है। मैं निदेशालय को इस प्रयास के लिए बधाई देता हूँ।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय अपनी सक्रियता व गति को बनाए रखेगा ऐसी कामना है। फिजी में हिंदी की विकास यात्रा को दृष्टिगत रखते हुए केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित की जाने वाली द्विमासिक पत्रिका 'भाषा' के सम्मेलन विशेषांक के लिए हार्दिक शुभकामनाएं।

(सु. जयशंकर)

172, South Block, New Delhi-110011 Tel : 91-11-23011127, 23011165 E-mail : diream@mea.gov.in

धर्मेन्द्र प्रधान
ଧର୍ମେନ୍ଦ୍ର ପ୍ରଧାନ
Dharmendra Pradhan

सत्यमेव जयते

आज़ादी का अमृत महोत्सव

मंत्री
शिक्षा; कौशल विकास
और उद्यमशीलता
भारत सरकार
Minister
Education; Skill Development
& Entrepreneurship
Government of India

संदेश

यह अत्यंत प्रसन्नता का विषय है कि फीजी की धरती पर दिनांक 15-17 फरवरी, 2023 को 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। सन् 1975 में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन नागपुर में किया गया और तब से लेकर अब तक यह आयोजन कई महत्वपूर्ण पड़ाव पार कर चुका है। भारत समेत विश्व के कई देशों में विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन सफलतापूर्वक किया जा चुका है। इसी कड़ी में आगामी 12वां विश्व हिंदी सम्मेलन फीजी में आयोजित किया जा रहा है।

भारतवर्ष के करोड़ों देशवासियों की भाषा हिंदी विश्वपटल पर अपना परचम लहरा रही है। राष्ट्र की महत्वपूर्ण चेतना उसकी अस्मिता है। यह सांस्कृतिक और राष्ट्रीय स्वरूप में सभी देशवासियों के हृदय में स्थित होती है। 'वसुधैव कुटुंबकम' की विशाल भावभूमि में संपूर्ण मानवता विश्व कल्याण के पथ पर अग्रसर रहती है। 'शुभम् करोति' के मार्ग पर रत रहते हुए जन-जन का स्वर बनती हुई भाषा और साहित्य संपूर्ण देशवासियों के मध्य भाषिक आदान-प्रदान के माध्यम से संपूर्ण देशवासियों के मध्य सामंजस्य और एकात्मक भाव को सुदृढ़ करने का कार्य करती है।

फीजी में 15-17 फरवरी, 2023 की अवधि में 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। इस आयोजन की पृष्ठभूमि में संपूर्ण विश्व में हिंदी की प्रसिद्धि और प्रचार-प्रसार की भावना निहित रही है। हिंदी भाषा आज विश्व में अपना विशेष स्थान रखती है और नित नए कीर्तिमान स्थापित कर रही है। हिंदी की लोकप्रियता आज वैश्विक धरातल पर सिद्ध हो रही है।

मैं केंद्रीय हिंदी निदेशालय की द्वैमासिक पत्रिका "भाषा" के आगामी अंक 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन केंद्रित विशेषांक के प्रकाशन की सारस्वत योजना को शुभकामनाएँ देता हूँ। यह विशेषांक निश्चित ही हिंदी की प्रगति में अपना विशिष्ट योगदान देगा।

(धर्मेन्द्र प्रधान)

MOE - Room No. 301, 'C' Wing, 3rd Floor, Shastri Bhavan, New Delhi-110 001, Phone : 91-11-23782387, Fax : 91-11-23382365
MSDE - Room No. 516, 5th Floor, Shram Shakti Bhawan, Rafi Marg, New Delhi-110001, Phone : 91-11-23465810, Fax : 011-23465825
E-mail : minister.sm@gov.in, minister-msde@gov.in

नित्यानन्द राय
NITYANAND RAI

गृह राज्य मंत्री
भारत सरकार
नार्थ ब्लाक, नई दिल्ली – 110001

MINISTER OF STATE FOR
HOME AFFAIRS
GOVERNMENT OF INDIA
NORTH BLOCK,
NEW DELHI - 110001

संदेश

भारत के संविधान में हिंदी राजभाषा के पद पर आसीन है। स्वाधीनता के समय से ही हिंदी संपूर्ण भारत में स्वतंत्रता की भावना को जगाने हेतु उद्बोधन का कार्य करती आई है। विभिन्न लेखकों एवं रचनाकारों ने अपनी लेखनी से जन-जन की आवाज को बुलंद किया है। हिंदी समस्त भारतवासियों एवं विदेशों में रह रहे भारतवंशियों के मध्य भाषाई एकसूत्रता को मजबूती प्रदान करती है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं संवर्धन हेतु विभिन्न योजनाओं के माध्यम से अपने महत्वपूर्ण प्रकाशन माध्यम से गुणवत्तापरक साहित्य को पाठकों/शोधार्थियों एवं ज्ञान पिपासुओं तक पहुंचाने का प्रशंसनीय कार्य करता है।

12वें विश्व हिंदी सम्मेलन, फिजी के आयोजन के अवसर पर केंद्रीय हिंदी निदेशालय फिजी केंद्रित विशेषांक का प्रकाशन का कार्य कर रहा है। यह विशेषांक भारत एवं भारतेतर-भाषियों के मध्य एक सेतु का कार्य करेगा जिससे ज्ञान की ज्योति चतुर्दिक प्रकाशित होगी। दिनांक 15-17 फरवरी,2023 के दौरान 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन, फिजी के आयोजन पर केंद्रीय हिंदी निदेशालय की 'भाषा' द्वैमासिक पत्रिका के विशेषांक के प्रकाशन हेतु मैं असीम शुभकामनाएं प्रदान करता हूँ।

शुभकामनाओं सहित,

(नित्यानन्द राय)

नई दिल्ली।
06 जनवरी, 2023

निशिथ प्रामाणिक
NISITH PRAMANIK

सत्यमेव जयते

गृह राज्य मंत्री
भारत सरकार
MINISTER OF STATE FOR
HOME AFFAIRS
GOVERNMENT OF INDIA

Azadi Ka Amrit Mahotsav

09 JAN 2023

संदेश

यह अत्यंत हर्ष की बात है कि केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय अपनी द्वैमासिक पत्रिका '**भाषा**' के नवबंर-दिसंबर, 2022 अंक को फ़िजी में आयोजित किए जा रहे 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन पर केंद्रित विशेषांक के रूप में प्रकाशित कर रहा है।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार तथा संवर्धन के साथ ही हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में विकसित करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। '**भाषा**' पत्रिका निदेशालय का मुख-पत्र है, जिसमें हिंदी लेखों के साथ-साथ भाषा-विज्ञान, व्याकरण, तुलनात्मक भारतीय साहित्य सहित साहित्य की विभिन्न विधाओं एवं सामायिक विषयों पर ज्ञानवर्धक और सूचनाप्रद लेख प्रकाशित होते रहते हैं।

यह हमारे लिए गौरव की बात है कि 12वां विश्व हिंदी सम्मेलन दिनांक 15-17 फरवरी को फ़िजी में आयोजित किया जा रहा है, जिसमें विश्व भर से हिंदी साहित्यकार, विद्वान, कवि और हिंदी सेवी सहभागिता करेंगे। विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन से जहां एक ओर पूरे विश्व के हिंदी प्रेमियों को आपसी विमर्श के लिए एक सशक्त मंच प्राप्त होता है, वहीं दूसरी ओर हिंदी की वैश्विक स्वीकार्यता को आगे बढ़ाने का कार्य भी किया जाता है। इस शुभ अवसर पर निदेशालय द्वारा फ़िजी में हिंदी की विकास यात्रा पर आधारित विशेषांक का प्रकाशन एक सराहनीय प्रयास है।

मैं '**भाषा**' पत्रिका से जुड़े सभी कार्मिकों को हार्दिक बधाई देता हूं तथा आशा करता हूं कि पत्रिका अपने उद्देश्यों को प्राप्त करेगी।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित,

(**निशिथ प्रामाणिक**)

अजय कुमार मिश्रा
AJAY KUMAR MISHRA

गृह राज्य मंत्री
भारत सरकार
MINISTER OF STATE FOR
HOME AFFAIRS
GOVERNMENT OF INDIA

संदेश

भारत के संविधान में हिंदी राजभाषा के पद पर आसीन है। स्वाधीनता के समय से ही हिंदी संपूर्ण भारत में स्वतंत्रता की भावना को जगाने हेतु उद्बोधन का कार्य करती आई है। विभिन्न लेखकों एवं रचनाकारों ने अपनी लेखनी से जन-जन की आवाज को बुलंद किया। हिंदी समस्त भारतवासियों एवं विदेशों में रह रहे भारतवंशियों के मध्य भाषाई एकसूत्रता को मजबूती प्रदान करती है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं संवर्धन हेतु विभिन्न योजनाओं के माध्यम से अपने महत्वपूर्ण प्रकाशन माध्यम से गुणवत्तापरक साहित्य को पाठकों/शोधार्थियों एवं ज्ञान पिपासुओं तक पहुँचाने का श्लाघनीय कार्य करता है।

12वें विश्व हिंदी सम्मेलन, फीजी के आयोजन के अवसर पर केंद्रीय हिंदी निदेशालय फीजी केंद्रित विशेषांक का प्रकाशन का कार्य कर रहा है। यह विशेषांक भारत एव भारतेतर-भाषियों के मध्य एक सेतु का कार्य करेगा जिससे ज्ञान की ज्योति चतुर्दिक प्रकाशित होगी। दिनांक 15-17 फरवरी, 2023 के दौरान 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन, फीजी के आयोजन पर केंद्रीय हिंदी निदेशालय की 'भाषा' द्वैमासिक पत्रिका के विशेषांक के प्रकाशन हेतु मैं असीम शुभकामनाऐं प्रदान करता हूँ।

शुभकामनाओं सहित,

(अजय कुमार मिश्रा)

स्थान :- नई दिल्ली

दिनांक :- 29.12.2022

Dr. RAJKUMAR RANJAN SINGH
डॉ. राजकुमार रंजन सिंह

सत्यमेव जयते

राज्य मंत्री
विदेश और शिक्षा मंत्रालय
भारत सरकार
MINISTER OF STATE
FOR EXTERNAL AFFAIRS
AND EDUCATION
GOVERNMENT OF INDIA

Date 20th Dec. 2022

शुभकामना संदेश

मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है कि केन्द्रीय हिंदी निदेशालय दिनांक 15-17 फरवरी, 2023 की अवधि में आयोजित होने वाले 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर अपनी प्रतिष्ठित पत्रिका 'भाषा' के नवम्बर-दिसम्बर, 2022 अंक को फीजी केन्द्रित विशेषांक के रूप में प्रकाशित कर रहा है।

केन्द्रीय हिंदी निदेशालय अपने स्थापना काल से ही हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा संवर्धन के साथ ही हिंदी को सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है।

मुझे पूरा विश्वास है कि निदेशालय के द्वैमासिक पत्रिका 'भाषा' में प्रकाशित हिंदी लेखकों तथा हिंदीतर भाषी रचनाकारों की देवनागरी लिपि में लिखित मूल एवं हिंदी भाषा में अनूदित रचनाओं को पढ़कर पाठकों में हिंदी भाषा के प्रति जागरूकता और प्रेरणा मिलती रहेगी।

मैं एक बार पुन: केन्द्रीय हिंदी निदेशालय को इनकी प्रतिष्ठित द्वैमासिक पत्रिका 'भाषा' का नवम्बर-दिसम्बर, 2022 का अंक फीजी केन्द्रित विशेषांक के रूप में सफल प्रकाशन हेतु अपनी हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

शुभकामनाओं सहित,

(डॉ. राजकुमार रंजन सिंह)

आज़ादी का अमृत महोत्सव

अन्नपूर्णा देवी
ANNPURNA DEVI

सत्यमेव जयते

राज्य मंत्री
शिक्षा मंत्रालय
भारत सरकार
MINISTER OF STATE
FOR EDUCATION
GOVERNMENT OF INDIA

23 DEC 2022

शुभकामना संदेश

हिंदी के प्रचार-प्रसार की दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण कडी विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन है। अब तक 11वां विश्व हिंदी सम्मेलनों का आयोजन किया जा चुका है। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर, भारत में 1975 में आयोजित किया गया। दिनांक 15-17 फरवरी, 2023 के दौरान 12वां विश्व हिंदी सम्मेलन, फीजी में आयोजित किया जाएगा। यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन के अवसर पर केंद्रीय हिंदी निदेशालय अपने महत्वपूर्ण प्रकाशन 'भाषा' द्वैमासिक पत्रिका का 12वां विश्व हिंदी सम्मेलन केंद्रित विशेषांक का प्रकाशन करने जा रहा है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय हिंदी के प्रचार-प्रसार की दिशा में विभिन्न भाषा - भाषियों के मध्य समरसता स्थापित करते हुए निरंतर श्रेष्ठ साहित्य का प्रस्तुतिकरण भाषा पत्रिका में करता आ रहा है।

मैं 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन के अवसर पर केंद्रीय हिंदी निदेशालय की द्वैमासिक पत्रिका 'भाषा' के विशेषांक के प्रकाशन हेतु अनेक शुभकामनाएं देती हूँ। भाषा पत्रिका निरंतर भाषाई प्रतिबद्धता के मार्ग पर अग्रसर है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय की द्वैमासिक पत्रिका 'भाषा' के विशेषांक के प्रकाशन हेतु मेरी मंगलकामनाएं।

शुभकामनाओं सहित,

(अन्नपूर्णा देवी)

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

के. संजय मूर्ति, भा.प्र.से.
सचिव
K. SANJAY MURTHY, IAS
Secretary
Tel. : 011-23386451, 23382698
Fax : 011-23385807
E-mail : secy.dhe@nic.in

भारत सरकार
Government of India
शिक्षा मंत्रालय
Ministry of Education
उच्चतर शिक्षा विभाग
Department of Higher Education
127 'सी' विंग, शास्त्री भवन, नई दिल्ली–110 001
127 'C' Wing, Shastri Bhawan, New Delhi-110 001

शुभकामना – संदेश

विश्व हिंदी सम्मेलन का उद्देश्य वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा और साहित्य को बढ़ावा देना है। इसके साथ ही भारतीय संस्कृति के उदात्त मानव-मूल्यों का प्रचार प्रसार करना भी इसका उद्देश्य है। विदेशों में बसने वाले भारतीय मूल के लोग अपने साथ इस देश की माटी की खुशबू भी लेकर गए। वहाँ उन्होंने अपनी भाषायी पहचान और अपनी संस्कृति का भी बीजारोपण किया। यही कारण है कि विदेशों में एक बड़ी संख्या हिंदी और अन्य भारतीय भाषा बोलने वालों की भी है। फीजी भी एक ऐसा ही देश है जहाँ हिंदी को आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त है। आज भी रेडियो हिंदी, हिंदी के समाचार-पत्र और सिनेमा वहाँ हमारी सांस्कृतिक विरासत को सहेजनेका काम कर रहे हैं। ऐसे में भाषा पत्रिका का फीजी पर केंद्रित यह विशेषांक इस कड़ी को और मजबूत करेगा। उम्मीद करता हूँ कि विश्व हिंदी सम्मेलन का यह आयोजन सफ़ल होगा। इसके साथ ही भाषा पत्रिका का यह अंक भी अपनी विशेष पहचान बनाएगा। भाषा पत्रिका की पूरी टीम को मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनाएं।

(के. संजय मूर्ति)

13 जनवरी, 2023
नई दिल्ली

HIGH COMMISSION OF THE REPUBLIC OF FIJI

18, जनवरी 2023

शुभकामना संदेश

यह बहुत ही प्रसन्नता का विषय है कि जन-जन की भाषा हिंदी की लोकप्रियता विश्वपटल पर स्थापित है। हिंदी को विश्व के एक बड़े भू-भाग में स्थापित होने में अनेक संघर्षों और मुश्किलों का सामना करना पड़ा। भारतभूमि से विभिन्न देशों में बंधक बनाकर ले जाए गए गिरमिटिया मजदूरों के असीम धैर्य और अदम्य साहस ने हिंदी का बीजारोपण भारत के सुदूरवर्ती क्षेत्रों में किया। आज हिंदी की यह बेल चतुर्दिक अपनी शाखाएँ फैला रही है। विभिन्न पर्व- त्योहार,धार्मिक अनुष्ठानों और दादी-नानी की कहानियों के माध्यम से भारतवंशियों ने विश्व के कई देशों में हिंदी का संवर्धन किया है। फ़ीजी में दिनांक 15-17 फरवरी,2023 को बारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन विश्वबंधुत्व की भावना को हिंदी भाषा के माध्यम से प्रचारित-प्रसारित करने में अग्रणी भूमिका निभाएगा।

मैं इस पुनीत अवसर पर केंद्रीय हिंदी निदेशालय की प्रतिष्ठित पत्रिका 'भाषा' (द्वैमासिक) के बारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन पर केंद्रित विशेषांक के सफल प्रकाशन हेतु शुभकामनाएँ देता हूँ।

शुभकामनाओं सहित

FIJI HIGH COMMISSION NEW DELHI INDIA

कमलेश शशि प्रकाश
फीजी उच्चायुक्त

2/27, Shanti Niketan, New Delhi 110 021, INDIA
Phone: +91-11-46564574, Fax: +91-11-46564573
Email: infofiji.in@gmail.com

सत्यमेव जयते

निदेशक
DIRECTOR

Phone : Off. : 26100760, 26105211
Tele Fax No. : 27100758, 26101220
www.hindinideshalaya.nic.in

तार : राजभाषा
Tele : RAJBHASHA

भारत सरकार
GOVERNMENT OF INDIA
केंद्रीय हिंदी निदेशालय
CENTRAL HINDI DIRECTORATE
शिक्षा मंत्रालय
MINISTRY OF EDUCATION
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
(Department of Higher Education)
पश्चिम खण्ड-VII, रामकृष्ण पुरम्
WEST BLOCK-VIII, R.K. PURAM

नई दिल्ली-110066
New Delhi-110066

दिनांक :
Date : 20/01/2023

संदेश

केंद्रीय हिंदी निदेशालय की प्रतिष्ठित 'भाषा' द्वैमासिक पत्रिका प्रकाशन के गौरवपूर्ण 61 वर्ष पूर्ण कर चुकी है। हिंदीभाषी पाठकों, अध्येताओं, शोधार्थियों, रचनाकारों के मध्य भाषा पत्रिका बहुपठित और लोकप्रिय है। हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार और संवर्धन हेतु समर्पित 'भाषा' पत्रिका निरंतर भाषिक समृद्धि और श्रेष्ठ साहित्य को पाठकों तक पहुँचाने में सन्नद्ध है। फीजी में आयोजित 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन के अवसर पर 'भाषा' पत्रिका के विशेषांक का प्रकाशन हिंदी की गौरवगाथा की कड़ी में महत्वपूर्ण योगदान देगा। आशा है कि यह विशेषांक सुविज्ञ पाठकों के लिए उपयोगी होगा तथा वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिंदी के उत्थान में महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

इस विशेषांक के प्रकाशन से जुड़े सभी सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनके सहयोग से इस विशेषांक का प्रकाशन संभव हो पाया।

शुभकामनाएँ

जय हिंद!

नागेश्वर राव

(प्रोफेसर नागेश्वर राव)

सत्यमेव जयते

भाषा

नवंबर–दिसंबर 2022(विशेषांक)
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक–16)

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर नागेश्वर राव

परामर्श मंडल
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित
सुश्री ममता कालिया
प्रो. सत्यकाम
प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय
प्रो. पूरनचंद टंडन
प्रो. शैलेंद्र शर्मा
श्री रविशंकर रवि
डॉ. एम. गोविंदराजन
डॉ. जे.एल.रेड्डी

संपादक
डॉ. किरण झा

सह–संपादक
मीनाक्षी जंगपांगी
श्री प्रदीप कुमार ठाकुर
श्रीमती सौरभ चौहान

प्रूफ रीडर
श्रीमती इंदु भंडारी

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह
संजीव कुमार

**केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार**

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **61 अंक : 6 (305)**
नवंबर–दिसंबर 2022

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.education.gov.in
www.chd.education.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : cop-dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.education.gov.in
www.chd.education.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, कें. हिं. नि.,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

1. शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in → Quick Payment → Ministry (007 Higher Education) → Purpose (Education receipt) में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।
2. कृपया दिए गए बिंदुओं के आधार पर सूचनाएँ देते हुए संलग्न प्रोफ़ॉर्मा भर कर भेजें।
3. भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र निदेशालय की वेबसाइट www.chdpublication.education.gov.in से डाउनलोड किया जा सकता है।

मूल्य :			
1. एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	
2. वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3. पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	(डाक खर्च सहित)
4. दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5. बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से
आपने लिखा
संपादकीय
आलेख
फ़ीजी केंद्रित

1.	फ़ीजी का हिंदी वाङ्मय	विमलेश कांति वर्मा	9
2.	फ़ीजी में हिंदी पत्रकारिता के 110 वर्ष	जवाहर कर्नावट	16
3.	विश्व में हिंदी और फ़ीजी	करुणाशंकर उपाध्याय	25
4.	मानवीय संवेदनाओं की उदात्तता को प्रतिबिंबित करती फ़ीजी की हिंदी कविता	दिनेश चमोला	34
5.	फ़ीजी में भारतीय संस्कृति का डंका बजाती 'रामायण महारानी'	करुणा शर्मा	41
6.	सुब्रमनी के उपन्यासों में लोकसंपृक्ति के विविध संदर्भ	सुनील कुमार तिवारी	45
7.	हिंदी की जद्दोजहद में बिजी फ़ीजी	अरुणा घवाना	51
8.	फ़ीजी में हिंदी की अलख जगाती पत्र–पत्रिकाएँ और साहित्यकार	अख्तर आलम	58
9.	सुब्रमनी और उनका डउका पुरान	अरुण मिश्र	63
10.	फ़ीजी के हिंदी काव्य में प्रतिबिंबित भारतीय संस्कृति	हेमांशु सेन	67

विश्व के अन्य देशों पर केंद्रित

11.	दुर्गा : हस्तलिखित पत्रिका–1935	कमल किशोर गोयनका	74
12.	ऑस्ट्रेलिया में हिंदी	रेखा राजवंशी	88
13.	'गिरमिटिया जीवन' और मेरी कविताएँ	दीप्ति अग्रवाल	99
14.	मॉरिशस संघर्ष की त्रासद अभिव्यक्ति	हरप्रीत कौर	108
15.	विश्वमंच पर हिंदी का बदलता परिदृश्य	चिट्टि अन्नपूर्णा	114
16.	शतशाखी होता वटवृक्ष हिंदी का	राधेश्याम भारतीय	119
17.	प्रागैतिहासिक श्रीलंका और राम रावण चरित्र	अमिला दमयन्ति	131
18.	वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी के समक्ष चुनौतियाँ	राजेंद्र सहगल	136

कविता
फ़ीजी **से प्राप्त**

19.	चरखा	सुएता दत्त चौधरी	142
20.	गोवर्धन उठा लो	सुएता दत्त चौधरी	143

फ़ीजी की कविताएँ

‘कमला प्रसाद मिश्र काव्य संचयन,’
चयन एवं संपादनः ‘सुरेश ऋतुपर्ण,’
पुस्तक से साभार ‘कमला प्रसाद मिश्र’ की कविताएँ:

21.	फ़ीजी का एक लोकगीत	कमला प्रसाद मिश्र	144
22.	नान्दी की संध्या	कमला प्रसाद मिश्र	145
23.	यहाँ पहले सबेरा होता है	कमला प्रसाद मिश्र	146
24.	पितृभूमि प्रणाम	कमला प्रसाद मिश्र	147

अन्य देशों से प्राप्त

25.	मेरी भाषा	शैलजा सक्सेना	148
26.	ग्रीष्म के उजले लंबे दिन	सुरेशचंद्र शुक्ल	149

साक्षात्कार

27.	फ़ीजी के हिंदीसेवी डॉ. बृजलाल से वरिष्ठ पत्रकार सुनंदा वर्मा की अंतरंग बातचीत	सुनंदा वर्मा	150

यात्रा वृत्तांत

28.	फ़ीजी के घट–घट में राम	राकेश पांडेय	163
29.	मेरी यात्राओं में हिंदी दर्शन	ओमप्रकाश शर्मा ‘प्रकाश’	166

परख

30.	सामाजिक समस्याओं पर आधारित एकांकियाँ (वर्तमान हिंदी नाटक : 16 नाटक / नाटककार : डॉ. इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ)	निधि शर्मा	172

संपर्क सूत्र **177**

सदस्यता फॉर्म

निदेशक की कलम से

केंद्रीय हिंदी निदेशालय हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार में प्रमुखता से भारतीय भाषाओं में समाहित श्रेष्ठ साहित्य को पाठकों तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। भारतीय ज्ञान संपदा मूलतः मूल्यपरक वैचारिक सिद्धांतों पर आधारित है। इसकी आधारशिला पर ज्ञान की शतशाखी टहनियाँ सामाजिक संस्कृति को दृढ़ता प्रदान करती हैं। हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार की दिशा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने कई पड़ाव पार किए हैं। कालांतर में अनेक महत्वपूर्ण विशेषांकों का प्रकाशन किया गया। इन विशेषांकों में महत्वपूर्ण सामाजिक और साहित्यिक विषयों पर शोधपरक सामग्री प्रस्तुत की जाती है। वर्ष 2022 का मार्च–अप्रैल विशेषांक पूर्वोत्तर भाषा, साहित्य और संस्कृति विषय पर केंद्रित रहा। संपूर्ण पूर्वोत्तर की छटा और वैविध्य की झलक को समाहित करते हुए यह अंक भारतीयता के सौंदर्य को समेटने की एक सार्थक अभिव्यक्ति बना। इस वर्ष के 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन के अवसर पर केंद्रीय हिंदी निदेशालय भाषाई प्रतिबद्धता की भावना को सबल करने की दिशा में 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन को केंद्र मे रखते हुए यह विशेषांक प्रकाशित कर रहा है। विश्वफलक पर विराजमान हिंदी के विशाल स्वरूप को दर्शाता हुआ यह अंक आप सबके समक्ष प्रस्तुत है।

मैं केंद्रीय हिंदी निदेशालय के भाषा परिवार और इस अंक में सम्मिलित विद्वान लेखकों को साधुवाद देता हूँ और भविष्य में भी निरंतर सहयोग की आशा करता हूँ।

इस अंक को आप सबके समक्ष प्रस्तुत करने में अनेक विद्वानों ने आत्मिक उत्साहवर्धन और अपनी सकारात्मक अभिरुचि से संबल प्रदान किया। उन सभी विद्वानों और विशेषांक में सुसज्जित सामग्री के लेखक, रचनाकारों के प्रति हृदय से धन्यवाद अर्पित करता हूँ। विश्व फलक पर हिंदी की कीर्ति निरंतर बढ़ती रहे!

(नागेश्वर राव)

"आप मुझे जंजीरों में जकड़ सकते हैं,
कैद कर सकते हैं, यातना दे सकते हैं, यहाँ
तक कि आप इस शरीर को नष्ट कर
सकते हैं लेकिन आप मेरे विचारों को
कभी कैद नहीं कर सकते।"

महात्मा गांधी

संपादकीय

भारतवर्ष आज़ादी की 75 की वर्षगाँठ मना रहा है। 135 करोड़ देशवासियों के रक्त में जोश और उत्साह है। स्वाधीन भारत का स्वप्न देखने वाले स्वतंत्रता सेनानी अपने लहू की बूँद–बूँद से सिंचित कर भविष्य की संतति को खुले आसमान और स्वाधीन भारत में साँस लेने के लिए मातृभूमि को बेड़ियों से मुक्त कराया। बदले हुए वातावरण और स्वतंत्र परिवेश में भारत राष्ट्र की अस्मिता पुनः स्थापित हुई। पूरे देश में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। आज़ादी के संघर्ष के दिनों में समूचे देशवासियों को जोड़ने एवं अंग्रेजों के विरुद्ध आह्वान की ज्योति जगाने में हिंदी भाषा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिंदी और देवनागरी में वे सभी गुण विद्यमान थे जो भारतवर्ष की भाषाई विभिन्नता को एकसूत्र में पिरोने का कार्य कर सकती थी। राष्ट्रकवि दिनकर, मैथिली शरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, सुभद्रा कुमारी चौहान, भारतेंदु सरीखे रचनाकारों की धारदार लेखनी ने कविता, कहानी एवं पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से समाज को उद्बोधित करने का प्रशस्त कार्य किया। जहाँ आंदोलनकारी अपने प्राण की बाजी लगाकर स्वतंत्रता की बलिवेदी पर बलिदान देने को सन्नद्ध थे वहीं युद्ध और संघर्ष की भूमिका में लेखकों, कवियों, रचनाकारों ने अपनी लेखनी की धार से भारतीय जनमानस में निरंतर जागृति प्रदान करने का पुनीत कार्य किया। अंग्रेजों के विरुद्ध जहाँ प्रत्यक्ष विरोध और प्रदर्शन हो रहे थे वहीं वैचारिक स्तर पर स्वाधीनता की लड़ाई में भारतीयों के मानस में प्राण फूँकने का कार्य लेखक और रचनाकार करते रहे। इसके लिए अंग्रेजों की दमनकारी नीति के तहत कारावास भी झेलना पड़ा। राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त के शब्दों में 'आवहु सब मिली रोवहु भाई, भारत दुर्दशा अब देखी नहिं जाई।' जैसी दुर्धर्ष स्थिति से समूचा देश मुक्त हुआ।

14 सितंबर 1949 को स्वतंत्र देश की सरकारी कामकाज की भाषा हिंदी राजभाषा के पद पर आसीन हुई। संविधान सभा में मत पारित कर राजभाषा के पद पर विराजमान हिंदी को यहाँ तक लाने में हिंदी भाषियों का जितना योगदान है उतना ही देश के हिंदीतर प्रांतों के हिदी प्रेमी हिंदीतर भाषियों का भी है।

हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए सन् 1960 में भारत के राष्ट्रपति के आदेशानुसार केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना हुई। 'भाषा' द्वैमासिक पत्रिका सन् 1961 से निरंतर प्रकाशित होती चली आ रही है। भाषाई दाय के प्रति पूर्णतः सन्नद्ध और समर्पित पत्रिका 'भाषा' देशभर से एवं विदेशों में रचे जा रहे श्रेष्ठ साहित्य को प्रमुखता से स्थान देती है।

संविधान के अनुच्छेद 343–351 तक राजभाषा हिंदी के संबंध में व्यवस्थानुसार बहुत आगे तक का सफर तय कर चुकी और इसे विश्व फलक पर लोकप्रियता और प्रसिद्धि प्राप्त होने लगी। वैश्विक धरातल पर इसके बढ़ते कदम को और मजबूती प्रदान करने हेतु विश्व हिंदी सम्मेलन की संकल्पना की गई। सन् 1975 में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन 10 से 14 जनवरी, 1975 में नागपुर में किया गया तब से अब तक 11 विश्व हिंदी सम्मेलन भारत समेत विश्व के अनेक देशों में आयोजित किए जा चुके हैं। इसी कड़ी में 12वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन फ़ीजी में आयोजित किया जा रहा है। इस अवसर पर हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार में समर्पित केंद्रीय हिंदी निदेशालय की प्रतिष्ठित 'भाषा' द्वैमासिक पत्रिका का 12वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन पर केंद्रित विशेषांक का प्रकाशन किया गया है। इस विशेषांक में फ़ीजी में हिंदी की यात्रा को समेटे हुए आलेखों, रचनाओं, साक्षात्कार, कविता,

कहानी एवं संस्मरण सहित विश्व के अन्य कई देशों ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, नॉर्वे, श्रीलंका आदि से प्राप्त सामग्रियों से सुसज्जित यह विशेषांक देश एवं विश्वभर के हिंदी प्रेमी सुविज्ञ अध्येताओं के समक्ष प्रस्तुत है। इस विश्व हिंदी सम्मेलन की घोषणा के उपरांत समय की अल्पता में हर संभव प्रयास किया गया कि संपूर्ण विश्व के हृदय पर आसीन होने की ओर अग्रसर हिंदी की प्रगति और प्रचार–प्रसार में यह विशेषांक उपयोगी सिद्ध होगा। संपूर्ण देश और विश्व के कोने–कोने से लेखकों से प्राप्त सहयोग के प्रति हार्दिक धन्यवाद अर्पित करती हूँ जिनके बौद्धिक सकारात्मक सहयोग से यह विशेषांक आप सबके समक्ष प्रस्तुत हो पाया।

यह विशेषांक भारत से विश्व के विभिन्न देशों में ले जाए गए गिरमिटिया मजदूरों की जीवन यात्रा को आत्मसात करते हुए उनके अनथक श्रम और संघर्ष को प्रस्तुत करते हुए क्रमशः आगे बढ़ता है। फ़ीजी में आयोजित होने वाला यह सम्मेलन कई मायनों में महत्वपूर्ण है। फ़ीजी विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन अपनी भूमि पर प्रथम बार करने जा रहा है। इसलिए भी यह सम्मेलन बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि संपूर्ण विश्व 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन और 12वें विश्व हिंदी सम्मेलन के मध्य जीवन 'न भूतो न भविष्यति' के काल का साक्षी बना। काल का चक्र पूरी दुनिया और मानवता को अनेक पाठ पढ़ा गया। प्रत्यक्ष रूप से पारिस्थितिकी, जीवन–जगत का संतुलन और मूलरूप में संवेदना और सेवा के अमूल्य महत्व को रेखांकित कर गया। यह अवश्य है कि वैश्विक महामारी कोरोना ने बहुत कष्टप्रद स्थितियाँ उत्पन्न कीं परंतु संपूर्ण विश्व इसके निदान हेतु कृतसंकल्प हुआ। परिणामतः लॉकडाउन जैसी स्थितियों से होते हुए विश्व ने उस पर विजय हासिल किया। भारतवर्ष जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश का कोविड–19 के विरूद्ध किए गए प्रयास सराहनीय रहे। हमें पूर्ण विश्वास है मानवता सदैव प्रतिष्ठित होती रहेगी और यह संघर्ष जीवन का एक पक्ष बना रहेगा तभी संघर्ष के बीच जीवन की मुस्कान बिखरेगी।

विश्व के उन सभी देशों के उन पुरखों को समर्पित है यह विशेषांक जो गिरमिट मजदूर बनकर ले जाए गए परंतु उन्होंने अपने साथ रामायण, महाभारत और मानस को पोटलियों में सहेज कर हनुमान की भाँति हृदय में संजोए रखा और सुदूर देशों में हिंदी के बिरवे को पल्लवित पुष्पित किया। हिंदी की कीर्ति विश्व फलक पर अविरल उन्मुख रहे!

किरण

(डॉ. किरण झा)

फ़ीजी का हिंदी वाङ्मय

विमलेश कांति वर्मा

सागर का एक नाम रत्नाकर भी है। सागर तल में अनेक रत्न हैं पर वहाँ तक पहुँचना और रत्नों को लेकर बाहर आना आसान नहीं। सागर की गहराई तक जाने के लिए श्रम चाहिए, निर्भीकता चाहिए, संकल्प चाहिए तभी रत्न भंडार तक पहुँचा जा सकता है। सागर मंथन का आख्यान भी यही संकेत देता है कि सागर को मथने के लिए देव और दानव सभी मिल गए थे तभी अमृत प्राप्त हुआ था। देव और दानवों के साथ जुड़ने का अर्थ है सामूहिक प्रयास।

साहित्य भी सागर की तरह ही है और यह साहित्य सागर मंथन भी आसान नहीं। किसी देश का साहित्य भंडार अनेक सृजनात्मक रचनाकारों के लेखन श्रम से समृद्ध होता है। हज़ारों रचनाकारों में कुछ प्रकाशित हो पाते हैं, कुछ लिखते तो रहते हैं पर प्रकाशन की सुविधा के अभाव में पाठक वर्ग तक पहुँच नहीं पाते, वे एक सीमित पाठक वर्ग तक ही सीमित होकर रह जाते हैं।

चारों ओर से सागर परिवृत्त, सागर का स्वच्छ और पारदर्शी जल, सुंदर विस्तृत रेतीले समुद्र तट, निरभ्र आकाश, वन और वनस्पतियों से संपन्न फ़ीजी देश, प्रशांत का स्वर्ग कहा जाता है। फ़ीजी सैलानियों का अच्छा विश्राम और पर्यटन स्थल माना जाता है।[1]

वर्ष 1879 से लगातार श्रमिक मजदूरों के रूप में कितने ही भारतीय फ़ीजी पहुँचे थे। कितने गिरमिट प्रथा की समाप्ति के बाद वहीं बस गए। अभिव्यक्ति मानव की विवशता है। इन 150 वर्षों में फ़ीजी के भारतीयों ने कितना कहा होगा, गाया होगा, लिखा होगा इस पर आज तक कोई शोधपरक काम नहीं हुआ। कितने गिरमिटियों ने अपने भावों की अभिव्यक्ति रचनात्मक रूप में कविता और कहानी के रूप में की पर वे प्रकाश में नहीं आ पाए। आज हम उनमें से कुछ ही नामों को जानते हैं जिनकी रचनाएँ भारत में छपी और हम तक पहुँची।

फ़ीजी के गिरमिट गीत तो प्रवासी भारतीयों की संघर्ष कथा के मौखिक दस्तावेज़ हैं, जो आज भी फ़ीजी के ग्रामीण क्षेत्र में कभी–कभी सुनने को मिल जाते हैं। पर आज तक न तो इन गिरमिट गीतों का संग्रह और प्रकाशन हुआ और न ही फ़ीजी में हिंदी में जो भारतीयों ने लिखा उस पर कोई शोधकार्य हुआ। बानगी के लिए फ़ीजी के एक गिरमिट गीत में एक गिरमिटिया भारतीय स्त्री की वेदना देखिए–

किसके बताई हम पीर रे बिदेसिया।।
काली कोठारिया में बीते नाहिं रतिया हो,
किसके बताई हम पीर रे बिदेसिया।
दिन–रात बीती हमरी दुःख में उमरिया हो,
सूखा सब नैनुआ के नीर रे बिदेसिया।।
खून पसीने से सींचे हम बगिया,
बैठा–बैठा हुकुम चलाये रे बिदेसिया।
फिरंगिया के रजुआ में छूटा मोरा देसुआ,
गोरी सरकार चली चाल रे बिदेसिया।।[2]

किसी भी देश का साहित्यिक वैभव वहाँ के रचनाकारों के लेखन श्रम का फल होता है पर जब फ़ीजी के साहित्य की बात होती है तो कुछ ही लोगों के नाम गिनाए जाते हैं और लोग उन्हें ही जान पाते हैं, उन्हीं की साहित्य जगत में चर्चा होती है और उन्हीं के आधार

पर निष्कर्ष दे दिए जाते हैं। पर सच तो यह है कि अधिकांश रचनाकार तो समय के साथ विस्मृति के गर्भ में चले जाते हैं और धीरे–धीरे वे भुला दिए जाते हैं।

फ़ीजी के प्रवासी साहित्य पर अनुसंधान करते हुए प्रारंभ में मुझे 26 कवियों की रचनाएँ उपलब्ध हुईं जिन्हें मैंने अपनी पहली पुस्तक 'फ़ीजी में हिंदी : स्वरूप और विकास' (2000)[3] के साहित्य संचयन खंड में रखा था। इस पुस्तक के साहित्य संचयन खंड में फ़ीजी के गद्य रचनाकारों का उल्लेख नहीं था। जिन कवियों के नाम इस संचयन में हैं वे निम्नलिखित हैं–

अक्षैबर सिंह, अनुभवानंद आनन्द, अमरजीत कँवल, ईश्वर प्रसाद चौधुरी, कमला प्रसाद मिश्र, कमला सिंह, करुनागारन नायर, कांतिलाल, काशीराम कुमुद, चंद्रदेव सिंह, जोगिंदर सिंह 'कँवल', ज्ञान प्रभा, ज्ञान शुक्ला, ज्ञानीदास, बाबूराम अरुण, महावीर मित्र, महेंद्र चंद्र शर्मा 'विनोद, 'आर.सी. प्रसाद, आर .एस. प्रसाद, राघवानंद शर्मा, राम अवतार गुप्त रामानारायण, सरस्वती देवी, सलीम बख्श, सुखराम, शिव प्रसाद।

निरंतर अध्ययन अनुसंधान में मुझे अन्य रचनाकारों की रचनाएँ भी मिली जो मेरे साहित्य अकादमी, नई दिल्ली से प्रकाशित बड़े ग्रंथ 'फ़ीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य' में संकलित हुई (2012, 2018)।[4] इन रचनाकारों की संख्या 29 थी और कई नए अन्य कवि और गद्य लेखक जुड़े थे। इस संकलन की विशेषता यह थी कि इससे पहले फ़ीजी के गद्य रचनाकारों से हिंदी जगत परिचित नहीं था। इस पुस्तक के माध्यम से ही हिंदी पाठकों का फ़ीजी के गद्य लेखकों से परिचय हुआ। इसमें फ़ीजी के कवि और लेखक दोनों ही सम्मिलित थे।

इस संग्रह में बाबू कुँवर सिंह, नीलम कुमार,शिव प्रसाद, सरोजिनी आशा और हज़रत आदम नए कवियों के रूप में जुड़े। गद्य रचनाकारों में ईश्वरी प्रसाद चौधरी, पंड़ित गुरुदयाल शर्मा, जोगिंदर सिंह 'कँवल', ज्ञानी दास, बाबूराम शर्मा, ब्रिज विलास लाल, भरत वी मोरिस, महेश चंद्र शर्मा विनोद, रेमंड पिल्लई और सुब्रमनी जैसे गद्य रचनाकारों से पहली बार हिंदी पाठकों का परिचय हुआ। आज तक फ़ीजी साहित्य के जितने भी संचयन मेरी दृष्टि में आए कोई भी ऐसा संचयन मुझे नहीं मिला जिसमें फ़ीजी के गद्यकारों की रचनाएँ हों। गद्य विधा की उपेक्षा का कारण मुझे समझ नहीं आया।

इसी बीच 'प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य' के नाम से मेरी तीसरी पुस्तक प्रकाशित हुई (2016)[5]। जिसमें फ़ीजी के अतिरिक्त सूरीनाम, मॉरिशस और दक्षिण अफ्रीका के रचनाकारों की रचनाएँ प्रकाशित हुईं। प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य का यह सबसे बड़ा समेकित प्रामाणिक संकलन था, जिसमें काव्य और गद्य दोनों ही विधाओं में लिखे प्रतिनिधि रचनाकारों की रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं और यह ग्रंथ भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली तथा अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के संयुक्त तत्वावधान में प्रकाशित हुआ था। यह संकलन चूँकि बृहत् था पर अन्य देशों के रचनाकारों तथा ग्रंथ की आकार सीमा के कारण इसमें फ़ीजी के निम्नलिखित रचनाकार ही आ सके–

पद्य–अमरजीत कौर, ईश्वर प्रसाद चौधुरी, कमला प्रसाद मिश्र, काशी राम 'कुमुद', जोगिंदर सिंह 'कँवल', ज्ञानीदास, राघवानंद शर्मा, रामानारायण, हरनाम सिंह हरनाम

गद्य–अनुभवानंद आनन्द, केशवन नायर, गुरुदयाल शर्मा, जोगिंदर सिंह 'कँवल', ज्ञानीदास, बाबूराम शर्मा, ब्रिज विलास लाल, महेंद्र चंद्र शर्मा 'विनोद', राम नारायण गोविन्द, रेमंड पिल्लई, सुब्रमनी।

चार देशों के प्रवासी साहित्यकारों का समेकित संकलन होने के कारण फ़ीजी के कुल बीस हिंदी रचनाकार आ सके जबकि जोगिंदर सिंह 'कँवल' की प्रविष्टि कवि और गद्य रचनाकार दोनों ही रूपों में हुई।

फ़ीजी के साहित्यिक जगत का मेरा यह अनुसंधान कार्य बढ़ता गया और मैंने यह अनुभव किया कि फ़ीजी में हिंदी लेखन विस्तार की दृष्टि से और संभवतः परिमाण की दृष्टि से बहुत अधिक हुआ पर वह प्रकाश में नहीं आ पाया। अनेक रचनाकार पत्र–पत्रिकाओं में सीमित होकर ही रह गए। आज फ़ीजी के साढ़े तीन सौ रचनाकारों की रचनाएँ मेरे निजी संग्रह में हैं। इनमें चयनित रचनाकार प्रख्यात और ज्ञात रचनाकार तो हैं ही पर वे भी हैं जो, अल्पज्ञात और अज्ञात रचनाकार हैं जिनकी रचनाओं से पहली बार भारतीय पाठकों का परिचय हो सकेगा। इनमें फ़ीजी के वे हिंदी रचनाकार भी हैं जो विविध राजनीतिक उथल–पुथल के कारण फ़ीजी छोड़कर विदेश चले गए पर वे निरंतर हिंदी में लिख रहे हैं और फ़ीजी की पत्र–पत्रिकाओं में छप भी रहे हैं। फ़ीजी के प्रो. सुब्रमनी, प्रो. ब्रिज विलास लाल, पंडित हरीश शर्मा जहाँ ऑस्ट्रेलिया चले गए वहीं महेंद्र चंद्र शर्मा विनोद, राम नारायण गोविंद और सुनीता नारायण जैसे रचनाकार न्यूज़ीलैंड में जा बसे। अनेक फ़ीजी के लेखकों ने अमरीका और कनाडा में रहने का निर्णय किया पर हिंदी लेखन के माध्यम से वे फ़ीजी से आज भी जुड़े हुए हैं। फ़ीजी के हिंदी लेखकों का यह विदेश प्रवासन वर्ष 1987 में पहले तख्ता पलट प्रयत्न से शुरू हुआ था। यह वह समय था जब मैं फ़ीजी के भारतीय दूतावास में वरिष्ठ राजनयिक के रूप में भारत सरकार की ओर से प्रतिनियुक्त था और स्थिति का प्रत्यक्षदर्शी था।

प्रवासी भारतीय साहित्य के अध्ययन अनुसंधान के संदर्भ में सबसे कम कार्य फ़ीजी और दक्षिण अफ्रीका के हिंदी साहित्य के बारे में हुआ है जबकि सबसे अधिक कार्य मॉरिशस और उसके बाद संभवतः सूरीनाम के बारे में हुआ है। त्रिनिदाद और गयाना के हिंदी साहित्य के बारे में कोई भी प्रकाशित हिंदी पुस्तक मेरे देखने में नहीं आई। इस विषय पर कोई शोध आलेख भी मुझे ऐसा नहीं मिला जो इन देशों के साहित्यिक अवदान की चर्चा करता हो। इन देशों में बोली जाने वाली हिंदी के विषय में कुछ पुस्तकें अंग्रेज़ी में मुझे पढ़ने को ज़रूर मिलीं।[6]

फ़ीजी के हिंदी साहित्य के बारे में अब तक तीन और महत्वपूर्ण संचयन प्रकाशित हुए हैं। दो संचयन तो व्यक्ति आधारित हैं और फ़ीजी के रचनात्मक वैभव का परिचय नहीं देते पर महत्वपूर्ण हैं क्योंकि कमला प्रसाद मिश्र की काव्य रचनाओं के बृहत् संकलन हैं और बड़े श्रम से तैयार किए गए हैं। कमला प्रसाद मिश्र की काव्य रचनाओं का संकलन डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण ने 'कमला प्रसाद मिश्र की काव्य साधना' 'शीर्षक से किया था।[7] कमला प्रसाद मिश्र जी की ही रचनाओं का दूसरा संकलन श्री जयंती प्रसाद जी ने किया।[8] पंडित कमला प्रसाद मिश्र फ़ीजी के राष्ट्र कवि कहे जाते हैं। उनकी शिक्षा दीक्षा भारत में हुई। संस्कृत तथा हिंदी दोनों ही भाषाओं में वे निष्णात थे अतः उनकी रचनाओं में भाषा की जो प्रौढ़ता तथा अभिव्यक्ति का सौंदर्य दिखता है वह फ़ीजी के अन्य कवियों में दुर्लभ है। उनकी एक कविता बानगी के लिए दी जा रही है जिसमें वे पत्रिका के संपादक की स्थिति का बड़ा जीवंत चित्रण करते हैं –

सुंदर रचना के प्रेमी कम, सब पढ़ते अश्लील,
बात–बात पर 'रिट' निकाल देते हैं नए वकील,
पाठक मुश्किल से मिलते हैं शिक्षित और सुशील।

खून खराबी की खबरों से ही इनको आराम,
पृष्ठ उलट कर खोजा करते अपना नाम
संपादक की हँसी उड़ाना बड़ा सहज है काम।

पीनट बीन बेचने का तुम कर लेना व्यापार,
जूते की पालिश कर लेना या रहना बेकार,
किंतु न करना संपादक का काम कभी स्वीकार।।

संपादक का काम : कमला प्रसाद मिश्र[9]

श्री जोगिंदर सिंह 'कँवल' ने 'फ़ीजी का हिंदी काव्य' पुस्तक प्रकाशित की।[10]

किसी भी देश की समूची अभिव्यक्ति को कुछ पृष्ठों की सीमा में बाँध देना और यह कहना कि बहुत कम रचनाएँ हिंदी में लिखी गईं संभवतः बहुत अधिक सच नहीं है।

सभी भाषाओं में लेखक चार श्रेणी के होते हैं– 1. ख्यात या प्रख्यात, 2 ज्ञात 3. अल्पज्ञात, 4 अज्ञात। मुझे लगता है कि जब किसी देश की साहित्यिक समृद्धि की बात आए तो सभी का महत्व है। ये चारों श्रेणियाँ सब भाषाओं के साहित्यकारों के संदर्भ में होती हैं पर इनसे किसी का महत्व कम नहीं होता।

प्रख्यात या ख्यात शब्द गुणवत्ता बोधक नहीं है। अल्पज्ञात और अज्ञात लेखक भी अच्छे हो सकते हैं और किसी भाषा के साहित्य लेखन का जब प्रश्न उठे उन सब की रचनाओं से भी हमें परिचित होना चाहिए।

इसी विचार को ध्यान में रखते हुए मैंने यह प्रयत्न किया है कि जो लेखक प्रख्यात नहीं हो सके, जिनकी रचनाएँ भारत में प्रकाशित नहीं हो सकीं उनसे भी हम परिचित हो सकें। उनकी रचनाओं का भी हम आनंद उठा सकें और फ़ीजी के हिंदी वांङ्मय की समृद्धि में हम उनके योगदान को भी समझ सकें। ऐसे अल्पज्ञात और अज्ञात लेखक अनेक हैं जिनकी रचनाएँ आपको भी अच्छी लगेंगी।

फ़ीजी के प्रख्यात लेखकों में सर्व श्री कमला प्रसाद मिश्र, जोगिंदर सिंह 'कँवल', अमरजीत कौर, सुब्रमनी, रेमंड पिल्लई, आदि की गणना होती है। इन सभी लेखकों की रचनाएँ पुस्तकाकार प्रकाशित हैं या वे अपने समय की सबसे अधिक चर्चित पत्रिका के संपादक रहे थे। पंडित कमला प्रसाद मिश्र और जोगिंदर सिंह 'कँवल' ने अपनी रचनाएँ 'मानक हिंदी' में लिखी हैं वहीं प्रो. सुब्रमनी प्रो. रेमंड पिल्लई ने अभिव्यक्ति के लिए अपनी मातृभाषा 'फ़ीजी हिंदी' को चुना है। श्रीमती अमरजीत 'कँवल' ने साहित्यिक लेखन के लिए 'मानक हिंदी' और 'फ़ीजी हिंदी' दोनों को अपनाया है। श्रीमती अमरजीत कौर की एक रचना 'सुन मुन्ना के बापुआ' का भाव और अभिव्यक्ति सौंदर्य देखिए –

काहे करे मनमानी,
सुन मुन्ना के बापुआ।
माटी भई जिंदगानी हाय मुन्ना के बापुआ
घर में बैठा बैठा हुकुम चलाये,
जब ले कुदारी हम खेतुआ में जावे,
देवे न खाना पानी,
हाय मुन्ना के बापुआ।
गाड़ी में गन्ना जब भर घर आवे,
नागोना के थरिया में लात लगावे,
हर दम रहे परेशानी,
हाय मुन्ना के बापुआ।
साँझ के जब फिर खाना खावे,
बरतन हांडी पटके बहावे,
जल गई मेरी जवानी,
हाय मुन्ना के बापुआ।।

सुन मुन्ना के बापुआ : अमरजीत कौर[11]

ज्ञात लेखकों में जिनकी रचनाएँ पुस्तकाकार तो नहीं हो सकीं पर विविध संचयनों में स्थान पा सकीं। इनकी सूची लंबी है पर इतनी लंबी भी नहीं कि उनकी गणना न हो सके। इस कोटि में परिगणित कवि हैं– काशीराम कुमुद, महाबीर मित्र, ज्ञानीदास, बाबू कुँवर सिंह, सलीम बक्श, हज़रत आदम, रामानारायण, राघवानंद शर्मा, बाबू राम शर्मा ब्रिज विलास लाल, पंडित गुरुदयाल शर्मा, महेंद्र चंद्र शर्मा विनोद आदि की गणना होती है। इनमें से

काशीराम कुमुद, ज्ञानीदास, हज़रत आदम, बाबू राम शर्मा, महेश चंद्र शर्मा की रचनाएँ फ़ीजी में ही पुस्तकाकार प्रकाशित हुईं पर वे भारत तक न पहुँच सकीं और वे भारतीय पाठकों के बीच अपरिचित ही रह गए।

ज्ञानीदास फ़ीजी के कबीर पंथ महासभा के महंत थे। उन्होंने सूवा 'तारा' प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना की थी तथा 'झंकार' नाम से एक अनियतकालीन लघु पत्रिका भी निकालते थे तथा 10–12 पृष्ठों की अपनी रचनाओं की पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित करते थे जिसमें उनकी रचनाएँ होती थीं। फ़ीजी के अच्छे हिंदी कवियों में उनकी गणना होती थी। ऐसी ही स्थिति पंडित काशीराम कुमुद और महावीर मित्र की थी जिन्होंने अपनी रचनाओं की छोटी–छोटी लघु पुस्तिकाएँ प्रकाशित की थीं। अभिव्यक्ति की विकलता और अपनी भावनाओं को पाठकों तक पहुँचाने का यही एक माध्यम था। उदाहरण के लिए महंत ज्ञानीदास की एक छोटी सी रचना 'बीत गए सौ वर्ष' दी जा रही है जो उन्होंने गिरमिट शताब्दी वर्ष के अवसर पर लिखी थी –

बीत गए सौ वर्ष द्वीप में, भारतीय फ़ीजी आए।
कर्मण्य, कर्मनिष्ठ मानव को इस भूमि पर लाए।
योरोप में जब विलासिता की धधक रही थी ज्वाला,
निकल पड़े गोरे भरने को परदेसों में प्याला।
पराधीन था भारत बेबस, उस पर उनकी आँख गड़ी
मजबूरी से लाभ उठाए, शोषणता की प्यास बढ़ी।।

बीत गए सौ वर्ष : ज्ञानी दास[12]

फ़ीजी के महत्वपूर्ण कवि काशीराम कुमुद की भाषा शैली की बानगी उनकी कविता 'हिंदी बिरवा' में देखें

शर्त में जिसने जीवन को उत्सर्ग किया,
हम उन्हीं के चरणों में शीश झुकाते हैं,
हम रक्त बिंदुओं से सींच–सींच,
हिंदी बिरवा पनपाते हैं।।
हम फ़ीजी के नंदन कानन में,
सर्व जाति के तरुण तरुणियों में,
गाँव–गाँव में झूम–झूम कर,
हिलमिल–जुल वर्ष अंत में,
निज स्नेहांजलि चढ़ा–चढ़ा,
भक्ति भाव दर्शाते हैं।।

हिंदी बिरवा : काशीराम कुमुद[13]

अल्पज्ञात श्रेणी में वे रचनाकार हैं जो भारत और फ़ीजी में प्रकाशित विभिन्न पत्रिकाओं के विशेषांकों में प्रकाशित हुए हैं और जिनकी पंक्तियाँ समालोचकों ने उद्धृत भी की हैं।

अज्ञात कवि की श्रेणी में उन अनेक कवियों या लेखकों की गणना है जो अपने देश की विविध पत्रिकाओं में छपते तो रहे किंतु भारतीय पाठकों तक नहीं पहुँच सके। इस श्रेणी के कवि सबसे अधिक हैं। इन कवियों और इनकी रचनाओं से भी सुधी पाठकों का परिचय हो सके यही समय की माँग है। इन अज्ञात कवियों की रचनाओं की खोज में मुझे लगभग तीस वर्ष का लंबा समय लग गया पर अपने सीमित संसाधनों से जो संभव हो सका वह करने का मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। आशा है कि जब भी फ़ीजी के हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने का संयोग बनेगा ये रचनाकार भी फ़ीजी के हिंदी साहित्य में उल्लिखित होंगे और उनकी रचनाओं का मूल्यांकन हो सकेगा।

फ़ीजी की संविधान स्वीकृत राष्ट्रभाषा 'फ़ीजी हिंदी' है पर साहित्य लेखन के लिए 'मानक हिंदी' और 'फ़ीजी हिंदी' दोनों भाषा रूपों का प्रयोग हो रहा है। आज लेखकों का झुकाव 'फ़ीजी हिंदी' में लेखन की ओर है जबकि 'मानक हिंदी' में लेखन का प्रयत्न प्रतिष्ठा से जुड़ा हुआ है। सामान्यतः यह माना

जाता है कि 'फ़ीजी हिंदी' पारस्परिक बोलचाल की भाषा है जबकि 'मानक हिंदी' साहित्य की और औपचारिक लेखन की भाषा है। प्रसिद्धि की लालसा से फ़ीजी का लेखक 'मानक हिंदी' और 'फ़ीजी हिंदी' दोनों में लेखन का प्रयत्न करता है। उसके मन में हमेशा एक अंतर्द्वंद्व सा रहता है कि वह 'मानक हिंदी' में लिखे या फ़ीजीबात में। 'फ़ीजीबात' में वह अधिक सुविधा से और बिना व्याकरणिक अशुद्धियों के लिखता है पर प्रसिद्धि और सम्मान के लिए वह 'मानक हिंदी' में लिखने का प्रयत्न करता है परिणामस्वरूप हिंदी को लेकर फ़ीजी भारतीय समाज में भाषा द्वैत की स्थिति उत्पन्न हो गई है जो लेखक को दुविधा में डाल देती है।

फ़ीजी के लेखक अपनी भाषा 'फ़ीजी हिंदी' की प्रतिष्ठा के लिए बहुत मुखर हैं और वे कहते हैं कि हमारी भाषा वह 'मानक हिंदी' नहीं है जो भारत की हिंदी है। हमारी हिंदी फ़ीजी के प्रवासी भारतीयों द्वारा विकसित हिंदी है जिसे देश 'फ़ीजीबात' के नाम से अभिहित करता है। भारत की हिंदी 'मानक हिंदी' हमारी अपनी हिंदी नहीं है, वह सायास सीखी हुई हिंदी है। यही कारण है कि 'मानक हिंदी' में लिखी गई रचनाओं में भाषागत अनेक व्याकरणिक त्रुटियाँ दिखेंगी जबकि वह 'फ़ीजी हिंदी' में नहीं मिलेगी, हो सकता है फ़ीजी के अनेक लेखकों की परिनिष्ठित हिंदी में लिखित रचनाएँ भारतीय पाठकों को भाषा की दृष्टि से बहुत प्रौढ़ और उच्चकोटि की साहित्यिक रचनाएँ न लगें पर जैसा कि प्रवासी साहित्य के बारे में पहले भी मैं कह चुका हूँ कि साहित्य का मूल्यांकन रचना की केवल कलात्मकता के आधार पर ही नहीं होता, रचना का ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय और संवेदनात्मक पक्ष भी होता है। फ़ीजी के लेखकों की रचनाएँ फ़ीजी की पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाएँ हैं, जनप्रिय हैं और फ़ीजी के भारतीय समाज की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति हैं। फ़ीजी के प्रतिष्ठित समाचार पत्रों में प्रकाशित होना देश काल की सीमा में उनकी गुणवत्ता का प्रमाण समझना चाहिए। 'फ़ीजी हिंदी' में लिखी हुई रचनाएँ भाषा की दृष्टि से प्रौढ़ रचनाएँ हैं क्योंकि 'फ़ीजी हिंदी' जिसे वे 'फ़ीजीबात' भी कहते हैं उनकी अपनी हिंदी हैं जो विगत लगभग 150 वर्षों की अवधि में वहाँ विकसित हुई है। भाषा का प्रश्न बड़ा ही संवेदनशील प्रश्न है और मुझे भी लगता है जो हिंदी फ़ीजी में विकसित हुई है और भारतीयों के मध्य जनसंपर्क का माध्यम बनी हुई है उसे अशुद्ध और अव्याकरणिक कहकर उसकी आलोचना करना न्यायसंगत नहीं है।

निष्कर्ष : फ़ीजी में निरंतर हिंदी – 'मानक हिंदी' और 'फ़ीजी–हिंदी' में लेखन हो रहा है और यह हिंदी लेखन देशव्यापी है। फ़ीजी के दो प्रमुख द्वीप हैं– वीतीलेवू और वनुआ लेवु। दोनों द्वीपों के हर महानगर में आपको हिंदी लेखक वर्ग, हिंदी से जुड़ी हुई संस्था मिलेगी और हिंदी सेवी और हिंदी प्रेमी मिलेंगे जिन्हें अपनी हिंदी पर गर्व है, वे हिंदी में निरंतर लेखन से हिंदी को समृद्ध कर रहे हैं और हिंदी की सुरक्षा, संरक्षा और प्रतिष्ठा के लिए कृत संकल्प हैं। यही कारण है कि बहुजातीय देश फ़ीजी में हिंदी देशव्यापी, सम्मानित और संविधान स्वीकृत भाषा बन सकी है। फ़ीजी का हिंदी वांड्मय फ़ीजी का ही नहीं भारत की भी अमूल्य धरोहर है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. विमलेश कांति वर्मा व धीरा वर्मा, फ़ीजी में हिंदीः स्वरूप और विकास, पीतांबरा प्रकाशन, नई दिल्ली 2000

2. (क) धीरा वर्मा, फ़ीजी के लोकगीत– प्रवासी भारतीयों की संघर्ष कथा के मौखिक दस्तावेज़, गगनांचल, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, आज़ाद भवन, नई दिल्ली (ख) प्रवासी पीड़ा और अंतर्द्वंद्व : लोकगीतों का संदर्भ, भाषा जनवरी–फरवरी 2018, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली

3, विमलेश कांति वर्मा व धीरा वर्मा, फ़ीजी में हिंदीः स्वरूप और विकास, पीतांबरा प्रकाशन, नई दिल्ली वर्ष 2000

4. विमलेश कांति वर्मा, फ़ीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली वर्ष 2012

5. विमलेश कांति वर्मा, प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

6. राजेंद्र मेस्त्री, लैंग्वेज इन इंडेंचर; रोडनी मोग : फ़ीजी हिंदी – अ रिफरेन्स ग्रामर ऑफ़ फ़ीजी हिंदी; फ़ीजी हिंदी–अंग्रेजी– फ़ीजी हिंदी डिक्शनरी–सूजान होब्स आदि

7. सुरेश ऋतुपर्ण ,कमला प्रसाद मिश्र की काव्य साधना, गौरव प्रकाशन, नई दिल्ली

8. जयंती प्रसाद मिश्र, पंडित कमला प्रसाद मिश्र, राजपथ प्रकाशन, गीता कॉलोनी, दिल्ली

9. विमलेश कांति वर्मा, फ़ीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, वर्ष 2012

10. जोगिंदर सिंह 'कँवल', फ़ीजी का हिंदी काव्य साहित्य, डायमंड पब्लिकेशंस, नई दिल्ली

11. विमलेश कांति वर्मा, प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

12. विमलेश कांति वर्मा, फ़ीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, वर्ष 2012

13. विमलेश कांति वर्मा, फ़ीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, वर्ष 2012

❑❑❑

फ़ीजी में हिंदी पत्रकारिता के 110 वर्ष

जवाहर कर्नावट

फ़ीजी एक बहुजातीय और बहु सांस्कृतिक देश है जहाँ पर प्रमुख जातियाँ फीजियन और हिंदुस्तानी हैं। फ़ीजी में गिरमिट प्रथा के अंतर्गत आए प्रवासी भारतीयों का इतिहास लगभग 140 वर्ष पुराना है। 1879 से प्रारंभ भारतवंशियों के फ़ीजी आगमन की शुरुआत 1916 तक जारी रही। इस दौरान पचासी हजार से अधिक प्रवासी भारतीय फ़ीजी पहुँचे जो अधिकांशतः पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा पूर्वी बिहार के थे। गिरमिट प्रथा की समाप्ति के पश्चात् 60 प्रतिशत गिरमिटिया मजदूर फ़ीजी में बस गए और उनके वंशज वहाँ जीवनयापन कर रहे हैं। फ़ीजी में हिंदी का विकास इन्हीं गिरमिट भारतीयों के माध्यम से हुआ। ये गिरमिटिए दिनभर की कड़ी मेहनत के बाद रात को तुलसी के रामचरितमानस की चौपाइयाँ पढ़ते, हारमोनियम, ढोलक तथा तंबूरे और खँजड़ी के साथ कबीर, मीरा तथा सूरदास के भजन गाकर दिनभर की थकान दूर करने की कोशिश करते थे। परोक्ष रूप में ये हिंदी पढ़ते, सीखते व हिंदी में भजन गाकर हिंदी का अभ्यास करते। इस प्रकार हिंदी सभी गिटमिटियों के बीच संपर्क का माध्यम बन गई। हिंदी का यह पौधा आज वट वृक्ष बन गया है जो समय के साथ मजबूत हो रहा है।

फ़ीजी में हिंदी भारत के विभिन्न प्रांतों की विचारधारा, हाव–भाव, भाषा और बोली का मिश्रण है जिसमें बीच–बीच में अन्य भाषाओं जैसे ईतोकैया (फीजियन भाषा) अंग्रेजी और उर्दू शब्दों का समावेश भी आवश्यकतानुसार होता चला गया। इस मिश्रित भाषा से ही 'फ़ीजीबात' का आविष्कार हुआ। यह 'फ़ीजीबात' उनके विचारों के आदान–प्रदान का सरल माध्यम थी। आज यही 'फ़ीजीबात' फ़ीजी हिंदी है। अपनी गिरमिटिया अवधि पूरी होने के बाद भी जब वे अपने देश भारत लौटने में असफल रहे तब वे फ़ीजी में ही अपना देश बनाने, भारतीय संस्कृति को जुटाने और उसे समृद्ध करने में लग गए।

2016 की जनगणना के अनुसार फ़ीजी की जनसंख्या लगभग 9 लाख है। जिसमें लगभग 56.8 प्रतिशत फ़ीजी मूल के लोग है, लगभग 37.5 प्रतिशत भारतीय मूल के लोग हैं। शेष यूरोपियन, चीनी और अन्य मूल के हैं। विश्व में भारत के अलावा फ़ीजी एक मात्र ऐसा देश है जहाँ के संविधान में हिंदी को फीजियन और अंग्रेजी के साथ राजभाषा का दर्जा प्राप्त है।

हिंदी पत्रकारिता का प्रारंभिक चरण

अपनी फ़ीजी द्वीप की यात्रा के दौरान हिंदी पत्रकारिता के 100 से अधिक वर्षों के इतिहास को खंगालना किसी रोचक दास्तान से कम नहीं है। सन 1913 में डॉ. मणिलाल ने भारतीयों को संगठित करने के लिए 'द सेटलर' पत्र का प्रकाशन अंग्रेजी में प्रारंभ किया था। किंतु उन्हें शीघ्र ही यह अनुभव हो गया कि देश के कोने–कोने में बसे हुए भारतीयों तक संदेश पहुँचाने के लिए अंग्रेजी उतनी कारगर नहीं हो सकती जितनी की उनकी अपनी भाषा हिंदी। इसीलिए उन्होंने 'द सेटलर' को अंग्रेजी संस्करण के साथ ही हिंदी में भी साइक्लोस्टाइल रूप में निकालना प्रारंभ कर दिया। 'द सेटलर' पत्र का यह हिंदी संस्करण फ़ीजी में हिंदी पत्रकारिता का शुरुआती कदम था। धीरे–धीरे इस पत्र की लोकप्रियता बढ़ने लगी और वह समस्त भारतीयों को समाचार के माध्यम से संगठित करने लगा। इस पत्र के हिंदी संस्करण के

संपादन का दायित्व संभाला पं. शिवराम शर्मा ने। हिंदी के प्रति बढ़ती हुई रुचि तथा हिंदी में समाचार जानने और पढ़ने की लालसा ने कई भारतीयों को हिंदी पत्र निकालने के लिए प्रेरित किया।

19वीं सदी के दूसरे दशक में कई हिंदी पत्रों के प्रकाशन की शुरुआत हुई। इन पत्रों में फ़ीजी समाचार, भारत पुत्र, वृद्धि तथा वृद्धिवाणी लोकप्रिय हुए किंतु फ़ीजी समाचार के अतिरिक्त कोई अन्य पत्र अधिक समय तक नहीं चल सका।

फ़ीजी समाचार

फ़ीजी समाचार का प्रकाशन इंडियन प्रिंटिंग तथा पब्लिशिंग कंपनी द्वारा 1923 में शुरू हुआ। इसके प्रधान संपादक और मालिक श्री सूर्यमुनि दयाल बिदेसी तथा प्रधान संपादक बाबू रामसिंह रहे। श्री बिदेसी की गणना फ़ीजी के प्रतिष्ठित भारतीयों में की जाती थी। वे अंग्रेजी, हिंदी तथा काईबीती भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। अनेक बार विश्व भ्रमण कर उन्होंने व्यापक अनुभव अर्जित किया था। भारतीयों के मध्य जन–जागृति लाने तथा उन्हें संगठित करने के लिए उन्होंने विशिष्ट भूमिका निभाई। फ़ीजी समाचार को आर्थिक कठिनाई से बचाए रखने तथा प्रगति में सदैव सहायक रहे।

फ़ीजी समाचार का 4 जुलाई, 1936 तथा 18 जुलाई, 1936 का अंक फ़ीजी के राष्ट्रीय अभिलेखागार से तथा 19 दिसंबर, 1968 का अंक ब्रिटिश लाइब्रेरी लंदन से प्राप्त हुआ। 4 जुलाई, 1936 के अंक के मुख्य पृष्ठ पर अंग्रेजी में 'The Fiji Samachar' तथा हिंदी में 'फ़ीजी समाचार' प्रकाशित होता था और उसी के नीचे अंग्रेजी में छपा होता था– 'The Weekly Organ OF the Fiji Indians.' फ़ीजी समाचार प्रत्येक शनिवार हिंदी एवं अंग्रेजी में प्रकाशित होता था। 4 जुलाई के अंक के प्रथम पृष्ठ पर ही क्राउन एंड लि. का विज्ञापन हिंदी में प्रकाशित हुआ है। पत्र में भारत के समाचार पत्रों के संदर्भ से निम्नानुसार संक्षिप्त आलेख प्रकाशित हुए हैं–

1. लंदन में फ़ीजी डेपुटेशन – श्री वेंकटेश्वर समाचार
2. छप्पन साल का उपवास – आर्य मित्र
3. स्वराज्य की आवश्यकता–प्रताप

इन आलेखों के प्रकाशन से स्पष्ट होता है कि भारत के प्रमुख समाचार पत्र भी फ़ीजी पहुँचते थे। इस अंक में ही 'शिक्षा–विभाग की रिपोर्ट' शीर्षक से फ़ीजी की प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था पर रिपोर्ट प्रकाशित हुई है।

प्रारंभिक वर्षों में यह समाचार पत्र ए4 आकार में प्रकाशित होता था किंतु बाद में यह टेव्यूलाइट आकार में प्रकाशित होने लगा। सन् 1966 में पं. चंद्रदेव सिंह ने फ़ीजी समाचार में सहायक संपादक के रूप में कार्य प्रारंभ किया और थोड़े दिनों बाद ही उन्हें पूरा संपादकीय दायित्व सौंप दिया गया। पं. चंद्रदेव का नाम फ़ीजी की हिंदी पत्रकारिता में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। सन् 1953 से वे फ़ीजी समाचार से लेखक के रूप में भी जुड़े हुए थे।

फ़ीजी के अभिलेखागार से प्राप्त 19 दिसंबर, 1968 के आठ पृष्ठीय फ़ीजी समाचार के अंक में इसका प्रकाशन प्रत्येक बृहस्पतिवार को होना दर्शाया है। इस अंक में फ़ीजी की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों को पर्याप्त स्थान मिला है। ईद के मौके पर अनेक लेख, कविताएँ आदि भी प्रकाशित हुई हैं। पं. चंद्रदेव सिंह के संपादन में फ़ीजी समाचार ने पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त की तथा यह हर वर्ग के भारतीयों के मध्य बड़े चाव से पढ़ा जाता था। इस समाचार पत्र का प्रकाशन सन् 1975 तक हुआ।

'वृद्धि' तथा 'वृद्धि वाणी' का प्रकाशन

फ़ीजी की राजधानी सुवा से ही अगस्त 1927 में 'वृद्धि' मासिक समाचार पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। 'वृद्धि' का प्रथम अंक तथा अक्तूबर 1927 का अंक फ़ीजी के राष्ट्रीय अभिलेखागार से प्राप्त हुआ। प्रथम अंक

(अगस्त 1927) के मुख पृष्ठ पर भी प्रकाशित था–

फ़ीजी प्रवासी भारतीयों के वृद्धि के लिए मासिक समाचार पत्र

मूल्य–साल भर के लिए 3 शि.

पताः मैनेजर वृद्धि, पोस्ट बॉक्स 235, युवा फ़ीजी

संपादकः डॉक्टर आई.एच.वीटी, एम.ए

'वृद्धि' के प्रथम अंक के संपादकीय में उप संपादक पं. दुर्गाप्रसाद में 'वृद्धि' के बारे में लिखा गया अंश ज्यों का त्यों प्रस्तुत है–

हम वृद्धि चाहते हैं – "जैसे महाजन अपने पैसे की वृद्धि चाहते हैं और समाज कि वृद्धि चाहते हैं और वैयाकरणी स्वर की वृद्धि चाहते हैं वैसे हम भी फ़ीजी प्रवासी भारतीयों की वृद्धि चाहते हैं इस कारण से हमारा नाम वृद्धि है।"

'वृद्धि' के प्रथम अंक में ही 'फ़ीजी व्यवस्थापक सभा में भारतीयों का अधिकार' शीर्षक से प्रकाशित आलेख में फ़ीजी भारतीयों को और राजनीतिक अधिकार देने की आवाज उठाई है। वृद्धि का प्रकाशन हिंदी–अंग्रेजी में सन् 1929 के अक्तूबर माह तक हुआ।

सन् 1932–33 के दौरान ही फ़ीजी से 'वृद्धिवाणी' पत्रिका का प्रकाशन भी हुआ। इस पत्रिका का संपादन पं. गुरूदयाल शर्मा ने किया। पं. शर्मा को अंग्रेजी हिंदी तथा काईबीती (फीजियन) भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। इससे पूर्व वे 1977 में प्रकाशित 'सनातन धर्म' मासिक पत्र से भी जुड़े हुए थे। वृद्धिवाणी के माध्यम से भी अपने प्रवासी भारतीयों को जागृत करने का प्रयास किया। आर्थिक संकट के कारण ही 'वृद्धिवाणी' का प्रकाशन अल्पावधि में ही बंद करना पड़ा। इसी दौरान हिंदी मासिक 'वैदिक संदेश' का प्रकाशन आर्य समाज के कार्यकर्ता पं. श्रीकृष्ण शर्मा ने किया किंतु आपसी विरोध के चलते 'वृद्धिवाणी' तथा 'वैदिक संदेश' दोनों पत्र शीघ्र बंद हो गए।

'शांतिदूत' का प्रकाशन

'शांतिदूत' समाचार की शुरुआती दास्तां अत्यंत रोचक है। फ़ीजी टाइम्स एंड हेरल्ड नामक ब्रिटिश संस्थान द्वारा अंग्रेजी समाचार पत्र फ़ीजी टाइम्स प्रकाशित हो रहा था। इसी समय द्वितीय विश्व युद्ध के बादल भी मंडरा रहे थे। इटली की सेना युद्ध में उतर चुकी थी। फ़ीजी टाइम्स के जनरल मैनेजर श्री बाकर के मन में यह विचार आया कि स्थानीय लोगों को मित्र राष्ट्रों के पक्ष में विश्व युद्ध से जोड़ने के लिए क्यों न हिंदी में अखबार निकाला जाए? इसी विचार से 11 मई, 1935 को साप्ताहिक अखबार 'शांतिदूत' की शुरुआत हुई। इस पत्र के संपादक का कार्यभार संभाला श्री गुरु दयाल शर्मा ने जो 'पेसिफिक–प्रेस' से हिंदी पत्रकारिता का अनुभव प्राप्त कर चुके थे। अपने पहले संपादकीय में श्री गुरु दयाल पत्र की नीतियों को स्पष्ट करते हुए लिखते हैंः "शांतिदूत का यह प्रथम अंक हम आपकी सेवा में उपस्थित करते हुए हर्ष मना रहे हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि इस पत्र के द्वारा फ़ीजी प्रवासी भारतीयों को समस्त संसार की वह खबर मिलती रहेगी जिससे हिंदी भाषा–भाषी जनता अनभिज्ञ रहती थी। इस पत्र के स्वामी भारत, इंग्लैंड, चीन, जर्मनी, जापान इत्यादि भूमंडल का समाचार बेतार के तार द्वारा अर्थात् केबल के जरिए से मंगा रहे हैं। जैसाकि आज तक हिंदी पत्रकार नहीं कर सका है। अतएव हम अपने पाठक, ग्राहक एवं अनुग्राहकों को यह विश्वास दिला सकते हैं कि आप इस पत्र से संतुष्ट रहेंगे।"

'शांतिदूत' के इस अंक की 300 प्रतियाँ प्रकाशित हुई थी जो आठ पृष्ठीय था। फ़ीजी की राजधानी सुवा तथा आस–पास के क्षेत्रों में ये प्रतियाँ तुरंत बिक गई। पत्र को प्रारंभ करने से अधिक चुनौती उसे जीवित रखने की थी।

'शांतिदूत' ने स्थानीय समाचारों को पत्र में अधिक स्थान दिया। रामायण मंडलियों की गतिविधियों को भी प्रधानता दी गई तथा शिक्षा

के विस्तार के लिए भी प्रयास किया। हर त्योहार पर सुंदर विशेषांक प्रकाशित कर सभी धर्मों के प्रति समभाव तथा पारस्परिक समझ का वातावरण बनाया। स्न 1939 में छिड़े विश्व युद्ध में भारतीय जनता को सचित्र समाचार देने वाला 'शांतिदूत' अकेला हिंदी पत्र था। इस कारण पत्र की प्रसार संख्या बढ़कर 16000 तक पहुँच गई। पचीस वर्ष पूरे होते–होते 'शांतिदूत' फ़ीजी का सबसे सम्मानित पत्र बन गया।

सन् 1950 तक 'शांतिदूत' हिंदी तथा अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में प्रकाशित होता था किंतु बाद में इसके रूप में परिवर्तन हुआ और बढ़ती माँग के कारण यह पत्र केवल हिंदी में प्रकाशित होने लगा। 'शांतिदूत' के संपादन का दायित्व 1935 से 1979 तक पंडित गुरुदयाल ने बड़ी निष्ठा तथा परिश्रम से संभाले रखा। अपनी स्वर्ण जयंती {1985} के पूर्व ही 'शांतिदूत' में 1 दिसंबर, 1983 से कंप्यूटर टाइप का प्रयोग हुआ जिससे पत्र की छपाई साफ सुंदर तथा आकर्षक हो गई। पंडित गुरुदयाल के सेवानिवृत्त होने पर श्री महेश चंद्र शर्मा 'विनोद' 'शांतिदूत' के नए संपादक बने। विनोद जी हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के ज्ञाता थे तथा उनके पास पत्रकारिता का व्यापक अनुभव था। जिस समय वे 'शांतिदूत' के संपादक बने, वह समय राजनीतिक अस्थिरता का था। इस समय कूयाने विद्रोह भी हुआ। 'शांतिदूत' के पत्रकारों को भी बंदूक की नोक पर कार्यालय से बाहर निकाल दिया गया। इसके उपरांत भी 'शांतिदूत' ने अपनी बात साहस, निर्भीकता, संतुलन और विवेक से रखी। भय, आशंका और हिंसा के दौर में भी 'शांतिदूत' की भूमिका अविस्मरणीय रही।

'शांतिदूत' का दीपावली विशेषांक प्रत्येक वर्ष अत्यंत समृद्ध एवं विशिष्ट होता है। इस विशेषांक में आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड के लेखकों की रचनाओं का भी समावेश होता है। 125 से अधिक पृष्ठों के विशेषांक में दीपावली के साथ ही भारतीय संस्कृति, त्योहारों और परंपराओं पर विशेष लेख होते हैं। मुझे सन् 2016 में अपनी फ़ीजी यात्रा के दौरान 'शांतिदूत' के कार्यालय जाने का अवसर भी मिला। 'शांतिदूत' के प्रथम अंक से लेकर आज तक के सभी अंकों की वर्षवार फाइल स कार्यालय में व्यवस्थित रूप से देखने को मिली। सन् 2000 से श्रीमती नीलम ने 'शांतिदूत' के संपादन का कार्य दायित्व सँभाला।

वह स्वतंत्र पत्रकार के रूप में 'शांतिदूत' से कई वर्षों से जुड़ी रही।

'शांतिदूत' के माध्यम से हजारों लोगों ने हिंदी सीखी। 'शांतिदूत' में हिंदी विद्यार्थियों के लिए दो पृष्ठ विशेष रूप से आरक्षित होते हैं जिनमें स्कूलों के पाठ्यक्रमों से जुड़े विषयों पर क्रमवार प्रस्तुति होती है। रचनात्मक साहित्य को भी 'शांतिदूत' में पर्याप्त स्थान मिलता है। कहानी, कविता, व्यंग्य आदि निरंतर प्रकाशित होते रहते हैं। 'शांतिदूत' में बालीवुड फिल्मों तथा कलाकारों आदि के बारे में भी समाचार विस्तार से होते हैं। प्रत्येक अंक में फिल्मों की समीक्षा, फिल्मी कलाकारों के किस्से–कहानियाँ छपते हैं। 'शांतिदूत' के शुरुआती वर्ष 1935 के अंको में भी भारतीय फिल्मों के विज्ञापन दिखाई देते हैं, जिससे स्पष्ट है कि फ़ीजी में रहने वाले भारतीयों के लिए वर्षों से मनोरंजन का प्रमुख माध्यम बॉलीवुड ही है। 11 मई, 2020 को शांतिदूत के प्रकाशन के पचासी वर्ष पूर्ण हुए किंतु उसके कुछ माह बाद ही यह सूचना मिली कि शांतिदूत का प्रकाशन अब बंद हो गया है। 'शांतिदूत' समाचार पत्र की शुरुआत के पश्चात् चौथे दशक में फ़ीजी में अनेक मासिक तथा साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन हुआ। अखिल फ़ीजी कृषक महासंघ ने 'दीनबंधु', श्री ज्ञानीदास ने 'ज्ञान', पं.बी.डी.लक्ष्मण ने 'किसान' आर्य पुस्तकालय ने 'पुस्तकालय', श्री रामखेलावन ने 'प्रकाश' पत्रों का प्रकाशन किया। इसी दौरान 'जंजाल', 'सनातन प्रकाश'

तथा 'मजदूर' आदि पत्र भी प्रकाशित हुए। किंतु वे बहुत अल्प समय में ही बंद हो गए। फ़ीजी में हिंदी के प्रचार–प्रसार के सशक्त हस्ताक्षर श्री काशीराम कुमुद ने 'प्रवासिनी' पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। उसमें स्थानीय कवियों की रचनाओं को स्थान देकर कुमुद जी ने अनेक लेखकों को प्रोत्साहित किया था। 'प्रवासिनी' पत्रिका अपने समय की लोकप्रिय पत्रिका थी।

'द इंडियन टाइम्स'

सन् 1945 में 'द इंडियन टाइम्स' का प्रकाशन फ़ीजी की राजधानी सुवा से हुआ। आवरण के अतिरिक्त इसमें पच्चीस पृष्ठ होते थे। देखने में यह पत्रिका लगती थी। किंतु वास्तव में यह समाचार–पत्र के रूप में ही था और पंजीयन भी समाचार–पत्र के रूप में हुआ था। हिंदी–अंग्रेजी में प्रकाशित इस समाचार–पत्र के संपादक श्री रामसिंह रहे। उनका संपादकीय पृष्ठ चार पर छपता रहा किंतु कुछ अंक ऐसे भी देखने में आए हैं, जिनमें संपादकीय लेख का अभाव दिखाई देता है। प्रायः इस समाचार पत्र के संपादकीय समसामयिक विभिन्न समस्याओं पर आधारित होते थे।

इस पत्र में समाचार, लेख, विनोद–वाटिका, महिला–पृष्ठ, साहित्य स्तम्भ के साथ ही अंग्रेजी खंड भी प्रकाशित होता था। समाचारों के अंतर्गत फ़ीजी के अतिरिक्त भारत तथा अन्य देशों के समाचार भी इसमें प्रकाशित होते रहे। पत्र में मौलिक चिंतनपरक लेखों को भी प्रकाशित किया जाता था। कहानियों के अतिरिक्त इस समाचार पत्र में कभी–कभी कविताएँ भी छपती थी। ये कविताएँ आवरण पृष्ठ पर भी प्रकाशित हुईं। इस समाचार पत्र का प्रकाशन कुछ वर्ष ही हो पाया।

'जागृति' का प्रकाशन

फ़ीजी के नांदी केंद्र से हिंदी साप्ताहिक 'जागृति' का प्रकाशन 26 जनवरी, 1950 को हुआ। इस पत्र का प्रथम तथा कुछ अन्य अंक फ़ीजी के राष्ट्रीय अभिलेखागार से प्राप्त हुए। यह पत्र फ़ीजी के पश्चिमी जिलों के किसानों के मध्य बहुत लोकप्रिय था। 'जागृति' की लोकप्रियता तो इतनी बढ़ गई थी कि साप्ताहिक और फिर त्रि–साप्ताहिक प्रकाशित होने लगा था। इस पत्र के प्रथम अंक (26 जनवरी, 1950) के प्रथम पृष्ठ पर मुख्य समाचार के रूप में लंदन चीनी कांफ्रेंस भंग होने का समाचार प्रमुखता से प्रकाशित किया है। उपनिवेश के देशों में चीनी की खरीद दरों में असहमति के कारण भी कांफ्रेंस को स्थगित करने का प्रस्ताव लाया गया।

सन् 1961 में 'जागृति' के संपादन का दायित्व बीस वर्ष की छोटी अवस्था में ही पं. राघवानंद शर्मा की सौंप दिया गया। राघवानंद जी के साहित्यिक रुचि तथा योग्यता के कारण इस पत्र का कुशल संपादन किया। पत्र की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने के बावजूद उन्होंने 1975 तक इसका प्रकाशन जारी रखा।

1953 ई. में 'आवाज' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन भी अल्पावधि के लिए हुआ। 'झंकार' पत्र का प्रकाशन श्री ज्ञानीदास के संपादन में हुआ। इस पत्र में संक्षिप्त समाचार, फिल्मी गाने, कविताएँ आदि होती थी। आर्थिक साधनों की कमी के कारण यह पत्र 1958 में बंद हो गया। इसके पूर्व श्री ज्ञानीदास ने 'तारा' मासिक पत्र का प्रकाशन भी किया था जो उनकी ही प्रेस में छपा करता था।

'जय फ़ीजी' और 'फ़ीजी संदेश' का प्रकाशन

फ़ीजी के प्रतिभाशाली कवि एवं विद्वान लेखक कमला प्रसाद मिश्र के संपादन में 1958 ई. में 'जय फ़ीजी' हिंदी साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। यह पत्र फ़ीजी में अत्यंत लोकप्रिय हुआ। इसका मुद्रण हिंदी और अंग्रेजी में लौटोका स्थित यूनिवर्सल प्रिंटिंग प्रेस में फोटो सैट विधि से होता था। जय फ़ीजी के माध्यम से मिश्र जी ने हिंदी भाषा और साहित्य की ज्योति जलाए रखने का

गुरुतर कार्य किया। आपके पत्र में हिंदी प्रेमी युवकों की रचनाओं को विशेष स्थान मिला। पत्र के समापन अंक तक तत्कालीन राजनीति, समाज और शिक्षा पर अनेक प्रकार की महत्वपूर्ण सामग्री प्रकाशित होती रही जो मिश्र जी के गहन अध्यव्यवसाय और लगन का प्रमाण थी। श्री मिश्र लगभग पैंतीस वर्ष तक फ़ीजी की हिंदी पत्रकारिता में सक्रिय रहे. उन्हें फ़ीजी में हिंदी सेवा और हिंदी पत्रकारिता में योगदान के आधार पर भारत सरकार ने विदेशी हिंदी सेवा सम्मान से सम्मानित भी किया।

फ़ीजी संदेश साप्ताहिक का प्रकाशन सन् 1965 में वेणीलार मौरिस के संपादन में हुआ। मौरिस के संपादकीय राष्ट्रीय समस्याओं पर विश्लेषणात्मक और रचनात्मक होते थे। इस पत्र में स्थानीय लेखकों को भी बहुत प्रोत्साहित किया गया। इस पत्र का प्रकाशन लगभग दस वर्षों तक हुआ।

फ़ीजी में हिंदी पत्र–पत्रिकाओं के प्रारंभ एवं बंद होने का सिलसिला लगातार चलता रहा। पं. नंदकिशोर ने 1959 में हिंदी साहित्य प्रचारिणी सभा की स्थापना करने के साथ ही 'किसान मित्र' साप्ताहिक पत्र का संपादकीय दायित्व भी सँभाला। वे किसानों, मजदूरों, लेखकों तथा कवियों के मध्य बहुत लोकप्रिय हुए। 1974 ई. में सनातन धर्म महासभा के मुख पत्र के रूप में 'सनातन संदेश' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इस महासभा के महासचिव एवं फ़ीजी हिंदी महापरिषद के प्रधान पं. विवेकानंद शर्मा 'सनातन संदेश' के संपादक थे। आप फ़ीजी सरकार में मंत्री भी रह चुके थे। फ़ीजी में हिंदी के प्रचार–प्रसार में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। सनातन संदेश एक मासिक पत्र था तथा इसका उद्देश्य सनातन धर्म के संदेश को जन–जन तक पहुँचाना था। किंतु यह पत्र कुछ अंक निकलने के बाद बंद हो गया।

फ़ीजी सरकार की हिंदी पत्र– पत्रिकाएँ

फ़ीजी सरकार की ओर से भी कुछ पत्र–पत्रिकाएँ हिंदी में प्रकाशित की जा रही हैं। सन् 1926 में 'राजदूत' तथा द्वितीय विश्व युद्ध के समय 'विजय' के अंक भी प्रकाशित हुए। फ़ीजी सरकार के सूचना–मंत्रालय ने 'फ़ीजी वृत्तांत' के प्रकाशन की शुरुआत अप्रैल 1976 में की। फ़ीजी वृत्तांत के प्रथम प्रकाशित तीन अंक मुझे भाषाविद् एवं भारत के फ़ीजी दूतावास के प्रमुख सचिव श्री विमलेश कांति वर्मा से प्राप्त हुए। 'फ़ीजी वृत्तांत' का सोलह पृष्ठीय अंक ए4 आकार में प्रकाशित हुआ था।

इस अंक में सरकार की ओर से आयोजित विभिन्न सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक गतिविधियों के सचित्र समाचार भी प्रकाशित हुए हैं। फ़ीजी वृत्तांत के अन्य अंकों में भी इस प्रकार के समाचारों के अलावा संसद समाचार आदि भी प्रकाशित हुए हैं। यह फ़ीजी की जनता को निःशुल्क उपलब्ध कराया जाता था।

फ़ीजी सरकार के सूचना–मंत्रालय द्वारा हिंदी में 'शंख' समाचार–पत्र का प्रकाशन भी किया गया। इस पत्र का संपादन कई वर्षों तक हिंदी के अनुभवी पत्रकार पं. राघवानंद शर्मा ने किया। उनका हिंदी भाषा पर अच्छा अधिकार रहा। स्पष्ट लेखन और निर्भीकता से लेखन उनके प्रमुख गुण रहे। बीस वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने 'जागृति' पत्र के संपादन का दायित्व भी सँभाला था। शंख के अगस्त 1984 के अंक के अवलोकन से यह स्पष्ट हुआ कि इस समाचार पत्र में भी फ़ीजी वृत्तांत की भाँति सरकार की विभिन्न योजनाओं एवं गतिविधियों का विवरण सचित्र प्रकाशित हुआ है। वर्तमान में शंख के स्थान पर फ़ीजी सरकार द्वारा हिंदी अंग्रेजी में फ़ीजी फोकस का भी प्रकाशन किया जा रहा है। अपनी फ़ीजी यात्रा में फ़ीजी फोकस का 9 अक्तूबर, 2016 का अंक पढ़ने को मिला। इस चौबीस पृष्ठीय बहुरंगी पत्र में फ़ीजी सरकार की

राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय गतिविधियों को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। फ़ीजी सरकार द्वारा इसका प्रकाशन नियमित रूप से किया जा रहा है। शिक्षा–मंत्रालय, फ़ीजी द्वारा 'नव–ज्योति' शीर्षक से चार पृष्ठीय बुलेटिन भी प्रकाशित किया जाता है, जिसमें हिंदी–शिक्षण संबंधी गतिविधियों के सचित्र समाचार प्रकाशित होते है।

'उदयाचल' का प्रकाशन

हिंदी परिषद, फ़ीजी ने 15 दिसंबर, 1982 को 'उदयाचल' साहित्यिक पत्रिका प्रारंभ की। इस महापरिषद की स्थापना 1970 में फ़ीजी में हिंदी भाषा, साहित्य तथा कला एवं संस्कृति की उन्नति में योगदान देने के लिए की गई थी। इस चालीस पृष्ठीय पत्रिका में फ़ीजी के सुप्रसिद्ध रचनाकारों की रचनाएँ प्रकाशित हुई। पत्रिका के संपादक एवं परिषद के अध्यक्ष पं. विवेकानंद शर्मा ने अपने संपादकीय में लिखा था–

"हिंदी इस मुल्क की समादृत भाषा है लेकिन इसे गौरवांवित/सिंहासन पर बैठाए रखने के लिए बहुत कुछ करते रहना होगा। इस दिशा में हिंद महापरिषद का एक लघु प्रयास है उदयाचल। इस पत्रिका के उन्नयन के लिए हमें आप हिंदी सेवी जगह के आशीर्वाद और सहयोग की अपेक्षा है।" इस संपादकीय में ही श्री शर्मा ने फ़ीजी के किसी विशिष्ट हिंदी लेखक एवं साहित्यकार को 'हिंदी' महापरिषद पुरस्कार की शुरुआत करने की घोषणा की और 1982 को प्रथम पुरस्कार हेतु फ़ीजी के महान हिंदी कवि पं. कमलाप्रसाद मिश्र का नाम भी घोषित किया। विविध रचनाओं के साथ ही उदयाचल का यह अंक फ़ीजी के हिंदी साहित्य जगत की महत्वपूर्ण उपलब्धि रही। किंतु उदयाचल का केवल एक अंक ही प्रकाशित हो पाया। हिंदी महापरिषद, फ़ीजी साधनाभाव के कारण इसका प्रकाशन जारी नहीं रख सकी।

'साहित्यकार' का प्रकाशन

फ़ीजी हिंदी साहित्य समिति ने जनवरी 1986 में 'साहित्यकार' तिमाही पत्रिका प्रारंभ की। सन् 1957 में फ़ीजी कुमार साहित्य परिषद् के नाम से इसकी स्थापना सिंगातोका में की गई थी। तब यह सीमित पैमाने पर विद्यार्थियों में हिंदी का प्रचार करती थी। 'कुमार' नाम से हस्तलिखित मासिक पत्रिका निकलती थी जिसे विद्यार्थियों और नवयुवकों को पढ़ने हेतु भेजा जाता था। 1962 में इसका नाम बदलकर 'फ़ीजी हिंदी साहित्य परिषद' रखा गया। सन् 1983 में इसे 'फ़ीजी हिंदी साहित्य समिति' के नाम से पंजीकृत किया गया। समिति प्रतिमाह एक सूचना–पत्र का प्रकाशन कर पत्रिका का निःशुल्क वितरण करती थी। समिति ने निर्णय लिया कि सूचना–पत्र को त्रैमासिक पत्रिका में परिवर्तित कर दिया जाए। फलस्वरूप 'साहित्यकार' पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ।

इस बीस पृष्ठीय पत्रिका के शुरुआती चार पृष्ठों में 'फ़ीजी हिंदी' साहित्य समिति के उद्देश्य, कार्य, योजनाएँ आदि के बारे में विस्तार से बताया गया है। 'भारत के सांस्कृतिक संबंध और हिंदी' शीर्षक से हीरानंद झा शास्त्री ने व्याख्यायित किया कि संपूर्ण भारतीय–संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता हिंदी में है। समिति के सचिव रामनारायण गोविंद ने 'फ़ीजी द्वीप में हिंदी दिवस' शीर्षक से समारोह की रिपोर्ट अत्यंत रोचक ढंग से प्रस्तुत की है। डॉ धर्मध्वज त्रिपाठी का लेख 'प्रेमचंद की मानवीय दृष्टि' भी प्रकाशित हुई है। 'शांति दूत' के तत्कालीन संपादक एम.सी.विनोद शर्मा ने अपने आलेख 'साहित्य सेवा की अभिलाषा' में आशा व्यक्त की कि यह पत्रिका साहित्य प्रेमियों की तृष्णा बुझाती रहे। इस प्रकार साहित्यकार पत्रिका से फ़ीजी की हिंदी पत्रकारिता में महत्वपूर्ण शुरुआत हुई। किंतु साहित्यकार का प्रकाशन लंबे अरसे तक नहीं हो सका।

'सरताज' का प्रकाशन

सन् 1988 में 'सरताज' नामक हिंदी साप्ताहिक का प्रकाशन एस.एस. दास के संपादन में फ़ीजी से शुरू हुआ था। इस पत्र का मूल्य पैंतीस सेंट था इसे 'वॉयस् ऑफ पीपल' नाम दिया गया। पत्र 11.5'' × 17'' आकार तथा छह कॉलम में फ़ीजी स्पोटर्स वीक प्रिंटर्स से होता था। पत्र का मुख्य उद्देश्य जनता की आवाज प्रशासन तक पहुँचाना था। इसमें फ़ीजी, भारत तथा अन्य देशों के भी समाचार छपते थे। संपादकीय के अतिरिक्त 'डंके की चोट', 'एकदम खरी बात', 'स्वतंत्र विचार', 'जन्मदिन मुबारक', 'श्रृद्धांजलि', 'आधुनिक भारत की झलकें', 'बच्चों की दुनिया', 'कार्टून कोना' 'धर्म' और 'ज्ञान चर्चा' तथा 'हिंदी सीखिए' आदि कई स्थायी स्तंभ भी है। पत्र में कविताएँ तथा कहानियाँ भी छपती थी। संपादकीय के लिए तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक समस्याओं को चुना जाता था। कभी–कभी अंतरराष्ट्रीय समस्याओं पर भी मौलिक विचार प्रकट किए जाते थे। सरताज का प्रकाशन कुछ वर्षों तक ही हो पाया।

'संस्कृति पत्रिका' का प्रकाशन

फ़ीजी में हिंदी के विद्वान, राजनीतिज्ञ, हिंदी महापरिषद के अध्यक्ष, सनातन संदेश तथा उदयाचल के पूर्व संपादक डॉ. विवेकानंद शर्मा ने सन् 2001 में त्रैमासिक संस्कृति पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। हिंदी भाषा, साहित्य तथा भारत और फ़ीजी संस्कृति पर केंद्रित यह एक अस्सी पृष्ठीय संपूर्ण पत्रिका थी। अपनी फ़ीजी यात्रा के दौरान स्व. डॉ. विवेकानंद शर्मा की पुत्री वंदना शर्मा ने सन् 2003 से 2005 तक के 'संस्कृति' के कुछ अंक उपलब्ध कराए। इन अंकों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ, संपादन और प्रस्तुति उत्कृष्ट कोटि की थी। प्रत्येक अंक के संपादकीय में डॉ. शर्मा व फ़ीजी में हिंदी भाषा के उद्भव एवं विकास पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए ऐतिहासिक तथ्यों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते थे। पत्रिका को विभिन्न स्तम्भों – कहानी, लघुकथा, कविता, स्वास्थ्य, बच्चों की दुनिया, कॉमिक के अलावा मुहावरे, शब्दों का ज्ञान बढ़ाएँ, 'शब्द खोज', 'चित्रावली', 'थोड़ा मुस्करा लो' आदि के माध्यम से अत्यंत पठनीय एवं उपयोगी बना दिया गया था। पत्रिका के प्रारंभिक पृष्ठ संपादक की ओर से यह सूत्र वाक्य भी प्रकाशित होता था– ''हिंदी के रथ पर आरूढ़ होकर ही हम अपनी संस्कृति की रक्षा कर सकते हैं जो हमारी यात्रा का आधार है।'' भारतीय त्योहारों के अवसर पर इस पत्रिका के विशेषांक भी प्रकाशित होते थे। जनवरी–मार्च 2015 का अंक होली विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ जिसमें नियमित स्तम्भों के अलावा होली पर विशेष लेख, होली पर गाए जाने वाले गीत फिल्मों में होली गीत आदि का प्रकाशन भी हुआ है। इस पत्रिका में फ़ीजी के अलावा ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और भारत के रचनाकारों की रचनाएँ भी प्रकाशित होती थी। 'संस्कृति' जैसी उत्कृष्ट पत्रिका के प्रकाशन से फ़ीजी की हिंदी पत्रकारिता समृद्ध हुई। संस्कृति का प्रकाशन भी कुछ वर्षों तक ही हो पाया।

'हिंदी रेडियो एवं 'टेलीविजन'

फ़ीजी बाड़कास्टिंग कंपनी द्वारा रेडियो प्रसारण 1935 में शुरू हुआ और उस समय कुछ ही लोगों के पास रेडियो हुआ करते थे। आज छह मुख्य रेडियो स्टेशन हैं जिनमें दो हिंदी के हैं – 'रेडियो फ़ीजी2' एवं 'मिर्ची फिल्म।' अन्य दो–दो चैनल क्रमशः काईबीती और अंग्रेजी में हैं। इन रेडियो स्टेशनों पर चौबीस घंटे कार्यक्रम चलते रहते हैं और इंटरनेट के माध्यम से कई देशों में सेवाएँ उपलब्ध हैं। हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार में रेडियो फ़ीजी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। सर्वाधिक कार्यक्रम हिंदी भाषा में ही होते हैं।

फ़ीजी बॉडकास्टिंग कॉर्पोरेशन तीन टेलीविजन चैनलों – एफ डी सी टी वी, एफ बी (2) एफ. बी. सी. शार्टस पर निःशुल्क

सेवाएँ प्रदान करता है। साथ ही एफ.बी.सी. न्यूज के माध्यम से दैनिक समाचार सेवा भी प्रदान करता है। फ़ीजी रेडियो (दो) के कार्यक्रमों में प्रसिद्ध हिंदी गीतों के अलावा अनेक प्रकार के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं।

फ़ीजी में इन पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन से हिंदी पत्रकारिता का एक अनुपम, प्रभावपूर्ण, तथा दीर्घकालीन इतिहास निर्मित हुआ है। हिंदी को जागृत रखने तथा भारतीयों को एक सूत्र में बाँधे रखने में इन पत्र–पत्रिकाओं का अमूल्य योगदान रहा है। अब यह प्रश्न विचारणीय है कि जिस फ़ीजी में हिंदी के अनेक पत्र– पत्रिकाएँ एक साथ प्रकाशित होते थे। वहाँ आज हिंदी के एक भी स्तरीय समाचार पत्र का प्रकाशन नहीं हो रहा है। हाल ही में भारत–फ़ीजी मैत्री संघ द्वारा तिमाही ई–पत्रिका की शुरुआत डॉ. इंदु चंद्रा के संपादन में हुई है। फ़ीजी में हिंदी को संवैधानिक भाषा का स्थान प्राप्त है और विद्यालयीन शिक्षा जगत में भी हिंदी की स्थिति संतोषजनक है। इन परिस्थितियों में हिंदी में पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन की सार्थक पहल अवश्य होनी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. फ़ीजी में हिंदी– स्वरूप और विकास (विमलेश कांति वर्मा, धीरा वर्मा)
2. विदेशी विद्वानों का हिंदी प्रेम –जगदीश प्रसाद बरनवाल 'कुंद'
3. प्रवासी–संसार पत्रिका – फ़ीजी पर विशेष, जुलाई–सितंबर 2016
4. प्रवासी–जगत पत्रिका – फ़ीजी विशेषांक – जनवरी–मार्च 2021

फ़ीजी से प्रकाशित पत्र–पत्रिकाएँ

1. वृद्धि –अगस्त 1927 (प्रथम अंक), अक्तूबर 1929 अंक
2. आर्यवीर – 3 मई, सन् 1929
3. शांतिदूत –1935 से 2020 तक के विविध अंक एवं दीपावली विशेषांक
4. फ़ीजी समाचार – 4 जुलाई, 1936, 19 दिसंबर 1968
5. जागृति – 26 जनवरी, 1950 (प्रथम अंक)
6. फ़ीजी संदेश – 21 मई, 1965
7. फ़ीजी वृत्तांत – अप्रैल 1976 (प्रथम अंक) मई 1976, जून 1976
8. शंख– अगस्त 1984
9. उदयांचल– दिसंबर 1982 (प्रवेशांक)
10. फ़ीजी सन् (अंग्रेजी) हिंदी दिवाली स्पेशल– 29 अक्तूबर, 1986
11. साहित्यकार– जनवरी 1986
12. संस्कृति पत्रिका– 2003 से 2005 के विविध अंक
13. नवज्योति – अप्रैल–जून, 2016
14. फ़ीजी फोकस –9 अक्तूबर, 2016

❑❑❑

विश्व में हिंदी और फ़ीजी

करुणाशंकर उपाध्याय

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि बारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन फ़ीजी में प्रस्तावित है। फ़ीजी भारत के बाहर पहला ऐसा देश है जहाँ हिंदी को आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त है। यहाँ प्रयुक्त होने वाली हिंदी को फ़ीजी हिंदी कहते हैं। 'फ़ीजी हिंदी' एक इंडो–आर्यन भाषा मानी जाती है जिसका उद्‌भव अवधी से हुआ है। 'फ़ीजी हिंदी' मुख्य रूप से फ़ीजी में लगभग 400,000 लोगों द्‌वारा बोली जाती है। आज के फ़ीजी हिंदी भाषियों के पूर्वज 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी के प्रारंभ में गिरमिटिया मजदूर के रूप में फ़ीजी आए थे। इनकी कथा मॉरिशस गए भारतीयों से पर्याप्त साम्य रखती है। फ़ीजी में हिंदी भाषा प्रयोग का इतिहास 15 मई 1879ई. से आरंभ होता है। यहाँ अंग्रेजों द्‌वारा लाए गए भारतीय मजदूर पहली बार इसी तिथि को पहुँचे थे। दरअसल अंग्रेजों ने मॉरिशस, गयाना, सुरीनाम जैसे देशों में भारतीय मजदूरों की उपयोगिता का अच्छा अनुभव प्राप्त किया था, जिसके कारण वे बड़ी संख्या में भारतीय मजदूरों को अनुबंध अथवा शर्तबंदी के आधार पर यहाँ लाना शुरू किया। यह भी चिंतनीय है कि एग्रीमेंट को अवधी में गिरमेंट कहते हैं जिसका बिगड़ा हुआ रूप बहुप्रचलित गिरमिटिया शब्द है। इस संदर्भ में फ़ीजी के सुप्रसिद्‌ध साहित्यकार डॉ. विवेकानंद शर्मा ने लिखा है कि सन् 1916 ई. तक 60000 से अधिक मजदूर फ़ीजी पहुँचते रहे और श्रमिकों के रूप में इस छोटे से द्‌वीप को आबाद करते रहे। भारतवर्ष तब ब्रिटिश सरकार के अधीन था। भारत से दूर सुदूर पूर्व में प्रशांत महासागर के दक्षिण प्रांगण में 400 से भी अधिक छोटे–छोटे द्‌वीपों का समूह फ़ीजी भी ग्रेट ब्रिटेन का एक उपनिवेश था। गन्ना उत्पादन के लिए यह देश अत्यधिक अनुकूल एवं उपयोगी पाया गया।[1] यह सुखद संयोग है कि 24 से 29 फरवरी 2000 को मॉरिशस में आयोजित विश्व भोजपुरी सम्मेलन के दौरान मुझे डॉ. विवेकानंद शर्मा से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस दौरान शर्मा जी ने फ़ीजी के जनजीवन, भारतीयों की संघर्षगाथा और हिंदी के विकास क्रम पर अतिशय गंभीर जानकारी दी। यह भी सुखद संयोग है कि मॉरिशस की तरह फ़ीजी जाने वाले गिरमिटिया मजदूर भी अपने साथ रामचरितमानस, हनुमान चालीसा और दुर्गा सप्तशती लेकर गए थे। यह भी समझना होगा कि कथित समय में जिन लोगों को भारत के कलकत्ता अब कोलकाता, मद्रास और मुंबई बंदरगाह से फ़ीजी भेजा गया उनमें मुंबई से मराठी भाषी, मद्रास से तमिल और तेलुगु भाषी तथा कोलकाता से अवधी व भोजपुरी बोलने वालों का शुमार विशेष रूप से था। इस कारण सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, धार्मिक एकता, गरीबी, सहानुभूति और भाषिक संप्रेषण के प्रश्न ने उनमें सौमनस्य का भाव पैदा किया। वे जाने–अनजाने भावनात्मक एकता के सूत्र में बँधकर एक ऐसी भाषा में संवाद करने लगे जो आगे चलकर फ़ीजी हिंदी कहलाई।

उन्होंने बताया कि उत्तर और दक्षिण भारत की कई तरह की भाषाएँ बोली के समन्वय से उजी बात (फ़ीजीबात) के रूप में जानी जाने वाली एक भाषा सामने आई। आगे चलकर यह फ़ीजी हिंदी बन गई, जिसे हिंदुस्तानी भी कहा जाता है, और जिसमें

अवधी, भोजपुरी, बिहारी भाषाओं, फिजियन और अंग्रेजी से शब्दावली और प्रभाव शामिल हैं।

'फ़ीजी हिंदी' मुख्य रूप से फ़ीजी में बोली जाती है, लेकिन कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, यूके और यूएसए में भी 'फ़ीजी हिंदी' बोलने वाले हैं। फ़ीजी के कुछ हिस्सों में बड़े इंडो– फ़िज़ियन समुदायों के साथ
हिंदी को समझ सकते हैं, और कुछ इसे बोल सकते हैं।

'फ़ीजी हिंदी' का प्रयोग साहित्य में भी प्रचुर मात्रा में हो रहा है। फ़ीजी के संबंध में मेरे मन में जिज्ञासा पैदा करने का श्रेय डॉ. विवेकानंद शर्मा को ही है। मैंने अपनी पुस्तक 'हिंदी का विश्व संदर्भ' में इसका संकेत भी किया है। मैं 21 जनवरी, 2013 को मुंबई विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग का पहली बार अध्यक्ष बना और अध्यक्ष बनने के तुरंत बाद मैंने 8 फरवरी, 2013 को हिंदी का अंतरराष्ट्रीय स्वरूप और फ़ीजी विषय पर एक दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया। इस संगोष्ठी में फ़ीजी के प्रथम सचिव ए.नायको को भी विशिष्ट अतिथि के रूप में आमंत्रित किया था। इस संगोष्ठी में ए.नायको ने अपने वक्तव्य के अलावा अनौपचारिक बातचीत में भी फ़ीजी में हिंदी की स्थिति और उसकी संभावनाओं पर विशेष जानकारी दी थी। हमारे तत्कालीन कुलपति डॉ. राजन वेलूकर की हार्दिक इच्छा थी कि मुंबई विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग और फ़ीजी विश्वविद्यालय के मध्य शैक्षणिक विनिमय कार्यक्रम आरंभ किया जाए। उस समय ए.नायको ने बताया था कि फ़ीजी विश्वविद्यालय सवेनी, लुतोका फ़ीजी में स्थित है। यह दिसंबर 2004 में फ़ीजी इंस्टीट्यूट ऑफ एप्लाइड स्टडीज के अकादमिक नेतृत्व और शिक्षा के लिए समर्पित एक हिंदू धार्मिक संगठन, फ़ीजी की आर्य प्रतिनिधि सभा के वित्तीय प्रयोजन के तहत स्थापित किया गया था। यहीं पर हिंदी विभाग के साथ अकादमिक विनिमय कार्यक्रम आरंभ किया जा सकता है। लेकिन उसके कुछ समय बाद ही ए. नायको का आकस्मिक निधन हो गया। इस कारण उक्त योजना क्रियान्वित नहीं हो सकी। यह भी ध्यातव्य है कि 14 फरवरी, 2016 को, नेटिव लैंड्स ट्रस्ट बोर्ड (एनएलटीबी) ने हस्ताक्षर किए और विश्वविद्यालय को 5 हेक्टेयर की संपत्ति 99 साल के पट्टा पर दी। इसके लिए विश्वविद्यालय ने F$100,000 का भुगतान भी किया। साथ ही, विश्वविद्यालय जमींदारों के बच्चों के लिए सालाना दो छात्रवृत्ति प्रदान करने के बदले में यह अनुबंध संपन्न हुआ। इस तरह डॉ. विवेकानंद शर्मा और ए.नायको ने फ़ीजी और वहाँ की हिंदी के संबंध में जो रुचि जगाई थी, वह संभव है कि विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर अपने पूर्ण परिपाक तक पहुँच जाए। इस दृष्टि से आगामी सम्मेलन का विशेष महत्व है। फ़ीजी के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण कार्य राकेश पांडेय ने किया है। इन्होंने प्रवासी संसार का जुलाई–सितंबर 2016 का अंक फ़ीजी पर विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया है। इन्होंने फ़ीजी यात्रा के दौरान प्राप्त अनुभवों पर अपने संपादकीय में लिखा है कि, जब मैं सुवा बाजार घूमने निकला तो सब कुछ अपने–सा ही, सड़क के बीच में 'फ़ीजी रेडियो देश की धड़कन' के रंगारंग प्रोग्राम हो रहे, थे। जोर–जोर से हिंदी फिल्मों के गाने बज रहे थे, कुछ कलाकार गानों की धुन पर नाच रहे थे और जनता से कुछ प्रश्न पूछे जा रहे थे। जीतने वाले को छाता दे रहे थे, मैंने भी दो छाते जीते। मैंने यह जीवंतता अन्य गिरमिट देशों में नहीं देखी है। यहाँ के दोनों विश्वविद्यालय जाने का अवसर मिला, हिंदी की कक्षाओं में जाने का मौका मिला। मैंने पाया कि हिंदी को खतरा है तो अंग्रेजी से, लेकिन अगर ये 'फ़ीजी हिंदी' सशक्त रहेगी तो हिंदी का भविष्य भी सुरक्षित रहेगा अन्यथा भाषाई अंग्रेजियत स्वतः कायम हो जाएगी। फ़ीजी में हिंदी के संदर्भ में एक

अनुभव अवश्य साझा करना चाहूँगा। मेरे स्वागत में शरद जी ने अपने निवास पर एक छोटी सी पार्टी का आयोजन किया। उसमें फ़ीजी के अनेक समाज के लोग थे, मैं नाम भूल रहा हूँ। एक तत्कालीन शिक्षा विभाग के उपसचिव फ़ीजी हिंदी में मुझसे बतिया रहे थे, फिर अचानक अंग्रेजी बोलने लगे तो मैंने टोका कि आप तो हिंदी में बोल रहे थे, अब अंग्रेजी में क्यों बोलने लगे? उनके उत्तर ने इन देशों में हिंदी के कमजोर होने का एक कारण बता दिया। उनका कहना था कि जो भारत से अधिकारी आते हैं, यह बताते हैं कि हमारी हिंदी ठीक नहीं है। हम गंवारू हिंदी बोलते हैं। मैंने उन्हें आश्वस्त किया कि आपकी हिंदी तो बहुत अच्छी है, ये रामचरितमानस की हिंदी है। हमारे भारत के अनेक भाषा–भाषी इन देशों के दूतावासों में कार्यरत होते हैं, उनके ज्ञान की अपनी सीमा होती है,वह अपनी जगह ठीक हैं कि भारत की राज–भाषा खड़ी बोली हिंदी है। लेकिन अनजाने में वह इन देशों में हिंदी की आधार संरचना को कमजोर कर जाते हैं। हमें इन तथ्यों का ध्यान रखना चाहिए।[2] इस तरह पांडेय जी ने फ़ीजी में हिंदी की स्थिति का चिंतनीय आकलन किया है।

हम हिंदी की विश्वव्याप्ति और वैश्विक भाषा के रूप में अद्यतन स्थिति फिर विचार करते हैं तो पाते हैं कि आज हिंदी संपूर्ण विश्व में सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है भारतवर्ष की विकासशील जनसंख्या हिंदी के प्रसार का एक बड़ा कारण है। आज हिंदी अनेक बोलियों से समन्वित भाषा है। उसका देश–विदेश में अपना संयुक्त परिवार है। आज जितने लोग मातृभाषा अथवा पहली भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग करते हैं, उससे कहीं अधिक लोग उसका प्रयोग द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम और विदेशी भाषा के रूप में प्रयोग करते हैं। इस समय संपूर्ण विश्व में बहुभाषिकता को बढ़ावा मिल रहा है। फलतः हिंदी संपूर्ण विश्व में पैंसठ करोड़ लोगों की पहली भाषा और पचास करोड़ लोगों की दूसरी और तीसरी भाषा है। वह गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, जम्मू–कश्मीर, कर्नाटक, केरल, तेलंगाना तथा पूर्वोत्तर के भारतीय राज्यों और अधिकांश केंद्र शासित प्रदेशों तथा नेपाल, भूटान, पाकिस्तान, बांग्लादेश, संयुक्त अरब अमीरात, ओमान, फ़ीजी, मॉरिशस, थाईलैंड, सूरीनाम, त्रिनिदाद और गयाना जैसे देशों में दूसरी एवं तीसरी भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है। शेष विश्व में लगभग बीस करोड़ लोगों द्वारा चौथी, पांचवी और विदेशी भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है। इस तरह संपूर्ण विश्व में 135 करोड़ लोग किसी–न–किसी रूप में हिंदी बोल अथवा समझ लेते हैं। यही पद्धति अंग्रेजी और चीन की भाषा मंदारिन का आकलन करने वाले भी अपनाते हैं। अंग्रेजी की संख्या का आकलन करने वाले उन भारतीयों को भी अंग्रेजी बोलने वालों में शुमार करते हैं जो अंग्रेजी माध्यम से पढ़े हैं। यद्यपि अमरीकी–ब्रिटिश और ऑस्ट्रेलियाई अंग्रेजी में पर्याप्त अंतर है लेकिन उन्हें अलग भाषा के रूप में उल्लिखित नहीं किया जाता है। ठीक इसी तरह चीन की भाषा मंदारिन भी छप्पन बोलियों और विभाषाओं से समन्वित है। लेकिन चीन सरकार उन्हें अलग नहीं मानती। चीन में मंदारिन के अलावा कैंटोनी, अंग्रेजी, पुर्तगाली, यूगुर, तिब्बती, मंगोली और झियांग को भी आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त है। इसी तरह यह भी तुलनीय है कि भारत में 82 प्रतिशत भारतीय हिंदी बोल अथवा समझ सकते हैं जबकि चीन में केवल 62 प्रतिशत लोग ही मंदारिन बोल अथवा समझ पाते हैं। हिंदी को वैश्विक भाषा का दर्जा दिलाने में भारत की विकासमान अर्थव्यवस्था भी है।

इस समय भारत की जनसंख्या 138 करोड़ जबकि अमरीका की 33 करोड़, कनाडा की लगभग 4 करोड़, संपूर्ण यूरोप की 75 करोड़, रूस की 15 करोड़ और ऑस्ट्रेलिया की ढाई करोड़ है। कहने का आशय यह है कि इस समय धरती के लगभग 60 प्रतिशत

हिस्से पर जितनी जनसख्या रहती है उससे अधिक जनसंख्या भारत जैसे संपूर्ण विश्व के 6 प्रतिशत से भी कम क्षेत्रफल वाले देश में रहती है। इस दृष्टि से भी हिंदी का पलड़ा भारी है। हमारी जनसंख्या हिंदी के संख्याबल का सबसे बड़ा आधार है।

डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल ने भी हिंदी जानने वालों की संख्या का आकलन किया है। इन्होंने अपने शोध में बोलने वालों की संख्या में उर्दू का भी हिंदी के अंतर्गत समावेश किया है जो व्यावहारिक रूप से सही है। चूँकि उर्दू का अपना कोई व्याकरण नहीं है और वह अपनी भाषिक संरचना एवं शब्द–संपदा के लिए मूल रूप से हिंदी पर ही निर्भर है। अतः वह भाषा–वैज्ञानिक दृष्टि से लिपिभेद के बावजूद हिंदी की एक शैली मात्र है। ध्यान रहे यह बात केवल बोलने के संदर्भ में है, हिंदी में काम करने वालों को लेकर नहीं है। इस दृष्टि से चीजों को सही संदर्भ में समझने की अपेक्षा है।

आज डिजिटल विश्व में हिंदी सबसे तीव्र गति से बढ़ने वाली भाषा है। अब स्वयं गूगल का सर्वेक्षण यह सिद्ध करता है कि इंटरनेट पर हिंदी में प्रस्तुत होने वाली सामग्री में विगत पाँच वर्षों में 94 प्रतिशत की दर से इजाफा हुआ है जबकि अंग्रेजी केवल 19 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है।इस समय भारत में 75 करोड़ लोगों के पास स्मार्ट फोन है जिसमें से 63 करोड़ से अधिक लोग हिंदी का प्रयोग करते हैं। भारत के 93 प्रतिशत युवा यू–टयूब पर हिंदी का ही प्रयोग करते हैं। भारतीयों द्वारा हर महीने गूगल प्ले स्टोर से एक अरब ऐप्स डाउनलोड किए जाते हैं। हिंदी वॉयस सर्च क्वेरी 400 प्रतिशत की दर से प्रतिवर्ष बढ़ रही है और सोशल मीडिया हिंदी जानने वालों का सबसे बड़ा पटल बन गया है।इस समय जो तकनीकी सुविधा अंग्रेजी में उपलब्ध है वह हिंदी में भी उपलब्ध है। इस समय अंग्रेजी की तुलना में फेसबुक, ट्विटर पर हिंदी ज्यादा लोकप्रिय है। इसका सबसे बड़ा कारण अभिव्यक्ति की सरलता है। इसलिए अंग्रेजी की तुलना में हिंदी में प्रस्तुत होने वाली सामग्री ज्यादा शेयर भी की जाती है। अब ब्लॉगिंग के महासागर में हिंदी की उत्ताल तरंगें देखी जा सकती हैं। भारत निकट भविष्य में विश्व का सबसे बड़ा इंटरनेट उपभोक्ता बनने जा रहा है जिसका सबसे प्रभावी माध्यम हिंदी रहने वाली है। सोशल मीडिया के कारण अब ई–मेल भी अप्रासंगिक हो रहा है। अब भाषाओं का प्रशिक्षण भी ई–लर्निंग के माध्यम से संभव है। हिंदी में इस समय जो वेब लिंक्स उपलब्ध हैं उनमें राष्ट्रीय पोर्टल, साहित्य कोश और शब्द कोश संबंधी पोर्टल, शिक्षा एवं हिंदी शिक्षण संबंधी पोर्टल, धर्म एवं खेल संबंधी पोर्टल, पत्र–पत्रिकाओं तथा विविध चैनलों के पोर्टल का समावेश है। एक नवीनतम सूचना यह भी है कि नेटफिलक्स अब पूरी तरह से हिंदी में उपलब्ध है। आप अमेजान पर भी हिंदी में आदेश भेज सकते हैं। इस समय अधिकांश बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हिंदी में अपने उत्पाद के साथ उपस्थित हैं। संक्षेप में, आज वे सारी तकनीकी सुविधाएँ जो विश्व की किसी भी भाषा के पास हैं, वे हिंदी में या तो उपलब्ध हैं अथवा बनने की प्रक्रिया में हैं।

जब हम भाषाओं के भविष्य पर विचार करें तो यह भी जरूरी है कि हम उनके इतिहास और वर्तमान स्वरूप को भी समझ लें। हिंदी लगभग एक हजार सालों से अलग– अलग रजवाड़ों और जनपदों में राजकीय भाषा रही है। वह स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में संवाद का मुख्य जरिया बनकर उभरती है और खैबर के दर्रे से लेकर रंगून तक वह स्वाधीनता आंदोलन की अभिव्यक्ति का स्वाभाविक माध्यम बनती है। अपनी इसी ऐतिहासिक भूमिका के कारण वह स्वतंत्र भारत की राज–भाषा बनती है।वह लंबे समय तक नेपाल की भी दूसरी राज–भाषा रही है जिसका दर्जा वहाँ की कम्युनिस्ट सरकार ने समाप्त कर दिया है। हिंदी इस समय भारत के अलावा फ़ीजी एवं संयुक्त अरब अमीरात में भी आधिकारिक भाषा बन गई है। अब संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी अपना ट्विटर

हैंडल हिंदी में आरंभ कर दिया है। उसकी वेबसाइट भी हिंदी में उपलब्ध है। वह हर शुक्रवार एक घंटे का हिंदी कार्यक्रम रेडियो पर प्रस्तुत कर रहा है। अभी हाल ही में भारत सरकार के प्रयासों से संयुक्त राष्ट्र संघ ने हिंदी में भी कामकाज करने और सूचनाएँ देने की सुविधा प्रदान की है। हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा और हर अंतरराष्ट्रीय मंच पर हिंदी में अपनी बात बड़े प्रभावी ढंग से रखते हैं जिससे उनकी वैश्विक लोकप्रियता में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी हुई है। इसी तरह अमरीकी जनगणना के अनुसार सन् 2000 से 2011 के बीच अमरीका में हिंदी बोलने वाले 105 प्रतिशत की दर से बढ़े हैं। हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि विश्व के जितने भी विकसित राष्ट्र हैं उन सबने अपनी भाषा में विकास किया है। यह बात अमरीका, रूस, जर्मनी, जापान, फ्रांस, ब्रिटेन, इटली, स्पेन, पुर्तगाल, इजरायल और चीन तक समान रूप से देखी जा सकती है। इजरायल जैसे छोटे से राष्ट्र ने हिब्रू में उत्कृष्ट तथा मौलिक शोधकार्य करके अब तक बारह नोबेल पुरस्कार प्राप्त किए हैं। ये सारे देश अपनी भाषाओं के विकास पर बड़ी धनराशि खर्च करते हैं। इसकी तुलना में भारत सरकार हिंदी एवं भारतीय भाषाओं पर बहुत कम धनराशि खर्च करती है। इन देशों की सरकारें ऐसी योजनाएँ प्रस्तुत करतीं हैं जिससे उनकी भाषा और साहित्य के प्रति आकर्षण बढ़े और विश्व समुदाय की उन्मुखता उनकी ओर बनी रहे। हम भारत सरकार से भी यही अपेक्षा रखते हैं। यह तभी संभव है जब समूचा हिंदी जगत सरकार पर दबाव बनाए। हम भारत सरकार को इस बात के लिए तैयार करें कि वह विश्व के तमाम देशों में हिंदी और भारतीय भाषाओं की स्थिति का आकलन करने के लिए विद्वानों–विशेषज्ञों की एक समिति गठित करे जो हर दस साल की जनगणना के बाद हिंदी और भारतीय भाषाओं की वस्तुस्थिति का खाका तैयार करे। इसी के साथ भारत में परिचालन करने तथा अंधाधुंध कमाई करने वाली तमाम कंपनियों का यह कर्तव्य सुनिश्चित किया जाए कि वे अपनी सेवाएँ हिंदी और भारतीय भाषाओं में दें। उनके विज्ञापन में हमारी भाषाओं को यथोचित सम्मान मिले। चूँकि लिपि भाषा का शरीर है अतः देवनागरी तथा दूसरी भारतीय लिपियों के प्रयोग को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

यह हर्ष का विषय है कि आज भारत विश्व की सबसे तीव्र गति से उभरने वाली अर्थ व्यवस्था है और अंतरराष्ट्रीय राजनीति में उसकी हैसियत लगातार बढ़ रही है। जब किसी राष्ट्र को विश्व बिरादरी अपेक्षाकृत ज्यादा महत्व और स्वीकृति देती है तथा उसके प्रति अपनी निर्भरता में इजाफा पाती है तो उस राष्ट्र की तमाम चीजें स्वतः महत्वपूर्ण हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में भारत की विकासमान अंतरराष्ट्रीय हैसियत हिंदी के लिए वरदान–सदृश है। अब हिंदी राष्ट्र–भाषा अथवा राज–भाषा की गंगा से विश्वभाषा का गंगा सागर बनने की प्रक्रिया में है। आज विश्व स्तर पर उसकी स्वीकार्यता और व्याप्ति अनुभव की जा सकती है। आने वाला समय हिंद और हिंदी का है। इस समय हिंदी राजनीति, समाज–व्यवस्था, धर्म, दर्शन, संस्कृति, पर्यटन, मनोरंजन, मीडिया, खेल और रोजगार के क्षेत्र में सबसे प्रभावी भाषा बनकर उभरी है। हमें एकजुट होकर अंग्रेजी के खिलाफ खड़े होना चाहिए। हिंदी और भारतीय भाषाओं को हम शिक्षा का माध्यम बनवाकर अपनी भाषाओं के भविष्य को सदा–सर्वदा के लिए सुरक्षित कर सकते हैं। हमें अपनी सरकारों को इस बात के लिए तैयार करना होगा कि वे शिक्षा का माध्यम हिंदी और भारतीय भाषाओं को रखें और अंग्रेजी दूसरी विदेशी भाषाओं की तरह एक भाषा के रूप में सिखाई जाए। ऐसा करके ही हम आगामी चुनौतियों के लिए अपने युवाओं को सक्षम, समझदार तथा नवाचार के योग्य बना सकते हैं। तभी वे विश्वस्तरीय मौलिक शोधकार्य कर सकेंगे। यह दौर खुली एवं विश्वस्तरीय प्रतिस्पर्धा का है। इस युग का मंत्र है– "स्पर्धा

में जो उत्तम ठहरे रह जावें।" हम अपने नौनिहालों को हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में ही विश्वस्तरीय प्रतियोगिता के योग्य बना सकते हैं। यदि भारत को विश्व गुरु की अपनी स्वाभाविक छवि पुनः प्राप्त करनी है तो यह हिंदी और भारतीय भाषाओं द्वारा ही संभव है। हम विदेशी भाषा में विश्वगुरु नहीं बन सकते हैं। संक्षेप में, इतना तय है कि आने वाले समय में विश्व की बड़ी भाषाओं का भविष्य और वर्चस्व बढ़ेगा लेकिन जिन उपभाषाओं और बोलियों के बोलने वाले बहुत कम हैं उनके समक्ष अस्तित्व का संकट उपस्थित होगा। इन बोलियों को भी डिजिटलीकरण द्वारा सुरक्षित किया जा सकता है। इस दिशा में विश्व समुदाय को और भी गंभीर होने की जरूरत है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम नवीनतम तकनीक का सदुपयोग करके भारतीय भाषाओं के समक्ष आसन्न संकट का सफलतापूर्वक सामना कर सकेंगे। इसी दिशा में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के रूप में एक बड़ा कदम उठाया गया है। इस दृष्टि से यह स्वाधीन भारत का सबसे बड़ा प्रयास है। हमारी वर्तमान सरकार इसी वर्ष से अभियांत्रिकी और चिकित्सा की पढ़ाई हिंदी में आरंभ करवाकर एक बड़े लक्ष्य की ओर कदम बढ़ा चुकी है। वर्तमान भारत सरकार में अनेक मंत्रालय अपना कार्य हिंदी के माध्यम से ही संपन्न कर रहे हैं। आज सचमुच हिंदी विश्व की सबसे तीव्र गति से बढ़ने वाली भाषा बन गई है।

जहाँ तक फ़ीजी का सवाल है तो यह न्यूजीलैंड से 2000 किमी. उत्तर–पूर्व के प्रशांत महासागर के मेलानेशिया में स्थित एक द्वीप– देश है जिसकी खोज डच और अंग्रेजों ने की थी। यह प्राकृतिक संसाधनों और मनोरम समुद्र–तटों के कारण पर्यटकों को आकर्षित करता है। यहाँ की बहुप्रयुक्त भाषा फिजियन हिंदी है। यह अवधी एवं हिंदी की अन्य बोलियों के मिश्रण से बनी है। इसमें फ़ीजी और अंग्रेजी के शब्दों की भी अच्छी–खासी संख्या है। इसे फ़ीजीबात भी कहा जाता है।सन 1879 में यहाँ अंग्रेजों द्वारा अनुबंध के अंतर्गत अवध, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार से श्रमिक लाए गए। ऐसा माना जाता है कि 1879 से 1916 के बीच यहाँ 61000 श्रमिक लाए गए। फलतः उनके द्वारा फ़ीजी में बोली जाने वाली यह प्रमुख भाषा बन गई। इस समय 70 प्रतिशत से अधिक लोगों की यह मुख्य भाषा है और यहाँ की कुल जनसंख्या जो नौ लाख से अधिक है उनमें से लगभग सात लाख लोग इसका प्रयोग करते हैं। इसे अंग्रेजी के बाद फ़ीजी की दूसरी आधिकारिक भाषा का दर्जा प्राप्त है। इसका प्रयोग वहाँ की संसद में भी किया जाता है। यह देवनागरी और रोमन दोनों लिपियों में लिखी जाती है।

कहने का आशय यह है कि फिजियन हिंदी का इतिहास 125 साल पुराना है। यह भारत की राज–भाषा हिंदी पर आधारित एक विशिष्ट भाषिक रूप है जिसमें फ़ीजी के अनुकूल विशेष शब्दावली प्रयुक्त होती है। इसमें अवधी शब्दों की अधिकता है। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जिसमें अवध में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली यथावत प्रयुक्त होती है। फलतः सब्जी, पेठा, पूरी को सोहारी, पैर को गोड़ और कद्दू या काशीफल को कोंहड़ा कहते हैं। इसका व्याकरण भी वहाँ की स्थानीय जरूरतों को पूरा करने के लक्ष्य से निर्मित है। कमला प्रसाद मिश्र, विवेकानंद शर्मा, जोगिंदर सिंह 'कँवल', कांशीराम कुमुद आदि यहाँ के प्रमुख साहित्यकार रहे हैं। जिन्होंने हिंदी के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अब भारतवंशियों के प्रभाव के कारण फिजियन हिंदी के बजाय मानक हिंदी के प्रचार–प्रसार और शिक्षण पर जोर दिया जा रहा है। यहाँ की संस्कृति भारतीय, चीनी और यूरोपीय परंपरा का मिश्रित रूप है। यह खनिज संपदा, शक्कर और पर्यटन के कारण प्रशांत महासागर में सबसे उन्नत राष्ट्र है। इसे 1960 में ब्रिटेन ने स्वतंत्रता प्रदान की

और अब इसका नाम फ़ीजी गणराज्य हो गया है। इस तरह हिंदी भारत के अलावा फ़ीजी एवं संयुक्त अरब अमीरात की आधिकारिक भाषा बन गई है। फ़ीजी में बोली जाने वाली हिंदी अवधी भाषा का ही स्थानीय स्वरूप है। फ़ीजी में अवध क्षेत्र का बहुत प्रभाव है, यहाँ रामचरितमानस का बोली पर भी बहुत गहरा प्रभाव है। अवध में प्रयुक्त शब्दावली आज भी ज्यों कि त्यों यहाँ प्रचलित है। इसका मूल कारण वहाँ गिरमिटिया के रूप में पहुँचे भारतीय अवध क्षेत्र के थे। राष्ट्रकवि पंडित कमला प्रसाद मिश्र, हिंदी सेवी व मंत्री स्व. विवेकानंद शर्मा, प्रोफेसर सतेंदर नंदन आदि सभी की जड़ें भारतीय अवध क्षेत्र में है। इनके पूर्वज फैज़ाबाद, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, जौनपुर, आदि जनपदों से गए थे। इसी कारण यहाँ की भाषा अवधी के रूप में विकसित हुई है और आज स्थानीय प्रभाव के कारण फ़ीजी हिंदी के रूप में प्रचलित है।

फ़ीजी हिंदी के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए डॉ.विमलेश कांति वर्मा ने लिखा है कि, "फ़ीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य का इतिहास लगभग सवा सौ वर्षों का है और यह साहित्य प्रधानतः भारतीयों के फ़ीजी आगमन, उनके संघर्ष और विकास का दस्तावेज़ कहा जा सकता है। फ़ीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य की मूल संवेदना प्रवास की पीड़ा है जो साहित्य में आद्यंत देखने को मिलेगी यद्यपि उसका स्वरूप विविध सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण बदलता हुआ दिखता है। प्रवास में जहाँ व्यक्ति के मन में एक ओर नई जगह जाने का उत्साह है, चुनौती है, नई आशाएँ और कामनाएँ हैं वहीं दूसरी ओर विछोह की पीड़ा है, विस्थापन का कष्ट है और भविष्य की आशंकाएँ हैं। इन दोनों भावों में डूबता उतरता मानव प्रवास का निश्चय करता है। अपनों का विछोह, अपनी मिट्टी का विछोह प्रवासी के मन में एक गहरी कसक उत्पन्न करता है। इस कसक को व्यक्ति नए सुखमय भविष्य की आशा में भुलाने की चेष्टा करता है। यदि नया वातावरण अधिक सुख–सुविधा संपन्न है तो प्रवासी धीरे–धीरे नए वातावरण में रम जाता है और विछोह की पीड़ा धीरे–धीरे कम होती जाती है। वहीं दूसरी ओर यदि प्रवास वह वातावरण नहीं दे पाता जिस आशा से व्यक्ति अपना घर–बार छोड़कर विदेश गया है तो प्रवास बड़ा कष्टकर लगता है, उसका मन क्षोभ और ग्लानि से भर जाता है। न वह वापस अपने देश जा सकता है और न ही उसका मन यहाँ लगता है।[3]" फ़ीजी के रचनाकारों ने अपने लेखन द्वारा प्रवासियों के संघर्षपूर्ण जीवन का भी अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। इस दृष्टि से कमला प्रसाद मिश्र की कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसमें वे प्रवासियों की व्यथा कथा का मर्मस्पर्शी चित्र खींचते हैं। वे लिखते हैं कि ––

धवल सिंधु–तट पर मैं बैठा अपना मानस बहलाता।
फ़ीजी में पैदा होकर भी मैं परदेशी कहलाता।
यह है गोरी नीति, मुझे सब भारतीय अब भी कहते।
यद्यपि तन–मन–धन से फ़ीजी से ही है नाता।
भारतीय वंशज पग–पग पर पाता है केवल कंटक
जंगल को मंगल करके भी दो क्षण चैन नहीं पाता।
साहस है ,हम सब सह लेंगे हम भयभीत नहीं होंगे।
पता नहीं कब गति बदलेगा कालचक्र जग का त्राता।
क्या मैं परदेशी हूँ,

कमला प्रसाद मिश्र।

इसमें संदेह नहीं है कि कमला प्रसाद मिश्र फ़ीजी के सच्चे गायक कवि हैं, जिनमें फ़ीजी के प्रति अनन्य अनुराग और अधिकारों की असमानता को लेकर क्षोभ भी प्रकट हुआ है। वे अपनी ही मातृभूमि और कर्म क्षेत्र में

प्रजातंत्र के बावजूद अधिकारों की समानता न होने के कारण दुखी हैं। फ़ीजी में सब प्रकार की स्वतंत्रता और सुविधा होते हुए भी भारतीयों को भूमि खरीदने का अधिकार नहीं है। यह उसके मन को बार–बार कचोटता है कि वह यहाँ अभी भी प्रवासी और परदेसी ही है। कवि पं. कमला प्रसाद मिश्र अपनी भावनाएँ इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं –

फ़ीजी सुंदर देश हमारा,
यहाँ किसी को हर सुविधा है।
किंतु किसी पर कड़ी रुकावट,
उसके मन में दुविधा है।
है स्वतंत्र यह देश हमारा,
लेकिन कानूनों का बँधन।
कभी किसी को कड़ी सज़ा है,
कभी किसी का अभिनंदन।
प्रजातंत्र यह देश हमारा,
इसका एक और पहलू भी है।
इसमें सुख से रह सकते हैं,
दिल बदलू भी दल बदलू भी।
फ़ीजी देश हमारा सुंदर,
जीवन यहाँ मलीन नहीं है।
अगणित यहाँ शराब सुंदरी,
लेकिन यहाँ ज़मीन नहीं है।।

कमला प्रसाद मिश्र : हमारा देश।

इस प्रकार स्पष्ट है कि फ़ीजी में साहित्यकारों ने भी अपने गहन दायित्वबोध का परिचय दिया है। फ़ीजी के रचनाकारों ने अपने हिंदी प्रेम का परिचय देने के लिए हिंदी पर भी सुंदर कविताएँ लिखीं हैं। इस दृष्टि से नेतराम शर्मा की हिंदी भाषा शीर्षक कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे लिखते हैं कि, हिंदी का प्रचार करो और दीपक रोज जलाओ।

फ़ीजी के कोने –कोने में अमर दीप्ति फैलाओ।
जब तक चमके चाँद सूर्य, चमकेगी हिंदी भाषा।
हिंदी की किश्ती कभी न डूबे 'शर्मा' की अभिलाषा।[4]

इस तरह फ़ीजी के कवियों ने अपने स्वभाषा प्रेम को भी अपेक्षित महत्व दिया है। यह भी स्मरणीय है कि दूसरे देशों की भाँति भारतवंशियों ने फ़ीजी को अपना देश मानकर उसके सर्वतोमुखी विकास के लिए संकल्प लिया। हम भारतीय, 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' की अलौकिक भावना से ओत–प्रोत होते हैं। अतः जिस देश में रहते हैं, उसे स्वर्ग बनाने का उपक्रम करते हैं। फलतः भारतवंशियों ने अपने खून –पसीने की कमाई से फ़ीजी को भी सांस्कृतिक–आर्थिक वैभव से समृद्ध किया है।

सारांश यह है कि आज जब हिंदी विश्व भाषा का गौरव प्राप्त कर रही है तो उसमें फ़ीजी की भूमिका का सम्यक मूल्यांकन अपेक्षित है। चूँकि हिंदी संप्रेषण की अनिवार्यता के चलते फ़ीजी में संपर्क और आधिकारिक भाषा है। अतः भारत सरकार जब भी हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा का दर्जा दिलाने के लिए संकल्प प्रस्तुत करे तो वह फ़ीजी को सहप्रस्तावक बनाए। यदि यहाँ के भारतवंशियों की ह्ततंत्री से भारतीय संस्कृति की लय गूँजती है तो उसकी वाणी से हिंदी भाषा अपने प्रयोग वैविध्य के साथ मुखर होती है। यह सर्वविदित है कि हिंदी वैश्विक भाषा के रूप में बहुत तीव्र गति से फैल रही है। उसके साथ भारतीय संस्कृति, यहाँ की धार्मिक आस्था, रीति–रिवाज और धार्मिक मान्यताएँ भी प्रसार पा रही हैं। ऐसी स्थिति में हम हिंदी प्रेमी भारतीयों तथा भारत सरकार के समक्ष यह दायित्व आ जाता है कि वह आपसी सहयोग से हिंदी के प्रचार–प्रसार की ठोस भूमि तैयार करे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आने वाला समय हिंद और हिंदी का है और आगामी सम्मेलन इसके लिए एक क्रोश स्तंभ सिद्ध होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गगनांचल, विवेकानंद शर्मा, जनवरी–मार्च, 1996
2. प्रवासी संसार, जुलाई–सितंबर 2016, संपादकीय।
3. फ़ीजी का सृजनात्मक साहित्य, विमलेश कांति वर्मा, साहित्य कुंज, अंतरजाल पर।
4. वही. नेतराम।

❑❑❑

मानवीय संवेदनाओं की उदात्तता को प्रतिबिंबित करती फ़ीजी की हिंदी कविता

दिनेश चमोला

साहित्य, मानवीय संवेदनाओं के निरूपण का जीवंत दस्तावेज है। मनुष्य जिस समाज में रहता है वहाँ का जन जीवन और लोक उसके चिंतन, अनुभूति से अभिव्यक्ति तक में स्वयमेव प्रतिबिंबित हो जाता है। यह सहज स्वाभाविक है जिस परिवेश में मनुष्य जीवनयापन करता है उसका प्रभाव उसके जीवन, चिंतन अथवा लेखन में तथा विलोमतः उसके अपने दर्शन–चिंतन का प्रभाव समाज पर अन्योन्याश्रित तरीके से सदा ही दिखाई देता है।

कवि किसी भी देश, समाज व जीवन का अत्यंत भावप्रवण व संवेदनशील प्राणी होता है। वह युगीन परिस्थितियों की अनुकूलता से जितनी जल्दी द्रवित हो प्रशंसा करने में भी देर नहीं लगाता, तो ठीक इसके विपरीत सामाजिक विद्रूपताओं, विषमताओं व विपरीतताओं से लोहा ले देश, काल, समाज व सत्ता का ध्यानाकर्षण कर उससे दो–चार होने के लिए भी हर क्षण तत्पर रहता है।

वह अपने सृजन, चिंतन अथवा अनुभूति की कच्ची सामग्री के समस्त उपादान उसी उर्वरा भूमि से उठाता है जिस परिवेश, मन–स्थिति व युग में वह जीवनयापन कर रहा होता है। वस्तुतः साहित्य, संवेदनशील मानव हृदय की अनुभूति से अभिव्यक्ति तक के समग्र जीवन–दर्शन का व्याख्यात्मक निवेश है। कविता या काव्य मानवीय संवेदनाओं के निरूपण का अप्रतिम व अत्यंत प्रभावी संसाधन। इसमें कहीं भी अथवा किसी भी रूप में यह निहितार्थ नहीं छुपा हुआ है कि कविता ही एकमात्र इसका माध्यम है .....दूसरे कथा अथवा कथेत्तर माध्यम सर्वथा अक्षम।

अभिव्यक्ति के किसी भी माध्यम को किसी रूप में कमतर नहीं आँका जा सकता। यह भावों की कच्ची सामग्री महज मृदा के रूप में है; इसका उपादेय होना तो आवश्यक है ही, किंतु इससे आवश्यक है उस प्रतिभा–संपन्न कलाकार की कला–प्रतिभा या चिंतन क्षमता..... जो उसमें चिंतन की अनूठी प्राण–प्रतिष्ठा कर उसका कायांतरण कर देगी.. .... फिर वह मृदा नहीं, किसी विशिष्ट कलाकृति के रूप में व्याख्यायित अथवा परिभाषित होगी।

मनुष्य साक्षर हो अथवा निरक्षर, काव्य से उसका नैसर्गिक संबंध स्वतः ही कालांतर से होता आया है। किसी भी निरक्षर अथवा अनपढ़, भावप्रवण माँ के हृदय में संवेदना के सपनीले मेघ कभी भी उमड़–घुमड़ सकते हैं व वह उस समस्त मुक्त भावों की गहन भाव–सरिता में डूब–डूबकर गाने के लिए विवश होगी। आत्मा के लोक से निकले वही गीत फिर धरती के; लोक के गीत बनकर अमर हो जाएँगे.....असंख्य कंठों से गाए जाने के बाद युगों तक धरती की धड़कनों में जीवित रहेंगे– .....मरेंगे नहीं, ...गाए जाते रहेंगे कालांतर तक.....लोकगीत व लोक की थाती हो जाएँगे।

दूसरी ओर अनुभूति से अभिव्यक्ति तक की चिंतनधारा साहित्य की विभिन्न विधाओं के रूप में मुखरित हो साहित्य का विविधमुखी भंडार भरेगी। अपने देश से बिछुड़ने की पीड़ा तथा दूसरों के द्वारा दिग्भ्रमित व गुमराह किए जाने का पश्चातापभरा स्वर फ़ीजी की हिंदी कविता में लोकगीतात्मक रूप में मिलता है। इन गीतों में जहाँ उनकी दुष्प्रवृत्तियों का

लेखा–जोखा मिलता है, तो वहीं उन मजदूरों पर हुए अत्याचारों की असहय्य पीड़ा की मौन अभिव्यक्ति भी फ़ीजी की प्रमुख कवयित्री अमरजीत कौर मजदूरों की इस व्यथा–कथा का वर्णन इन पंक्तियों में करती हैं–

फिरंगिया के राजुआ मा छूटा मोरा देसुवा हो
गोरी सरकार चली चाल रे बिदेसिया
भोली हमें देख आरकाटी भरमाया हो
कोलकाता पार जाओ पाँच साल रे बिदेसिया.....
कुदाली, कुरबाल दीना हाथुवा मा हमरे हो
घाम मा पसीनुआ बहाए रे[1]

राष्ट्र अथवा जनजीवन के ऐसे उतार–चढ़ावों का लेखा–जोखा, हर देश, प्रदेश व समाज के तत्कालीन सामाजिक चिंतन एवं साहित्य में देखा जा सकता है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक अथवा सामाजिक स्तर पर मनुष्य जिस आबोहवा को ग्रहण करता है, कहीं न कहीं शत–प्रतिशत उसकी चेतना से अभिव्यक्त होकर चिंतन में परिलक्षित एवं प्रतिबिंबित होता है।

यूँ तो संसार के हर देश अथवा प्रदेश की कविता में संवेदनशीलता की उदात्तता का वह दृष्टांत दिखाई देता है किंतु अपने इस विवेच्य विषय में उस देश फ़ीजी की हिंदी कविता पर अपनी चिंतन दृष्टि केंद्रित करने का प्रयास करेंगे जिनकी कविता का इतिहास व भूगोल छुपा हुआ है। इस संबंध में डॉ. विमलेश कांति वर्मा जी का कथन है कि– 'फ़ीजी भारत से हजारों मील दूर एक छोटा भारत है जहाँ कुछ वर्ष पहले तक वहाँ की जनसंख्या में आधे से अधिक भारतीय थे। इस देश में 70% से अधिक जनता हिंदी भाषा बोलती और समझती है। जब फ़ीजी आदिवासियों के नेता दकंबाऊ ने फ़ीजी को ब्रिटिश सत्ता के हाथों सौंप दिया तो उन्होंने फ़ीजी में गन्ने की खेती के लिए मजदूरों की आवश्यकता महसूस की, ऐसे मजदूरों की जो परिश्रमी हों, खेती में कुशल हों और कम वेतन में आकर काम कर सकें। तत्कालीन गवर्नर सर आर्थर हैमिल्टन गार्डन ने शर्तबंध मजदूर के रूप में भारतीयों को फ़ीजी लाने की योजना बनाई। गार्डन महोदय पहले मॉरिशस के गवर्नर रह चुके थे। वहाँ भी उन्होंने दास के रूप में भारतीयों को बुलाया था। उनके परिश्रमी स्वभाव से भी परिचित थे। अब समस्या यह थी कि भारतीय किसानों को मजदूर के रूप में फ़ीजी आने के लिए तैयार कैसे किया जाए।"[2]

इनके गिरमिटिए मजदूरों की व्यथा–कथा ही फ़ीजी के साहित्य की अंतसचेतना की प्राणवायु है। इनकी संघर्ष– कथा व अथाह पीड़ा ही ब्याज स्वरूप यहाँ के साहित्य में विविधमुखी चित्रण मुखरित होकर भरपूर रूप में यत्र–तत्र दिखाई देता है। शायद ही कोई ऐसा कवि, कवयित्री अथवा संवेदनशील साहित्य–सेवी होगा जिसको इन गिरमिटिए मजदूरों की व्यथा–कथा ने विचलित न किया हो तथा कुछ लिखने, सोचने व कहने की प्रेरणा न दी हो। उनकी इस पीड़ा को प्रतिबिंबित करती हुई पंक्तियों की उदात्तता की एक बानगी प्रमुख कवयित्री अमरजीत कौर की कविता 'गिरमिट' में देखिए–

न हमरा कोई भइया भाभी,
न हमरी कोई बिटिया।
न जर–जोरू, न कोई बहना,
न भेजे कोई चिठिया,
फ़ीजी में जब आए के देखा,
जीवन हो गया मोहरा।
गिर कर भी जो मिटे न लोगो,
उसे कहते हैं गिरमिटिया।

बहला–फुसलाकर ये गिरमिटिया मजदूर किन विषम परिस्थितियों में भारत से फ़ीजी ले जाए गए; उन पर किस–किस प्रकार के अमानवीय व क्रूर अत्याचार हुए इन सबका मार्मिक चित्रण कहीं न कहीं भविष्य के साहित्य–सृजन की आधारशिला बनी। वे स्वाभिमानी भारतीय मजदूर जो अपने साथ

यहाँ की अनुपम आस्थाओं, आध्यात्मिक परंपराओं को आश्रय के रूप में ले गए थे, उनकी यात्रा के कष्टों को डॉ. वर्मा की इन भावाभिव्यक्तियों से समझा जा सकता है–

"अंग्रेजों ने इसके लिए भारत में एजेंट तैयार किए जो छल कपट की नीति से भारतीयों को बहकाकर फ़ीजी जाने के लिए तैयार करते थे। इन एजेंटों को रिक्रूटर और भारतीय भाषा में अरकाटी कहा जाता था। ये एजेंट भारतीयों को तरह–तरह के प्रलोभन देते, वे बताते की फ़ीजी गंगासागर के पास एक द्वीप है जहाँ का राजा बड़ा अच्छा है, वहाँ बहुत अच्छी मजदूरी मिलती है। किसी से कहा गया कि जहाज जगन्नाथपुरी जा रहा है, तुम भी जगन्नाथ जी के दर्शन कर सकते हो; किसी को द्वारिकापुरी दिखाने का प्रलोभन दिया गया क्योंकि द्वारका जाने के लिए जहाज या नाव से जाना होता था, इसलिए भारतीयों ने इसको भी ठीक ही समझा। मथुरा, बनारस, प्रयाग, हरिद्वार के बड़े–बड़े मेलों में यात्री अपने परिवार या मित्रों से बिछुड़ जाते। इनमें स्त्रियों की संख्या भी पर्याप्त होती थी जो पति और पुत्र से बिछुड़ जाती थीं, उन्हें ये अरकाटी यह कहकर कि तुम्हें पति/पुत्र के पास घर पहुँचा देगें उन्हें अपने डिपो में ले जाते और वहाँ उन्हें रेल के डिब्बे में बंदकर विशेष गाड़ियों द्वारा कलकत्ते पहुँचा दिया जाता। बाद में कोई मद्रास भेज दिए जाते। वहाँ से पाल वाले बड़े समुद्री जहाजों पर डालकर फ़ीजी के लिए विदा कर दिया जाता।"[3]

इस प्रकार फ़ीजी की हिंदी कविता को समृद्ध करने वालों में पं. कमला प्रसाद मिश्र, फ़ीजी के प्रेमचंद, जोगिंद्र सिंह कँवल, अमरजीत कौर कँवल, डॉ. नेतराम शर्मा, पंडित राघवानंद शर्मा, विवेकानंद शर्मा, श्रीमती मंजू शर्मा, मस्त प्रसाद, कुँवर सिंह व चंद्रदेव सिंह आदि ने मानवीय संवेदनाओं को अपनी–अपनी कविताओं में पिरोने का न केवल प्रयास किया बल्कि फ़ीजी की हिंदी कविता को नई ऊँचाइयाँ भी प्रदान की।

'भारतीय' नामक कविता में जोगिंदर सिंह 'कँवल' की संवेदनात्मक भावनाओं की उदात्तता का परिचय मिलता है कि किस प्रकार जीवन भर संघर्ष व भेदभाव के दो पाटों के बीच में उनका जीवन पिसता रहा, किंतु आदर्शों की दहलीज पर वे निरंतर अपने अभीष्ट की प्राप्ति हेतु सुदृढ़ हो लक्ष्योन्मुख रहे। जीवन में विषमताओं की पराकाष्ठा में भी उन्होंने अपने जीवनादर्शों पर किसी प्रकार की आँच आने नहीं दी और निर्भीकता व स्वाभिमान से अपने अभीष्ट की प्राप्ति में सन्नद्ध रहे। इसका लेखा–जोखा उनकी निम्नलिखित इन काव्य– पंक्तियों में स्पष्ट रूप से देखा व महसूस किया जा सकता है–

लंबे सफर में हम भारतीयों को
कभी पत्थर कभी मिले बबूल
कभी मिट जाती, कभी जम जाती
इतिहास के दर्पण पे धूल
कभी रम्बूका कू कर बैठा
कभी स्पेट ने वार किया.....
ऊबड़–खाबड़ पगडंडियों को
बड़े गौरव से पार किया।।[4]

इस कविता में जहाँ एक ओर भारत–वंशियों से दूर हो जाने का दर्द समाया हुआ है, वहीं दूसरे उस देश में उनके साथ की ज्यादतियों की अनुभूतियों का प्रतिबिंब भी उनकी कविता में दिखाई देता है.... जिसमें अतीत की सारी बातें उनको बताएँ प्रतिकूलताओं में परिवर्तित हुई सी लगती हैं.. जहाँ गुजरते हुए चमन की बात भी वे उसी दर्दीले स्वर में विवशता से करते हुए प्रतीत होते हैं–

जिस देश को अपनाया हमने
वह टूट रहा फिर एक बार
चमन यह बिगड़ा इस तरह
काँटे बन रहे सारे फूल।।[5]

कवि के भीतर नैराश्य का चतुर्मुखी नाग हर क्षण उसके चिंतन के ऊर्ध्वमुखी क्षितिज को डसने के लिए तत्पर व व्यग्र दिखाई देता है। आशाओं के उफनते हुए समुद्र में भी उसे सदैव निराशा केवल गहन भँवर ही दृष्टिगत

होते हैं जो स्वाभिमानी कदम कभी आत्मगौरव अथवा स्वाभिमान की प्रतीति कराते थे यह तो तय है कि उन्हीं से मिली नैराश्यपूर्ण स्थिति कवि के धैर्य–बाँध को बिखरा देने वाली है। उसकी सारी उपलब्धियों को मानो दुर्भावना अथवा दुर्भाग्य का साँप सूंघ गया हो। जिधर हाथ डालता है उधर नैराश्य, ऊब व उदासी ही मुँह बाए खड़ी रहती है जो कवि के उत्साही कदमों की गति को अचानक नकेल देने के लिए हर क्षण तत्पर दिखाई देते हैं। जीवन के इस हर्ष–विषाद; सुख–दुख व पीड़ा के आरोह–अवरोह के क्रम को कवि की कविता की हर धड़कन से महसूस किया जा सकता है –

सात सागर पार करके भी ठिकाना न मिला
सौ साल प्यार करके भी निभाना न मिला
कई जन्मों से तो बिछड़े थे एक माँ से हम
दूसरी माँ के आँचल में भी सिर छुपाना न मिला
पीढ़ियाँ खेली हैं ऐ देश तेरी गोद में
फिर भी तेरी ममता का हमें नजराना न मिला
हमने बंजर धरती में खिला दिए रंगीन फूल
तेरी पूजा के लिए दो फूल चढ़ाना न मिला।[6]

कवि जोगिंद्र सिंह 'कँवल' की कविता में मानवीय संवेदनाओं की उदात्त स्थिति का चित्रण अनेक स्थानों पर मिलता है। एक ओर परिस्थितियों की विपरीतता का कहर बरपने से रुकने का नाम नहीं ले रहा, जबकि दूसरी ओर स्वाभिमानी कवि का जीवन–संघर्ष उनकी विषम परिस्थितियों से लोहा लेने की उत्कट अभिलाषा को भी दर्शाता है चाहे कितना ही क्रूर एवं निर्मम बर्ताव (व्यवहार) उसके साथ किया गया हो लेकिन कवि का आत्म–संघर्ष, निष्ठा, समर्पण व स्वाभिमान कहीं भी किसी रूप में घुटने टेकना नहीं जानता। सुख–दुख, हर्ष–विषाद का अंतर्द्वंदव कवि की कविता का प्राणतत्व भी है और दूसरों को प्राप्त होने वाली संजीवनी भी। इसलिए इस उतार–चढ़ाव को कवि बेबाकी से अपनी इन काव्य पंक्तियों में इस प्रकार स्वीकार करता है–

खून पसीने से बनाया था जन्नत का चमन
इसकी किसी डाल पर भी आशियाना न मिला
हम तो पागल हो गए लेकिन मंजिलों की खोज में
इतनी भटकन के बाद भी कोई ठिकाना न मिला
हमने क्या पाप किया, समझ में आता नहीं
वर्षों की लगन का हमें, कोई इवजाना न मिला।[7]

फ़ीजी के इतिहास व भूगोल का चित्र कवि की कविताओं में स्वतः ही उपस्थित हो जाता है। वस्तुतः संवेदनशील हृदय जिस आबोहवा में पल्लवित–पुष्पित होता है उसका चित्रण गाहे–बगाहे उसकी रचनाओं में नैसर्गिकता से ही समाविष्ट हो जाता है। महाकवि जयशंकर प्रसाद के 'कामायनी' महाकाव्य की इन पंक्तियों में देखिए–

झंझा झकोर गर्जन थी,
बिजली थी नीरद माला
पाकर के इस शून्य हृदय को,
सब ने आ डेरा डाला।

की भावधारा की कुछ–कुछ साम्यता पं. कमला प्रसाद मिश्र जी की कविता 'तूफ़ान आया' में भी प्रतीत होती है ....जहाँ बाढ़ की विभीषिका का भीषण शब्दनाद भी है तो भावों की चित्रात्मकता की पारदर्शी शैली में सूक्ष्म छटपटाहट भी..... जब कवि कहता है–

तूफ़ान रहा है गर्ज आज
है महानाश का राज आज
है पवन गा रहा महाराग
प्रलयंकर पंचम रक्तफाग
तरु गिर–गिर कर दे रहे ताल
चल रहा नृत्य तांडव विशाल

कुछ गूँज रहा है स्वर मल्हार
घिर आए घन नभ में अपार
लगते भीषण झौंके अनेक
अति तीव्र, एक के बाद एक
उड़ती है छत गिरता मकान
झुक आया है कुछ आसमान।[8]

कवि कमला प्रसाद मिश्र की कविताओं में जहाँ राष्ट्रीय अस्मिता, अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम के आह्वान का स्वर दिखाई देता है वहीं, अपना सर्वस्व अर्पित कर देने के पश्चात् भी अपने अस्तित्व की अनुपस्थिति के संकट की पीड़ा की अनुगूँज भी उनकी कविताओं में निरंतर सुनाई व दिखाई देती है। जैसे कि 'हमारा देश' नामक कविता में उनकी भाव भंगिमा से उनके राष्ट्रप्रेम का आकलन किया जा सकता है–

फ़ीजी सुंदर देश हमारा,
यहाँ किसी को हर सुविधा है
किंतु किसी पर कड़ी रुकावट
उसके मानस में दुविधा है
है स्वतंत्र यह देश हमारा
लेकिन कानूनों का बंधन
कभी किसी को कड़ी सजा है
कभी किसी का है अभिनंदन
प्रजातंत्र यह देश हमारा
इसका एक और पहलू भी
इसमें सुख से रह सकते हैं
दिलबदलू भी दलबदलू भी।[9]

दूसरी ओर अपनी जिस भूमि के लिए उनका संपूर्ण जीवन और खून पसीना एक हुआ है इस सबके बावजूद भी वहाँ अपने अस्तित्व की उपेक्षा की मार्मिक संवेदना का चित्रण कवि की उद्धार भावनाओं को प्रदर्शित करता है जबकि उनके साथ किए जाने वाला भेदभावपूर्ण व्यवहार उन्हें हृदय की गहराइयों तक कचोटता ही नहीं बल्कि स्वयं को परदेसी मानने के लिए भी विवश कर देता है। कभी मन की पीड़ा की शुरुआत स्वर को उनकी निम्नलिखित कविता में स्पष्ट भाषा में समझा व महसूस किया जा सकता है.....जब वे अपनी पीड़ा को अपनी कविता 'क्या मैं परदेसी हूँ?' में स्वर देते हुए कहते हैं–

धवल सिंध–तट पर मैं बैठा अपना मानस बहलाता
फ़ीजी में पैदा होकर भी मैं परदेसी कहलाता
यह गोरी नीति मुझे सब भारतीय अब भी कहते
यद्यपि तन–मन–धन से मेरा फ़ीजी से ही है नाता
भारत के जीवन से फ़ीजी के जीवन में अंतर है
भारत कितनी दूर वहाँ पर कौन सदा जाता आता
औपनिवेशिक नीति गरल है, नहीं हमें जीने देती
वह उससे ही खुश रहते हैं जो उनका यश है गाता
भारतीय वंशज पग–पग पर पाता है केवल कंटक
जंगल को मंगल करके भी दो क्षण चैन नहीं पाता
साहस है, हम सब सह लेंगे हम भयभीत नहीं होंगे
पता नहीं कब गति बदलेगा कालचक्र जग का त्राता।[10]

डॉ. नेतराम शर्मा की कविता 'गिरमिट की कहानी' में प्रवासी भारतीयों मजदूरों पर हो रहे अत्याचार व वैमनस्यतापूर्ण व्यवहार का अत्यंत मार्मिक एवं सूक्ष्म विवेचन किया गया है। इन काव्य पंक्तियों में इसमें जहाँ उनकी मानसिक पराधीनता का पता चलता है, वहीं अत्यंत भोले–भाले इन भारतीय मजदूरों की निर्दोषता एवं उनके चातुर्यपूर्ण सोच व उन्हें बरगलाने की टीस का स्वर भी सुनाई देता है। ऐसी असहायता व असमर्थता की स्थिति में उनके अंतर्मन के क्षीण नॉस्टैल्जिक भावों को भी कवि ने इस कविता में उभारने का प्रयास किया है। इसे तत्कालीन समाज की पीड़ा व

बर्बरता का एक जीवंत दस्तावेज भी कहा जा सकता है। एक बानगी देखिए–

छोड़ कर आए थे अपना प्यारा देश
हरियाली ही मिलेगी चलो फ़ीजी प्रदेश
सब्जबाग दिखाए धोखेबाज थे कुछ कर्मचारी
क्या पता था परिश्रम से होगी यहाँ खेती बारी
तड़के सुबह ही सबको कुलंबर थे जगाते
दिनभर मेहनत कर बस शाम को ही घर आते
कठिन परिश्रम अनिवार्य था धूप हो या छाँव
ऐसे में भारत याद आता, सभी संबंधी व गाँव।[11]

जिस लोक माटी की चरण रज में संवेदनशील अबोध बचपन को कुछ क्षण व्यतीत करने का सुखद सौभाग्य मिलता है तो उसकी स्मृतियों का उफान कई वर्षों तक भी मन के गलियारों से रीतने का नाम नहीं लेता। भारतवंशी उन मजदूरों की पितृभूमि भारत की अलौकिक लीला धाम व स्मृतियों की सुखद सहचरी, यह दिव्य भूमि असंख्य वर्षों के बाद भी उनके स्मृति–पटल से ओझल होने का नाम नहीं लेतीं। भारतीय परंपराओं की दिव्यता व भव्यता उन्हें उसी तरह से आकर्षित करती है जिस तरह से भगवान कृष्ण मथुरा में जीवन व्यतीत करने पर भी ब्रज की मनोहर स्मृतियों से चाहने पर भी उबर नहीं पाए। मानवीय संवेदनाओं की यह उदात्तता फ़ीजी की हिंदी कविता का प्राणतत्व है। इसका प्रतिबिंब निम्नलिखित कविता 'पितृभूमि प्रणाम' की इन स्वर–लहरियों से भी समझा जा सकता है–

आज है अंतिम दिवस लो पितृभूमि प्रणाम मेरा
है तुम्हारा धूलि–कण भी मधुर स्वर्ग की ललाम मेरा
भूल मैं जाऊँ जगत को विश्व जाए भूल मुझको
किंतु मन में स्थिर रहेगी पितृभूमि सुख मूल मुझको
स्वर्ग की छविराशि भी है ज्ञात होती धूल मुझको
मुग्ध कर सकता नहीं नंदन–विपिन का फूल मुझको
शूल भी उस पुण्य जग का है कुसुम अभिराम मेरा
आज है अंतिम दिवस लो पितृभूमि प्रणाम मेरा।[12]

अतः कहा जा सकता है कि जहाँ फ़ीजी की हिंदी कविता ने राष्ट्रीय चेतना, प्रकृति–प्रेम, जीवन मूल्य तथा मानवीय सरोकारों की वैविध्यपूर्ण अभिव्यक्ति से अलंकृत किया है वहीं, मानवीय संवेदना की उदात्तता को समेटे हुए वहाँ के जीवन–मूल्य, जन–जीवन और लोक की भावनाओं की त्रिवेणी को समेटती हुई हिंदी कविता ने निरंतर अपनी अग्रणी भूमिका का निर्वहन किया है और कहीं न कहीं उनके चिंतन, मनन व लेखन ने भारतीय संस्कृति के उन जीवन मूल्यों का समावेश स्वतः ही हो जाता है जो उनकी कविता, चिंतन–क्षमता, अभिव्यक्ति के पैनेपन को अत्यधिक संजीवनी प्रदान करते हैं। यहाँ की हिंदी कविता की भावाभिव्यक्तियों की समृद्धि ने वैश्विक हिंदी कविता के भंडार को भी निश्चित रूप से समृद्ध किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अमरजीत कौर : 'फ़ीजी का हिंदी काव्य साहित्य' : (संपादक– जोगिंदर सिंह 'कँवल'), भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, 2004, पृष्ठ 10

2. 'फ़ीजी में हिंदी'– डॉ. विमलेश कांति वर्मा; 'विश्व में हिंदी विशेषांक'– 'विकल्प', जनवरी–मार्च, 2009, पृष्ठ 25; संपादक– डॉ. दिनेश चमोला, भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून।

3. 'फ़ीजी में हिंदी'– डॉ. विमलेश कांति वर्मा'; 'विश्व में हिंदी विशेषांक'– 'विकल्प', जनवरी–मार्च, 2009, पृष्ठ 25; संपादक– डॉ.

दिनेश चमोला, भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून।

4. जोगिंदर सिंह 'कँवल' : 'दर्द अपने–अपने', डायमंड पब्लिकेशंस, 2001, पृष्ठ 22

5. वही, पृष्ठ 22

6. 'सात सागर पार' : जोगिंद्र सिंह 'कँवल'; भारत दर्शन

7. वही

8. 'तूफान आया'– कमला प्रसाद मिश्र : काव्य संचयन– सुरेश ऋतुपर्ण, पृष्ठ 211

9. वही, पृष्ठ 111

10. वही, पृष्ठ 128

11. डॉ. नेतराम शर्मा – 'गिरमिट की कहानी'; 'फ़ीजी का हिंदी काव्य साहित्य' : संपा. जोगिंद्र सिंह कँवल, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, 2004, पृष्ठ 10

12 'पितृभूमि प्रणाम' –कमला प्रसाद मिश्र : काव्य संचयन–सुरेश ऋतुपर्ण, पृष्ठ 61

❑❑❑

फ़ीजी में भारतीय संस्कृति का डंका बजाती 'रामायण महारानी'

करुणा शर्मा

भारत से लगभग बारह हजार किलोमीटर दूर सुदूर पूर्व दिशा में बसा, प्रशांत महासागर का स्वर्ग कहा जाने वाला, प्राकृतिक सौंदर्य और विभिन्न सांस्कृतिक सभ्यताओं का सुंदर समन्वय, 844 छोटे–बड़े द्वीपों का समूह, ऑस्ट्रेलिया के पूर्व में और न्यूजीलैंड के उत्तर में बसा है देश फ़ीजी। सन् 1970 ई. को विजय दशमी के दिन ब्रिटिश शासनाधिकार से स्वतंत्र हो जाने वाला फ़ीजी एक ऐसा देश है जिसकी धरती को हर रोज सूर्य की पहली किरण अपनी ऊर्जा से ऊर्जावान बनाती है, संपूर्ण विश्व में यही एक ऐसा देश है जहाँ पर हिंदी को वहाँ की संसद की मान्यता प्राप्त है, उसी हिंदी को जिसमें गोस्वामी तुलसीदास ने 'श्रीरामचरित –मानस' लिखी, वही 'श्रीरामचरितमानस' जिसे वहाँ के प्रवासी भारतीय 'रामायण महारानी' या 'रामायण मैया' कहकर संबोधित करते हैं।

प्रवासी भारतीयों द्वारा रामचरितमानस के लिए 'रामायण महारानी' का संबोधन उसके प्रति उनके आदर का सूचक है। 'महारानी' से आशय होता है, जिसे प्रजा अपना सर्वस्व मानती हो, जो उनके लिए सबसे अधिक आदरणीय हो, जो अपनी प्रजा का सर्वाधिक भला चाहने वाली हो, जिसके आदेशों की प्रजा द्वारा अवहेलना न की जा सके, जिसकी हर बात उनके लिए पत्थर की लकीर हो और यह सब प्रजा द्वारा अपनी उस महारानी के लिए तभी किया जाता है जो अपनी प्रजा के हित की सर्वाधिक चिंता करती हो और प्रजा जिसके लिए अपनी संतान से भी अधिक प्रिय हो। तो क्या 'श्रीरामचरितमानस' या 'रामायण महारानी' फ़ीजी के प्रवासी भारतीयों के लिए इतना सब कुछ करने में सक्षम हुई? इसका उत्तर 'हाँ' ही है।

दक्षिण प्रशांत महासागर के नीले प्रांगण में कमल की भाँति खिले फ़ीजी द्वीप में गन्ना–खेतों में काम करने के लिए 'शर्तबंदी अथवा एग्रीमेंट' तथा बाद में 'गिरमिटिया प्रथा' के नाम से मशहूर प्रथा के तहत 15 मई, 1879 को पहली बार बस्ती, अवध, गोंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर और आजमगढ़ से 463 शर्तबंदी मजदूर भारतीयों को लाया गया। वे सब पहले जहाज लिओनीदास द्वारा वहाँ लाए गए। यह सिलसिला 11 नवंबर, 1916 तक चलता रहा अर्थात् 37 सालों में 87 जहाजों द्वारा 60000 हजार से भी अधिक शर्तबंदी भारतीय वहाँ पहुँचाए गए। इन प्रवासी भारतीयों की भाषा अवधी होने के कारण फ़ीजी हिंदी में अवधी भाषा का अधिक प्रभाव दिखाई देता है। डॉ. विवेकानंद शर्मा 'भाषा, साहित्य एवं संस्कृति उद्भव एवं विकास में लिखते हैं, "कलकत्ता से आखिरी बार अपनी मातृभूमि से विदा होने के कारण इन बिछुड़े हुए लोगों को कलकतिया और एक ही जहाज में सभी को एक साथ सफर करने के कारण जहाजी भाई कहा जाने लगा। कलकतिया और जहाजी भाई शब्दों ने फ़ीजी में आए प्रवासी भारतीयों को आत्मीयता के बंधन में बाँधकर और भी करीब ला दिया।"

इन सभी मजदूरों को बहला–फुसलाकर, लालच देकर ले जाया गया। ले जाते समय उन औपनिवेशिक मालिकों के एजेंटों का

व्यवहार बड़ा दयालु रहता था लेकिन वहाँ पहुँच जाने के बाद उनका व्यवहार इन गरीब, बेबस और निर्धन प्रवासी भारतीयों के साथ बड़ा ही अमानुषिक, क्रूर, अत्याचारपूर्ण तथा अन्यायपूर्ण हो जाता था। अपनी मातृभूमि से हजारों मील दूर लगभग निस्सहाय स्थिति में ये लोग गन्ने के खेतों में दिन–रात कड़ा परिश्रम करते थे। अत्यंत कठोर परिश्रम करने के बाद भी इनके साथ पशुतुल्य व्यवहार किया जाता था। इन पर कोड़े बरसाए जाते थे। औपनिवेशिक मालिक इनका डटकर शोषण और उत्पीड़न करते थे। उनके मन में इन लोगों के प्रति किसी प्रकार की कोई संवेदना नहीं थी। अत्यंत कष्ट, दैन्य और वेदना के उन दिनों में इनके साथ कोई थी तो वह थी उनकी 'गुटका रामायण'। वही गुटका रामायण जिसे वे अपनी पोटली में बाँधकर अपने फटे–पुराने कपड़ों के साथ लेकर आए थे। वही उनके मार्ग के उबाऊपन एवं दुखदाई समय को काटने का माध्यम बनी। निराशा और हताशा में डूबे हुए काले अंधकारमय दिनों में वही 'रामायण' प्रकाश की किरण बनकर उनके मार्ग को प्रकाशित करती रही। उस समय वह मात्र उनकी आस्था का ग्रंथ ही नहीं रही बल्कि गुलामी से लड़ने का अस्त्र भी बनी। ऐसे बुरे वक्त में यदि वतन से छूटे और तन से टूटे हुए इन लोगों का मन नहीं टूट सका तो केवल रामायण के प्रताप से। वे उसकी इस चौपाई *"रामायण सुर तरु की छाया। दुख भय दूर निकट जो आया।"* से निरंतर शक्ति प्राप्त करते रहे।

सनातन धर्म एवं संस्कृति का मूल महाग्रंथ मानी जाने वाली रामायण मूल रूप से आदि कवि वाल्मीकि ने संस्कृत में लिखी थी। उसी रामायण को आधार बनाकर आज से लगभग पाँच सौ साल पहले अवधी भाषा में कवि शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने 'श्रीरामचरितमानस' नामक ग्रंथ की रचना की। श्री तुलसीदास ने रामायण को तत्कालीन जनभाषा 'अवधी' में सामान्य जनों के कल्याण के लिए रचा। अतः आज भी उसकी चौपाइयाँ भारत के साथ–साथ विश्वभर में फैले पढ़े–लिखे अथवा अनपढ़ प्रवासी भारतीयों द्वारा उच्चारित भी की जाती हैं, पढ़ी भी जाती हैं और बहुतों को तो ये कंठस्थ भी हैं।

'श्रीरामचरितमानस' फ़ीजी में 'तुलसी रामायण' 'रामायण महारानी' और 'रामायण मैया' बनकर आज भी भारतीय संस्कृति का डंका बजा रही है। वहाँ के प्रवासी भारतीयों के रोम–रोम में रामायण बसी हुई है। उनके जीवन का प्रत्येक आयोजन रामायण के पाठ के साथ ही संपन्न होता है। डॉ. विवेकानंद 'फ़ीजी में रामायण परंपरा' नामक निबंध में स्वीकार करते हैं, 'मानस का राम–वन–गमन' फ़ीजी के प्रवासी भारतीयों को अंतर्मन तक भिगो देता है। तब उसके लिए राम का वन गमन उसके अपने वनवास से भी जुड़ जाता है। राम तो चौदह वर्ष बाद अयोध्या लौट आए थे लेकिन वह अभागा कभी अयोध्या लौट भी सकेगा, इसका विश्वास उसे कौन करा सकता था। तब उसे यही लगता था कि राम का नाम ही उसकी नैया पार लगाएगा। रावण पर राम की जीत अवश्य होगी। अंधकार दूर होगा, यातनाएँ समाप्त होंगी और बजरंगबली स्वतंत्रता की किरण बिखेरेंगे। इस तरह फ़ीजी में ही नहीं वरन् अन्य पाँचों देशों में भी प्रवासी भारतीयों के प्रिय उपास्य देव श्रीराम, सीता, शिव और हनुमान ही हैं। वस्तुतः ये देवी–देवता ही सनातन धर्म और संस्कृति के प्राण हैं रामकथा, सनातन धर्म के आधार हैं। उनके फ़ीजी के प्रारंभिक जीवन काल की एक घटना आज राम कथा के प्रति उनकी आस्था का प्रमाण बनकर चिरस्मरणीय बन चुकी है। अंग्रेजी शासनकाल में जब स्थानीय अधिकारी जनता के बीच 'एलिजाबेथ की जय' का नारा लेकर पहुँचे तो जनता ने 'रामायण महारानी की जय' का नारा लगाया। वहाँ बसे प्रवासी

भारतीयों को भारतीय सभ्यता और संस्कृति विरासत में मिली है जिसे वे बहुत सहेजकर रखे हुए हैं। वे भारत को अपने पुरखों की भूमि और अपनी संस्कृति का जीवित स्रोत मानते हैं और उसके प्रति बहुत आदर, श्रद्धा और सम्मान का भाव रखते हैं जिसका अनुभव वहाँ के प्रवासी भारतीयों के आचरण और व्यवहार में किया जा सकता है।

'रामायण महारानी' के कारण ही प्राचीनता, चिरस्थायिता, समन्वयवाद, आध्यात्मिकता, मानवतावाद, परलोक और आवागमन तथा वर्णाश्रम विभाग जैसे तत्वों से सराबोर भारतीय संस्कृति का डंका सारे फ़ीजी में बजता दिखाई देता है। यह वहाँ के प्रवासी भारतीयों के इतने अनुकूल दिखाई पड़ती है कि रामायण में वर्णित रामादि की बाल्यावस्था के वर्णन को लोग कहावतों की तरह प्रयोग करते हैं तथा अपने व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक तथा देशव्यापी समस्याओं का हल उसमें ढूँढ़ते हैं। फ़ीजी में व्याप्त नैतिक मूल्यों का आधार भी रामायण ही है। जिस तरह राम ने वनगमन के समय अपनी मर्यादा नहीं छोड़ी, उसी तरह इन प्रवासी भारतीयों भी अपने असहनीय और दारुण कष्टों को सहते हुए भी अपने धर्म का पालन करते रहे। फ़ीजी में मनाए जाने वाले अनेक प्रकार के संस्कार और उत्सव जैसे नामकरण, मुंडन, यज्ञोपवीत, अंत्येष्टि, रक्षाबंधन, दीपावली, रामलीला, होली, महाशिवरात्रि, हनुमान जयंती आदि भी वहाँ पर भारतीय संस्कृति के प्रचार–प्रसार के सूचक हैं। वैवाहिक अवसरों पर गाए जाने वाले गाली गीत और मृत्यु के अवसर पर किया जाने वाला अंत्येष्टि संस्कार रामायणिक परंपरा को ही आगे बढ़ाते हैं।

फ़ीजी में चार–पाँच पीढ़ियाँ बीत जाने के बाद भी उनके वंशज 'रामायण मैया' के महत्व को आज भी स्वीकार करते हैं। मानस आज भी 'तुलसी रामायण' बनकर उनकी जीवनशैली का अंग बनी हुई है। हर भारतवंशी के घर में रामायण की प्रति पाई जाती है और उनके पारस्परिक वार्तालाप में उसकी चौपाइयाँ उद्धृत होती रहती हैं। भारत में तो आध्यात्मिक समृद्धि के लिए रामायण का पठन होता है किंतु फ़ीजी में इसका प्रयोग मान–सम्मान, सांस्कृतिक, धार्मिक जीवन के आधारस्वरूप होता है। यहाँ के प्रवासी भारतीयों के लिए मानस बाइबिल और कुरान की तरह है जो उनके सामाजिक जीवन का आधार है। यहाँ के लोग आरती के रूप में 'ओम जय जगदीश हरे' की जगह रामायण की आरती गाते हैं। फ़ीजी का लुंबासा शहर रामलीला मंचन के लिए प्रसिद्ध है जहाँ के 'बुलिलेका रामलीला मंदिर' में पिछले 116 वर्षों से रामलीला का मंचन हो रहा है।

हर मंगलवार को रामायण मंडलियों द्वारा रामायण का पाठ किया जाता है। फ़ीजी में रामायण के महत्व को उजागर करते हुए श्री विश्वास सपकल, भूतपूर्व भारतीय उच्चायुक्त कहते हैं, "साप्ताहिक रूप से हजारों स्थानों पर रामायण का पाठ होता है। ऐसी जीवंत परंपरा किसी भी देश में नहीं मिलेगी.... यहाँ लगभग 2000 से अधिक रामायण मंडलियाँ हैं, प्रारंभ में स्कूलों और शिक्षा संस्थाओं की स्थापना भी इन्हीं मंडलियों के माध्यम से हुई।" कवि राघवानंद की ये पंक्तियाँ भी फ़ीजी में रामायण के महत्व को दर्शाती हैं–

हर गाँव में रामायण की गूँज सुनाना
घर–घर में हनुमान के झंडे फहराना
भारतीयों का भान से भारतीय कहना,
फखर से हर कौम में अपने सर का उठाना
शायद हमारे नसीब में ये न होते
अगर जड़ मजबूती से जमाए न होते।

ढोलक, झाँझ–मजीरे से रामायण का गान करती हुई ये मंडलियाँ लोकरीति का

संवर्धन और संरक्षण करती हैं। साथ ही उनका एक मकसद और भी है कि वे इनके माध्यम से युवा पीढ़ी को अपनी संस्कृति से परिचित भी कराती हैं और उन्हें राम जैसा बनने का संदेश भी प्रेषित करती हैं। फ़ीजी में राम के नाम पर सत्संग भी होते रहते हैं क्योंकि वे तुलसी की इस चौपाई में अटूट आस्था रखते हैं–

बिनु सत्संग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न होई।।
सतसंगत मृदु मंगल मूला। सोई फल सिधि सब साध फूला।।

वर्ष 2000 में प्रधानमंत्री श्री महेंद्र चौधरी ने रामायण पर हाथ रखकर प्रधानमंत्री पद की शपथ ली थी। फ़ीजी में तीज–त्योहारों पर तो 'रामायण मैया की जय' की गूँज सुनाई पड़ती ही है यहाँ तो रेडियो पर सुबह से ही 'रामायण मैया की जय' से राष्ट्र गुंजायमान रहता है।

फ़ीजी के रचनाकार भी रामायण का वाचन और पाठन तो करते ही हैं, साथ ही उस पर गहन मनन एवं चिंतन भी करते हैं और उसे नए स्वरूप में प्रस्तुत करने का साहस भी करते हैं। जैसे वहाँ के प्रसिद्ध कवि श्री रामनारायण ने रामायण को आधार बनाकर एक लंबी कविता लिखी है। नाम है उसका, 'हाँ मैं मंथरा हूँ' जिसमें कवि के विचारों की नवीनता तथा शब्द सामर्थ्य देख दाँतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। रामायण में वर्णित मंथरा एक ऐसे पात्र के रूप में वर्णित है जिसका नाम सुनकर लोग घृणा से मुँह मोड़ लेते हैं। शायद ही कोई अपनी पुत्री का नाम मंथरा रखे। उस मानसिकता के प्रति लोगों की सोच को बदलने का कवि का सकारात्मक प्रयास वास्तव में विस्मयकारी है। प्रस्तुत है उस कविता का अंतिम अंश–

कौन हूँ मैं
घृणा के सागर में डुबोई
कलंकित, उपहसित
ताड़न की अधिकारी
नारी
मंथरा
चिंतन मनन या कि फिर
राम के रामत्व की निर्मात्री
अहिल्या की उद्धारक
केवट का अहोभाग्य
शबरी का जीवन स्वप्न
जटायु की मुक्तिदात्री
मैं हूँ दासीरूप
सरस्वती स्वरूप
शक्ति का प्रतीकवाणी अनूप
मंथरा
हाँ मैं मंथरा हूँ।

क्या चिंतन है कवि का! यह तभी संभव हो पाया है जब उसकी रगों में रामायण की गंगा बहती है। इस प्रकार संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि जिस तरह हिमालय भारत माँ का अडिग प्रहरी है उसी तरह गोस्वामी जी की रामायण फ़ीजी के प्रवासी भारतीयों की भाषा, धर्म, संस्कृति और सभ्यता की रक्षा करने वाली प्रहरी है।

❑❑❑

सुब्रमनी के उपन्यासों में लोकसंपृक्ति के विविध संदर्भ

सुनील कुमार तिवारी

भारत से इतर भू–भाग में जिन रूपों में हिंदी की गहन अनुभूति और व्यापक अभिव्यक्ति हुई है, इन रूपों की सामूहिक संज्ञा है– प्रवासी हिंदी सरोकारों का आस्वादन कराता है। वस्तुतः प्रवासियों के जीवन की व्यथा, दुख–दर्द, विसंगतियों, जटिलताओं और संघर्ष को देखकर प्रवासी लोगों के हृदय में जो दर्द उमड़ता है, वही दर्द उनकी अभिव्यक्ति बन जाता है। उषा राजे सक्सेना के अनुसार 'आज विदेशों में रहने वाले भारतीय रचनाकार प्रवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं पर लिख रहे हैं। ये रचनाकार सिर्फ नई जमीन ही नहीं तोड़ रहे हैं, वरन हिंदी साहित्य को नए विषयवस्तु के साथ नए मुहावरे, नई शब्दावली और शैली के साथ ईमानदारी से पश्चिमी जगत के बोल्ड और यथार्थपरक परिवेश से भी जोड़ रहे हैं। आज भारतीय पाठक, संपादक और प्रकाशक प्रवासी साहित्यकारों द्वारा सृजित साहित्य के प्रति जिज्ञासा रखते हैं।

भारतवंशी देशों में फ़ीजी एक महत्वपूर्ण देश है। फ़ीजी का प्रवासी हिंदी साहित्य अत्यंत समृद्ध और व्यापक है। प्रो. सुब्रमनी फ़ीजी के प्रमुख सर्जक के रूप में बहुविश्रुत रहे हैं। निबंधकार, उपन्यासकर, आलोचक, कथाकार, भाषाविद, शिक्षक आदि अनेक भूमिकाओं में संब्रमनी ने अपना अलग मुकाम हासिल किया है। उनकी प्रमुख औपन्यासिक रचनाएँ हैं– 'डउका पुरान' और 'फ़ीजी माँः एक हजार की माँ'। (2001) में प्रकाशित है, जबकि सुब्रमनी के औपन्यासिक लेखन का दूसरा संदर्भ 'फ़ीजी माँ–एक हजार की माँ' के प्रकाशन से सबार्ल्टन लेखन मे।एक नया इतिहास जुड़ता है। दरअसल, इन दोनों उपन्यासों के द्वारा सुब्रमनी न केवल सबार्ल्टन भाषा को ठेस जमीन देते हैं, बल्कि फ़ीजी समाज की विवेचना और आलोचना को अपना प्रमुख सरोकार बनाते हैं। यूँ तो प्रत्येक उपन्यासकार अपने आसपास के यथार्थ से अलग–अलग ढंग से साक्षात्कार करता है और अपने समय और सच के संधान का लगातार प्रयास करता है। अपने परिवेश, मिट्टी और आबोहवा से रूप, रस, गंध लेकर उपन्यासकार जिस चित्र की निर्मिति करता है, वह अत्यंत व्यापक, विशद और बहुरंगी होता है। सुब्रमनी ने भी अपने उपन्यासों में फ़ीजी के परिवेश, चरित्र, परिस्थिति और घटनाओं का प्रतिबिंबन बड़ी प्रामाणिकता और व्यापकता से किया है। वस्तुतः 'डउका पुरान' सुब्रमनी का एक ऐसा महत्वकांक्षी उपन्यास है, जो फ़ीजी द्वीप में प्रचलित 'फ़ीजी हिंदी' या 'फ़ीजी बात' में लिखा गया है। सुब्रमनी यूनिवर्सिटी ऑफ द साउथ पेसिफिक में साहित्य के प्रोफेसर रहे हैं। अंग्रेजी में उन्होंने कहानी, उपन्यास सहित बहुविध लेखन किया है। बहुत समय तक अंग्रेजी में लिखते हुए जब अचानक यह लेखक अपनी दैनंदिन जीवन में बरती जाने वाली भाषा की ओर लौटता है तो किसी छोटी–मोटी रचना या कविता की लघु पंक्तियों के साथ नहीं, बल्कि एक महाकाय एकदम अनूठी रचना के साथ वे अपने जीवनानुभव का अनोखा वृत्त रचते हैं।'

इस तरह, यह उपन्यास केवल फ़ीजी भारतीयों के लिए ही नहीं, बल्कि गिरमिट इतिहास के दस्तावेजीकरण के रूप में भी प्रत्यक्ष होता है। इस उपन्यास की कई विशेषताएँ हैं, जिनमें से एक यह है क इसमें लेखक कथोपकथन शैली में ही आंचलिकता की छौंक नहीं लगाता, बल्कि 521 पृष्ठ का पूरा का पूरा उपन्यास भी

उस अनूठी भाषा में रचता है, जो भाषा मिश्रित संस्कृति के गर्भ से एकदम अलग रंग और अनोखी छटा लिए हुए है। इस भाषा के संदर्भ में "कोई किस्सा बताव" पुस्तक के लेखक प्रवीण चंद्र लिखते हैं, "फ़ीजी बात फ़ीजी भारतीयों की मातृभाषा है। यह अंधकार युग की टूटल फूटल भाषा नहीं है। जिसे विस्मृत इतिहास की गुमनाम गलियों में छोड़ देना बेहतर है। यह तो एक अद्‌वितीय भाषा है, जो विशेष ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक अनुभवों के बीजों से उत्पन्न हुई है, जिसमें फ़ीजी इतिहास की विभिन्न धाराओं का संगम प्रतिबिंबित होता है। उत्तर भारत की अवधी, भोजपुरी, दक्षिण भारत की द्रविड़ियन, ब्रिटेन की इंग्लिश और फ़ीजी की स्थानीय भाषा के शब्दों को अपने में समेटे हुए कब एक नए रूप में अवतरित होती चली गई, स्वयं इसको भी नहीं पता। लेकिन यह भाषा हर किसी भारतीय के अंदर नैसर्गिक रूप से प्रवाहित होती है और इस भाषा में बातचीत करने के लिए उन्हें कोई प्रयास नहीं करना पड़ता।

सुब्रमनी के अनुसार, लोगों में फ़ीजी हिंदी को लेकर बहुत सी गलतफहमियाँ हैं। उनके अनुसार यह टूटी–फूटी भाषा है, लेकिन इसके अपने नियम है, अपना व्याकरण है, अपना सौंदर्य है, जीवन की यथार्थता है। वस्तुतः इस उपन्यास में हिंदी का थोड़ा बदला सा स्वाद है, पर अपनी मूल संवदना से सजी स्मृतिपूरित और स्फूर्तियुक्त जनभाषा में कदम–कदम पर सदेह जीवित संसार बोलता–बतियाता चलता–फिरता और साँस लेता दिखता है। 'डउका पुरान' आधुनिक सभ्यता की पकड़ से वंचित रह गए ऐसे लागों की कथा है, जो भौतिक रूप से भले ही अभावग्रस्त हैं, पर जिनकी बातचीत, बोली–व्यापार में एक अद्‌भुत खिलंदड़ापन है, जिनके पास हर पल को अपने तईं जीने का प्रबल मुद्‌दा है और जिनके पास भीतरी उमंग–उल्लास में साँस लेती ढेर सारी सच्ची–झूठी कथाएँ हैं।

'डउका पुरान' की भूमिका में जाने–माने संगीतज्ञ और ऑस्ट्रेलिया के हिंदी प्रसारक अंबिकानंद ने इसे उत्कृष्ट और शुरू से अंत तक बाँधे रखने वाली कृति बताया है।

दिल्ली विश्वविद्‌यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर रहे विशिष्ट आलोचक हरीश त्रिवेदी 'डउका पुरान' को अपने ढंग का अनूठा उपन्यास मानते हैं। उनके अनुसार "जनभाषा का बीच–बीच में एक वर्ग विशेष के चरित्रों का कथोपकथन में प्रयोग करना या कुछ भदेस शब्दों का बघार लगाकर कथा को देशज आस्वाद का प्रयास करना और बात है, लेकिन पूरा महाकाव्यात्मक उपन्यास ऐसी भाषा में रचा जाना बिल्कुल ही अलग बात है और यह चमत्कार सुब्रमनी ने कर दिखाया है। काश कि भारतीय मूल के कुछ अन्य स्वनामधन्य लेखकों ने भी ऐसा ही किया होता जैसे कि वी एस नायपाल या सलमान रुश्दी, तो आज विश्व साहित्य का नक्शा ही कुछ और होता। उत्तर उपनिवेशवाद के कई धुरंधर विद्‌वान कई वर्षों से यह मातम मनाते आ रहे हैं कि निम्नवर्गीय व्यक्ति (सबाल्टर्न) बोल नहीं पाता। अतः निम्नवर्गीय जीवन का स्वरचित प्रामाणिक चरित्र–चित्रण साहित्य में नहीं मिलता। ये विद्‌वान समझते नहीं कि बेचारा निम्नवर्गीय आदमी बोले भी तो अंग्रेजी में कैसे बोले। सबाल्टर्न का अपना सच्चा स्वर तो डउका पुरान का फ़ीजी हिंदी जैसी भाषा में ही मुखरित हो सकता था और हुआ भी है। यह कृति फ़ीजी के ही नहीं भारत के भी साहित्यिक इतिहास में एक असाधारण घटना है और उत्तर उपनिवेशवादी विश्व साहित्य में भी इसका अलग ही महत्व व स्थान बनना चाहिए।

लेखक ने इस उपन्यास की कथा–शैली को पुराणाख्यान की तर्ज पर रचा है, पर ऐसा नहीं लगता कि लेखक किसी मिथक का जीर्णोद्‌धार कर रहा है या कोई पुराण पोशी कार्य कर रहा है, बल्कि इस उपन्यास को पढ़ते हुए लगातार यह प्रतीति होती है कि

उपन्यासकार मानवीय स्थिति के किसी और ही आयाम को खोल रहा है। 'डउका पुरान' के नायक का नाम है फ़ीजीलाल, जो उत्तर–औपनिवेशिक आम फ़ीजी भारतीय की तस्वीर पाठकों के समक्ष रखता है। सुब्रमनी ने फ़ीजीलाल के माध्यम से समुदाय में आए बदलाव, शहरीकरण, विस्थापन, अस्थिरता का दौर, आधुनिक मीडिया, युद्ध के बाद की विभीषिकाएँ– सबसे पाठकों को रूबरू करवाया है। "डउका" का अर्थ है– धूर्त, मसखरा, सरल, आम आदमी, जिसके होने या ना होने से कोई बड़ा परिवर्तन नहीं होने वाला है, लेकिन वह है निराला, अपने आप में अनोखा। फ़ीजीलाल यूँ तो अंगूठा छाप है, लेकिन दुनियादारी की भरपूर समझ रखता है। वह खोजी प्रवृत्ति का है और लोगों की नीयत को तत्क्षण भांप जाने की अपूर्व क्षमता से लैस है। वह घुमक्कड़ प्रवृत्ति का है, अपने पैरों से दुनिया को मापने वाला, कार और बस के आकर्षण से विरत अपने अंदाज का अनोखा मुसाफ़िर। वह अपनी घुमक्कड़ी के दौरान अजनबियों के यहाँ जाता है और उनके यहाँ हफ्तों रुक जाता है, उनसे हिल–मिलकर खूब गप्प करता है, सुख–दुख साझा करता है। उसके पास अपने बारे में बताने के लिए कई रोचक कथाएँ हैं। वह खुद पर हँस लेता है और मारक व्यंग्य करने में भी दक्ष है। घूमते हुए रास्ते में बहुतेरे ऐसे लोग मिल जाते हैं, जिनके पास अपनी भाषा में नितांत अपनी कहानियाँ हैं। इस तरह सुब्रमनी, फ़ीजीलाल के माध्यम से हर गिरमिटिए के परिवेश की याद को ताजा कर देते हैं। फ़ीजीलाल की खिचड़ी बोलचाल की भाषा उपन्यास के समग्र कलेवर में पूरी तरह से रची–बसी है और पाठकों को उस भावधारा में पूरी तरह डुबोने में समर्थ है। दरअसल, जन–महाकाव्यात्मक उपन्यास के रूप में 'डउका पुरान' की विविधतापूर्ण विस्तृति पाठकों को अपनी ओर खींचती है। यहाँ पूरी सहजता में जहाँ ग्रामीण परिवेश के चित्र मिलते हैं, वहीं धर्म–दर्शन, मनोविज्ञान, समाज–नेतृत्व, नीति, कविता, अतीत–वर्तमान –सबक कुछ घुला–मिला दिख जाता है। उपन्यास के कथानक का रचाव संश्लिष्ट है। परत–दर–परत बुनी। पारस्परिक घटनाओं से लोकजीवन की स्याह–सफेद परछाइयों को बखूबी पकड़ा गया है। परिवेश में गहराई, ताजगी और यथार्थपरकता है। 'डउका पुरान' में उपन्यासकार ने परिवेश के समस्त भौतिक स्वरूप को अभिव्यक्त किया है। चित्रात्मकता इसकी विशेषता है, जिससे जिए हुए जीवन की गहरी अनुभवशीलता का एहसास और गहरा होता जाता हैं। यहाँ रीति–रिवाज, खानपान, उत्सव, गीत, रहन–सहन, बोलचाल और संघर्ष तक– सबकुछ परिवेश पर आश्रित हैं। परिवेश की बहुआयामिता को अपने अनुभव विश्व की प्रामाणिकता के साथ चित्रित कर उपन्यासकार ने सजीव बना दिया है। दरअसल, गहरी रागात्मकता, सूक्ष्म अध्ययन, तीव्र संवेदनशीलता एवं प्रामाणिक प्रयास से ग्रामीण परिवेश की जटिलता को जीवित करने की कोशिश में लेखक पूरी तरह सफल रहा है। परिवेश की बाहरी आभा ही नहीं, अपितु पात्रों के आंतरिक उद्वेलन एवं उनकी मानसिक हलचलों का भी सिलसिलेवार ब्यौरा यह उपन्यास बखूबी प्रस्तुत करता है। इसमें ढेर सारे पात्र हैं और सबकी सत्ता महत्वपूर्ण है। फ़ीजीलाल ऐसा पात्र है, जो पाठकों के मन में फ़ीजी द्वीप के प्रति ललक और आत्मीयता जगाता है। वह अपनी घुमक्कड़ी के दौरान जहाँ जाता है, गाँव की मिट्टी से जुड़ा रहता है और गाँव को लेकर आगे बढ़ता है। वह उपन्यास की समग्र कथात्मकता का सूत्रधार हैं वह स्वयं उपन्यास में अंकित जीवन को जी रहा है। इस तरह इस उपन्यास में कथानक का, पात्रों का, सामाजिक–सांस्कृतिक पक्षों का बिखराव नहीं, बल्कि एकता और दिशागामिता है। पाठक इस उपन्यास को पढ़ते हुए समन्वित औपन्यासिक प्रभाव को लेकर आगे बढ़ता है। लेखक की दृष्टि बहुआयामी है। कथा प्रवाह को बरकरार रखते

हुए ग्रामीण संस्कृति, शादी–ब्याह, गीत–नृत्य, सामाजिक और राजनीतिक जागरण आदि का सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है। फ़ीजीलाल और नंदलाल के बीच की बातचीत देखें–

हम पूछा तो ठठ्ठा मार के हंसिस है"
देखुना गोरमिंट बदले वाला है
अभी वाला गोरमिंट मा का कसर है?
खाली खावे है, देवे जनते ना।
तो आगे कउन रज करीत?
देखत जाव।

वस्तुतः, 'डउका पुरान' में लेखक गुण–दोष युक्त मानवसमूह की समस्त जिंदगी को उसकी सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना के समय–सापेक्ष संदर्भ में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इस उपन्यास का मूल स्वर ग्रामीण भावबोध से जुड़ा है, पर टाउन के जीवन की विडबंना का एहसास इन ग्रामजनों को है। फ़ीजी की जो वर्तमान हालात हैं, उसका दर्द संकेतों के सहारे यह उपन्यास पाठकों तक पहुँचाता है। खेत–खलिहान खाली हो रहे हैं, किसान विस्थापित किए जा रहे हैं और एक पूरी जीवन शैली विखंडन के कगार पर आ खड़ी हुई है। इस यथार्थ का बड़ा ही प्रभावी, करुणा, विडंबनात्मक चित्र यह उपन्यास खींचता है। 'डउका पुरान' ख्याली कल्पनाओं का प्रतिफलन नहीं है, अपितु ठोस जमीनी ऊँचाइयों का रूपांतरण है। गिरगिट इतिहास की कथा, भारत से फ़ीजी आना, एक जहाज का डूबना–सभी घटनाओं का लेखक ने यथार्थ चित्रण किया है।

सुब्रमनी ने इस उपन्यास में भाषा का सर्जनात्मक प्रयोग किया है। सर्वथा नई भाषा को लेखक ने स्थान विशेष की भाषा, बोली, उपबोली, उच्चारण, लहजा, उसके संकेत, बिंब, प्रतीक एवं रंग व्यंग्य का सर्जनशील पुट देकर फ़ीजी की वास्तविक, रागात्मक एवं भावात्मक पहचान कराई है। कई प्रसंगों में 'फ़ीजी हिंदी' के रचनात्मक प्रयोग किए गए हैं, जिससे अद्‌भुत हास्य पैदा होता है। जैसे एक बार गाँव में एक राजनीतिज्ञ वोट मांगने आता है। फ़ीजी हिंदी में वोट को बोट बोलते हुए वह वोट मांगता है तो फ़ीजीलाल अपने पिता से पूछता है कि वह बोट का क्या करेगा? फ़ीजीलाल का पिता कहता है, उसे क्या पता, क्या पता उसे बोट में बैठना हो, और करे जो उसे करना हो। इस तरह एक शब्द के दो अर्थ होने से हास्य पैदा होता है। इस उपन्यास में जहाँ भी व्यंग्य की धार प्रबल है, वहाँ व्यंग्यात्मक युक्ति क्षेत्र और काल विशेष की सीमाओं से ऊपर उठ जाती है और तब सहज ही जिंदगी को परिभाषित करने वाले सूत्र दिखाई पड़ते हैं। वस्तुतः लेखक ने स्थानीय मुहावरों, लोकोक्तियों, लोकगीतों एवं कथाशैलियों का उपयोग लोक जीवन की विधियों को संजोने हेतु ही किया है। यद्‌यपि कहीं–कहीं ऐसा लगता है शब्द चमत्कार एवं तोड़–फोड़ की कोशिश भी हुई है।

कुल मिलाकार, यह उपन्यास रोचक, जीवंत और मर्मस्पर्शी है। यद्‌यपि यह आकार में बड़ा है, पर इसमें कहीं का ईंट, कहीं का रोड़ा नहीं है। सुब्रमनी ने चरित्र चित्रण की अद्‌भुत कुशलता दिखाई है। फ़ीजीलाल को इंसानियत के भावबोध को नष्ट करने वाली संस्कृति स्वीकार्य नहीं है इस तरह यह उपन्यास फ़ीजी की कथा तो कहता ही है, भारतीय परिवेश और विचारों की प्रासंगिकता को भी रेखांकित करता है। कथानक का नावीन्य, यथार्थ परिवेश, चरित्रों की विशिष्ट मनःस्थितियाँ, जनभाषा, बिंबो एवं प्रतीकों का कुशल संयोजन, ग्राम्य संवेदना और प्रकृति परिवेश के साथ–साथ प्रगतिशील दृष्टिकोण– इस उपन्यास की कई खासियतें हैं। सुब्रमनी का यह उपन्यास निम्नवर्गीय जीवन का एक जीवंत दस्तावेज तो है ही, इस बात का भी संकेत है कि किसी को बस इस वजह से नहीं नकारा जा सकता, क्योंकि वह हमारी तथाकथित आधुनिकता से आक्रांत परिधि में नहीं समा पा रहा है।

मदर इंडिया से तुलित सुब्रमनी की दूसरी वृहत औपन्यासिक कृति है 'फ़ीजी माँ

एक हजार की माँ'। 2019 में अंतरराष्ट्रीय गिरमिट कॉफ्रेंस के मौके पर द यूनिवर्सिटी ऑफ फ़ीजी के ग्लोबल गिरमिट इंस्टीट्यूट में लोकार्पित हुई। 1036 पृष्ठों में प्रत्यक्ष हुई यह रचना पाठकों के समक्ष गिरिमिटिया और उनके वंशजों का अपूर्व और अद्भुत संसार खोलती है। इस कथा में काल के साथ समाज के अंदरूनी हालात का तीव्र इतिहासबोध आद्यांत विन्यस्त है। यह उपन्यास एक ओर इतिहास के दस्तावेजों का पुनर्लेखन है तो दूसरी ओर स्त्री मनोविज्ञान साहित्यिक संदर्भ भी संजोता है। जहाँ 'डउका पुरान' का फ़ीजीलाल आम फ़ीजी भारतीय व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है, वही 'फ़ीजी माँः एक हजार की माँ' की वेदमती आम फ़ीजी भारतीय महिला का प्रतिनिधित्व करती है।

इस उपन्यास में एक विधवा भिखारी महिला वेदमती को राजधानी सुवा के विशालकाय बैंक के समक्ष बैठा दिखाया गया है, जहाँ से वह देश के इतिहास को दृष्टि के केंद्र में पूरा शहर और उसके प्रत्येक निवासी हैं। लोग–बाग समय–समय पर उससे सही सूचनाओं को प्राप्त करने और कुछ सलाह–मशविरा के लिए भी मिलने आ जाते हैं। वह सबसे प्यार और स्नेह से मिलती है, इस तरह गहन वात्सल्य से अभिप्रेरित–अभिमंडित उसका व्यक्तित्व स्वयंमेव हजार माँ के रूप में परिणत हो जाता है। वेदमती और जॉय की परस्पर बातचीत में जॉय उसे फ़ीजी माँ कहकर बुलाती है तो वेदमती भावुक हो जाती है और उपन्यास का केंद्रीय भाव भी सहज ही पाठकों के समक्ष प्रत्यक्ष हो जाता है। जॉय कहती है– फिल्म औरत के जीवन पे है गरीबी पे नई फिर भी बेटी हम्मे कहाँ से मिल करियो, हमारे पास का है फिल्म में डारे के? आप तो फ़ीजी माँ हैं हमर तो जईसे काटो खून नई पहिला दफा दफा कोई ई रकम से माँ बोलिस दिल हमर भरी आईस।

इस उपन्यास में दर्जनों स्त्री पात्र हैं। सुब्रमनी ने स्त्री चरित्रों के साथ जिस सहजता और कुशलता से कहानी को बुना है, वह साबित करता है कि लेखक स्त्री–मनोविज्ञान की महीन परतों को खोलने में सक्षम है और यह भी साबित करता है कि सिद्ध लेखक, सिर्फ लेखक होता है, पुरुष लेखक या स्त्री लेखक नहीं होता।

सामान्य तौर पर इस तरह की कहानियों में लोकल और बाहरी का संघर्ष दिखाया जाता है, लेकिन सुब्रमनी ने इससे परहेज किया है। इस उपन्यास में फ़ीजी माँ की मित्रता एक ई–तउकी (स्वदेशी) महिला से है और इस तरह फ़ीजी माँ परस्पर साहचर्य का एक बड़ा वितान रचती हुई अपने हृदय की विशालता और संवेदना की गहनता का भी परिचय देती है। इस उपन्यास को स्त्री जीवन, सबाल्टर्न इतिहास, मदर इंडिया के ग्लोबल मदर बनने की ओर बढ़ना, गाँव से ग्रामीण जीवन का गायब होना, भारतीय संस्कृति का ह्रास, जबरन विस्थापन का डर आदि सभी आयामों से जोड़कर देखा जा सकता है।

'फ़ीजी माँ' को सुब्रमनी ने अपने प्रेरणापुरुष तुलसी बाबा को समर्पित किया है। वस्तुतः सुब्रमनी अपनी स्मृतियों के विलोप से पहले उसे थाती के रूप में संजोकर रखना चाहते हैं और इसी कारण उनके अथक प्रयासों से इन उपन्यासों का सृजन हुआ है। अतर्वस्तु, भाषा और रूपबंध की संश्लिष्टता के साथ दोनों उपन्यासों की भाषा सुब्रमनी की बड़ी उपलब्धि है। लेखक ने अपने दोनों उपन्यासों में ऐसे पात्रों की योजना की है, जो भाषा का उपयोग अपने विशिष्ट अंदाज में करते हैं।

सुब्रमनी ने 'फिजी हिंदी' को जमीन से जोड़ने का काम किया है। सुब्रमनी के दृश्यात्मक, चित्रात्मक, लयात्मक, ललित और रंजक लेखनकला की बड़ी विशेषता उसमें निहित सहजता, सरलता और रवानगी है। सुब्रमनी की कहानी कला का राज यह है कि वह पाठक को अपनी कहानी लगती है। उसकी खास बात यह है कि उसमें वे लोग

शामिल हैं, जो इतिहास से बहिष्कृत रहे हैं और आज भी रखे जा रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वर्तमान साहित्य, संपादक– कुंवर पाल सिंह, नमिता सिंह, जनवरी–फरवरी 2006, पृ. 48
2. संपादक– प्रवीणचंद्र, कोई किस्सा बतावः फ़ीजी हिंदी में कुछ कहानी, 2018, ब्रिस्बेन, क्लार्क एंड मैकाय
3. आरएनजेड, मार्च 2020, एकेडमिक बैक्स इंडो फीजियन मदर टंग ओवर फार्मल हिंदी, पैसिफिक फ़ीजी, न्यूजीलैंडः रेडियों सव्रिस
4. सुब्रमनी, डउका पुरान, 2001, दिल्ली, स्टार पब्लिकेशंस
5. सुब्रमनी, डउका पुरान, 2001, दिल्ली, स्टार पब्लिकेशंस
6. सुब्रमनी, डउका पुरान, 2001, दिल्ली, स्टार पब्लिकेशंस
7. लाल, बी. वी, 2003, रिव्यू ऑफ डउका पुरान, बाइ सुब्रमनी, द कंटेम्पररी पैसिफिक 15(1)
8. सुब्रमनी, फ़ीजी माँः एक हजार की माँ, सुवा, कॉपीराइट, सुब्रमनी–2018
9. शर्मा, डी, 2018, फ़ीजी माँः ए बुक ऑफ थाउजेंड रिडिंग्स, दिसंबर 11(1)

❑❑❑

हिंदी की जद्दोजहद में बिजी फ़ीजी

अरुणा घवाना

'हिंदी की बिंदी का परचम होगा' भारत की तरह फ़ीजी में रहने वाले भारतवंशी संभवतः इसी वाक्यांश के सार्थक होने का इंतज़ार कर रहे हैं और इसी इंतज़ार में 'मानक हिंदी' और 'फ़ीजी हिंदी' की उठा–पटक शुरू हो गई। मजेदार बात यह है कि यहाँ अंग्रेज़ी को लेकर कोई विरोध नहीं है।

भारत से कोसों दूर द्वीपसमूहों का देश फ़ीजी 'मिनी भारत' के नाम से भी पहचाना और जाना जाता है। कारण कुछ समानताओं से स्पष्ट है– भाषा, संस्कृति, संस्कार और भारतवंशी। 18वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति के साथ ही विश्वभर में उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद अपने चरम की ओर चल पड़ा था। औपनिवेशिक ताकतों का एक ही नियम था, जहाँ से भी हो सके धन–दौलत को बटोरकर अपने देश ले जाया जाए। धन बटोरने की इस दौड़ में मानवीय मूल्यों को ताक पर रखकर इंसानों के साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया गया। न कोई नियम, न कोई रोक–टोक। इसी के चलते कालांतर में गिरमिट जैसी व्यवस्था का जन्म हुआ। फ़ीजी में 1874 के ब्रिटिश कानून 'डीड ऑफ सेशन' के कारण भारतीयों का अनुबंधित मज़दूर के रूप में आगमन शुरू हुआ। फ़ीजी किसी राष्ट्र के अधीन नहीं था। उसके साथ डीड के अनुसार उसे अपने संसाधनों से ही अपना राज्य चलाना था। इस प्रक्रिया के तहत सर आर्थर हमिल्टन गोर्डन ने एक ऐसी व्यवस्था बनाई जिससे धन अर्जित कर देश का शासन चलाया जा सके। फ़ीजी में भारतीय अनुबंध समाप्त होने के बाद वहीं पर बस गए।'[1]

गिरमिट प्रथा के चलते हज़ारों मज़दूरों को अच्छी जिंदगी के स्वर्णिम सपने दिखाकर भारत से कई मील दूर फ़ीजी में गन्ने के खेतों में काम करने के लिए लाया गया था। जहाज का हिंदी का सफ़र उनके लिए अंग्रेज़ी का सफ़र बन गया। इस सफ़र के कारण एक नई जाति पनपी, 'जहाजीभाई', जिन्होंने अपने दुख–सुख को साझा किया। भारत में यही लोग संभवतः छुआछूत जैसे जातिवादी अभिशापों से ग्रस्त थे, किंतु अत्याचार, धोखा और दुख ने सभी में आपसी सौहार्द्र पैदा कर दिया। फ़ीजी चूँकि चारों ओर से समुद्र से घिरा था, इसलिए भागना भी आसान नहीं था। वैसे भी भारतीयों की परिश्रम की प्रवृत्ति से अंग्रेज़ अच्छी तरह से परिचित थे। भारतीयों ने भी अपने कठिन परिश्रम और लगन से फ़ीजी द्वीपमाला को प्रशांत महासागर का एक ऐसा देश बना दिया, जो आज अपने सौंदर्य के लिए पर्यटकों को आकर्षित करता है।

फ़ीजी लाए गए भारतीय, उत्तर भारत के और मुख्यतः उत्तर प्रदेश और बिहार के अलग–अलग क्षेत्रों से लाए गए थे। जहाँ कोस में पानी की तरह बोली भी बदल जाती है। रामचरितमानस के साथ भाषा को तो वे अपनी गठरी में बाँध लाए, साथ ही अपना स्थानीय पुट भी। जिससे कालांतर में हिंदी का नया रूप देखने को मिला– 'फ़ीजी हिंदी' या 'फ़ीजी बात'।

"फ़ीजी में गिरमिट प्रथा के अंतर्गत आए प्रवासी भारतीयों का इतिहास लगभग 141 वर्ष पुराना है। गिरमिट प्रथा की समाप्ति के पश्चात् साठ प्रतिशत गिरमिटिया मजदूर फ़ीजी में ही बस गए और उनके वंशज वहाँ जीवनयापन कर रहे हैं।"[2]

आज फ़ीजी में गिरमिटियाओं की चौथी पीढ़ी है, जो शिक्षित और संपन्न है। इसने भारतीय संस्कृति और संस्कारों को सहेजकर रखा है। यह पीढ़ी साहित्यिक रचनाएँ भी करती है। "भाषा, संस्कृति का मुख्य घटक है। खानपान, वेशभूषा, रीति–रिवाज़ में सहज परिवर्तन दूसरी संस्कृति के प्रभाव से सहज ही हो जाता है पर भाषा, जो मानवीय अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम है, व्यक्ति उसे जल्दी नहीं छोड़ पाता। भाषा उसकी अस्मिता की सबसे बड़ी पहचान बन जाती है। यह तथ्य दोनों कोटि के प्रवासी भारतीयों के संबंध में सत्य है। जब प्रवासी भारतीयों की जनसंख्या का प्रतिशत दूसरे देश के मूल निवासियों की जनसंख्या के प्रतिशत के लगभग बराबर होता है, वहाँ अपनी भाषा की सुरक्षा और प्रतिष्ठा सामान्यतः अधिक सरल होती है।"[3] भूमंडलीकरण के इस आधुनिक दौर में दुनिया जिस गति से सिमटती जा रही है, भाषा के विस्तृत और व्यापक कैनवस पर भी अब सिलवटें पड़नी शुरू हो गई हैं। अंग्रेज़ी की लोकप्रियता बढ़ रही है। इस लोकप्रियता का खामियाज़ा हिंदी भाषा को भी भुगतना पड़ रहा है। फ़िर चाहे वह भारत में हो, मॉरिशस या फ़ीजी में हो। हिंदी अब भी अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ ही रही है। तभी हिंदी दिवस मनाने की ज़रूरत महसूस होती है और होती रहेगी।

फ़ीजी के विद्वान धनेश्वर शर्मा के अनुसार, जिस प्रकार मार्खेज ने अपने उपन्यास 'हंड्रेड इयर्स ऑफ़ सोलिच्यूड' में कहा था कि "जैसे उस दौर में अनिंद्रा की बीमारी प्लेग की तरह फ़ैली थी, ठीक उसी तरह से इंग्लिश भाषा ने लोगों के दिमाग पर कब्ज़ा कर लिया। शुरू में यह सभी को सुविधाजनक और कार्यकुशल लगी। लेकिन जल्द ही लोगों को लगने लगा कि वे अपने अतीत की स्मृतियों से दूर हट रहे हैं और अपने भविष्य के सपने नहीं देख पा रहे हैं। जिस प्रकार मार्खेज का चरित्र अपनी रोज़मर्रा की चीज़ों के नाम भूल जाता है और उनको अपनी भाषा में लिखने का प्रयत्न करता है, उसी प्रकार सुब्रमनी रोज़मर्रा के शब्द, मुहावरे जिसे बोल–सीखकर भारतीय बच्चा बड़ा हुआ है, उन शब्दों, मुहावरों को लिपिबद्ध करना चाहते हैं ताकि आनेवाली पीढ़ी उन्हें भूल न जाए और अपनी जड़ों से जुड़ी रहे।"[4] पर फ़ीजी में हिंदी को लेकर एक विवाद अब भी बरकरार है– 'मानक हिंदी' और 'फ़ीजी हिंदी।'

फ़ीजी में लगभग सैंतालीस प्रतिशत भारतवंशी हैं, जो सामाजिक तौर पर आपस में हिंदी में ही बात करते हैं जिसे वे फ़ीजीबात कहते हैं। विश्व की लगभग सभी भाषाओं में मानकीकृत रूप के अतिरिक्त अन्य स्थानीय भाषाओं का पुट भी आता है। उदाहरण के तौर पर अंग्रेज़ी में रंग यानी कलर को दो तरह से लिखा जाता है– Color और Colour, अमरीका में Color और ब्रिटिश अंग्रेज़ी में Colour लिखा जाता है। यह तो रही लेखन की बात। उच्चारण में भी एक ही शब्द को स्थानीय पुट के कारण अलग–अलग तरह से बोला जाता है– Your Welcome-योअर वेलकम जबकि कुछ लोग इन्हीं शब्दों को कुछ इस तरह से बोलते हैं Yoo Wel-यो वेल। अंग्रेज़ी भाषा के इस तरह के लेखन और उच्चारण में भिन्नता होने से क्या यह भाषा मृत होने के कगार पर है? नहीं तो, फ़िर ज़रा सा स्थानीय पुट हिंदी की बिंदी को कैसे मिटा सकता है। इससे तो हिंदी को व्यापकता प्राप्त होगी।

फ़ीजी के प्रसिद्ध विद्वान डॉ मोहित प्रसाद ने गिरमिट का इतिहास और हिंदी के संबंध में कहा कि "कोई भाषा तब मरती है जब हम अपनी विरासत पर शर्म करने लगते हैं।"[5] भाषा बहता नीर है, वह जहाँ पानी जैसी रुकी और थमी, तो उसका सड़ना और मरना निश्चित है। फ़ीजी में पेशे से डॉक्टर और हिंदी कवि डॉ. बलराम बताते हैं कि वे घर में हिंदी में बात करते हैं जबकि घर से बाहर फ़ीजीबात में ही वार्तालाप किया जाता है। इसके पीछे वे

तर्क देते हैं कि जब गिरमिटिया भारत से लाए गए थे, उस समय भारत में प्रचलित हिंदी का न यह रूप था, और न ही स्थान। ले जाए गए लोगों के अलग–अलग क्षेत्र थे जिसके चलते उनकी अपनी भाषा और अपनी बोली थी। 'फ़ीजी हिंदी' या फ़ीजीबात– हिंदी, भोजपुरी, अवधी और अंग्रेज़ी का मिश्रित रूप है, जिसमें हिंदी शब्दों की प्रधानता है। डॉ. विवेकानद शर्मा कहते हैं कि प्रथम प्रवासी भारतीय श्रमिक के फ़ीजी में अपना पग रखते ही हिंदी का प्रवेश यहाँ हो गया था। क्योंकि अधिकांश श्रमिक भारतवर्ष के हिंदी भाषी प्रदेशों से यहाँ आए थे। अतः यहाँ उन्हीं की भाषा स्थापित हुई और इस तरह हिंदी भारतीयों की प्रमुख भाषा बनी। आज प्राथमिक पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालय तक पढ़ाई जाने वाली हिंदी फ़ीजी की एक महत्वपूर्ण भाषा है तथा समाचार माध्यमों में भी इसका महत्वपूर्ण योगदान देखा जा सकता है।"[6]

फ़ीजी में अन्य भाषाओं के अलावा हिंदी के दो समानंतर रूप चल रहे हैं, जो कुछ फ़ीजीवासियों को परेशान कर रहे हैं। हिंदी का एक मानक रूप है और दूसरा 'फ़ीजी हिंदी' या 'फ़ीजीबात'। कुछ युवा 'फ़ीजी हिंदी' में लिखे साहित्य को हिंदी में लिखा हुआ नहीं मानते। यों फ़ीजी में हिंदी लेखन के जोगिंदर सिंह 'कँवल' को भीष्म पितामह या फ़ीजी का प्रेमचंद कहा जाता है और कमला प्रसाद मिश्र को राष्ट्रकवि का दर्जा हासिल है। फ़ीजी निवासी 'सुभाषिनी कुमार के अनुसार "मैं कहानी 'फ़ीजी हिंदी' में लिखती हूँ और कविता और निबंध 'मानक हिंदी' में कहती हूँ।"[7]

फ़ीजी के कुछ लोग हिंदी के प्रति सचेत करते हुए प्रतीत होते हैं कि इससे फ़ीजी में हिंदी दयनीय अवस्था में पहुँच जाएगी और संभवतः लुप्त हो जाएगी। मानक हिंदी को ही वे हिंदी मानते हैं। शायद वे अपने अस्तित्व को लुप्त होने के कगार पर पा रहे हैं। संभवतः वे भाषा की प्रकृति को नहीं समझ पा रहे। भाषा में समय के साथ कुछ नए शब्द जुड़ते हैं और कुछ छूट जाते हैं किंतु इससे भाषा मरती नहीं है। उसके कई अन्य कारण उत्तरदाई होते हैं। इसलिए 'मानक हिंदी' और 'फ़ीजीबात' को लेकर होते दुराग्रहों से बचना जरूरी है। 'फ़ीजीबात' के बारे में बताते हुए विमलेश कांति वर्मा कहते हैं कि

"जो स्थिति फ़ीजी में 'फ़ीजीबात' की है, वही स्थिति सरनामी, नैताली इत्यादि हिंदी की अन्य भाषिक शैलियों की है। ये सभी हिंदी के विदेशी शैली रूप अपने देश की सृजनात्मक अभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ हैं। प्रो. सुब्रमणि 'फ़ीजी हिंदी' को सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए अधिक समर्थ समझते हैं तो जीत नराईन का मानना है कि सरनामी सूरीनामवासियों के लिए सहज अभिव्यक्ति के लिए अधिक उपयुक्त है। दक्षिण अफ्रीका के प्रो. रामभजन सीताराम, जो देश के प्रतिष्ठित विद्वान हैं, वे नेताली को एक दमदार भाषा के रूप में देखते हैं। हिंदी के इन भाषिक रूपों पर विदेश के अनेक भाषा वैज्ञानिक कार्य कर रहे हैं, किंतु भारतीयों के मध्य दिन–प्रतिदिन बोलचाल की भाषा होते हुए भी यह साहित्य की भाषा नहीं बन पा रही है। जहाँ–तक मुझे पता है, प्रो. सुब्रमणि द्वारा 'फ़ीजीबात' में लिखित उपन्यास 'डउका पुरान' अकेली प्रधान साहित्यिक रचना है, जो पूर्ण कृति के रूप में उभरकर आई है। जिन अन्य कवियों ने 'फ़ीजीबात' को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है, वे बहुत लोकप्रिय हुए हैं; किंतु प्रश्रय और प्रोत्साहन के अभाव में इसमें अधिक रचनाएँ नहीं लिखी जा रहीं। आवश्यकता है इन शैलियों को पुष्ट करने की; जिससे इन देशों के साहित्यकार हिंदी की उत्तम रचनाएँ दे सकें। इन भाषा–रूपों की अवहेलना हिंदी के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। यह जरूरी है कि रेडियो और टेलीविजन पर इनमें साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रसारित हों, इसमें पत्रिकाओं का प्रकाशन हो। 'मानक हिंदी' का

अपना महत्व है। हिंदी का पाठ्यक्रम 'मानक हिंदी' का होगा, शिक्षा का माध्यम मानक हिंदी ही रहेगा, पर बोलचाल की हिंदी के स्वतः विकसित सहज स्वरूप को बने रहने देने में ही हिंदी का हित निहित है और अच्छी साहित्यिक रचनाओं के लिए वही उर्वर भाषा भी है। अपनी भाषा हिंदी के प्रति निष्ठा, उसे प्रतिष्ठित करने की उत्कट लालसा भी सर्वत्र दिखेगी। भाषा द्वैत या हिंदी के विविध भाषा रूपों को लेकर जो विवाद भारतीयों में आपस में पनप रहा है उसके प्रति भी बड़े लेखक सजग हैं। उन्हें लगता है कि यह आपसी विवाद हिंदी को ही कहीं लेकर न डूबे।"[8]

भाषा के व्यावहारिक पक्ष को देखा जाए तो घर में कोई भी मानकीकृत भाषा का प्रयोग नहीं करता। सामाजिक राह–व्यवहार में मनुष्य मुखसुख की भाषा का प्रयोग करता है, जबकि इसके विपरीत साहित्य सृजन में वह मानकीकृत रूप ही इस्तेमाल करता है। किंतु कोई भी व्यक्ति उसी भाषा में अच्छा और भावपूर्ण साहित्य रच सकता है, जो उसके हृदय के करीब हो।

प्रो. मनीषा रामरक्खा बताती हैं कि फ़ीजी में हिंदी के दो समांतर रूप चलते हैं, एक 'फ़ीजी हिंदी' और दूसरी 'मानक हिंदी'। 'फ़ीजी हिंदी' को बोलचाल की भाषा के रूप में देखा जाता है, जिसमें हमें अवधी के शब्द भी देखने को मिलते हैं। इस भाषा का प्रयोग भारतीय और गैर–भारतीय, दोनों वर्गों द्वारा संप्रेषण के लिए किया जाता है। इसके अतिरिक्त इस भाषा में साहित्य भी लिखा जाता है। दूसरी 'मानक हिंदी' जो मुख्यत; प्रशासनिक कार्यों के अतिरिक्त साहित्य, अध्ययन और अध्यापन में प्रयोग की जाती है। प्रवासी भारतियों की हिंदी की विशेषता के बारे में बताते हुए डॉ. वर्मा जी बताते हैं कि

"यहाँ एक बात समझना आवश्यक है कि प्रथम कोटि के देशों में, जिनमें मॉरिशस, सूरीनाम, फ़ीजी और दक्षिण अफ्रीका आदि देशों की गणना है, वहाँ के प्रवासी भारतीयों की हिंदी भारत की परिनिष्ठित खड़ी बोली हिंदी नहीं है। वहाँ की हिंदी भोजपुरी मिश्रित अवधी है जिसमें स्थानीय भाषाओं के शब्द मिले हुए हैं और जो प्रवासी भारतीयों के मध्य जहाजी भाइयों की भाषा के रूप में विकसित हुई है, जिसका उन्होंने नामकरण भी अलग–अलग रूपों में किया हुआ है। फ़ीजी में वह 'फ़ीजीबात', 'सूरीनाम' में वह सरनामी और दक्षिण अफ्रीका में वह नेताली के नाम से जानी जाती है। यहीं हिंदी उनकी अपनी हिंदी है, जिसका वह दैनिक बोलचाल में प्रयोग करते हैं।....फ़ीजी में मानस को 'रामायण महारानी' कहते थे, तो सूरीनाम को उन्होंने 'सिरीराम' देश तथा मॉरिशस को 'मरीच देश' नाम देकर राम और रामायण के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित किया है। मानस की भाषा अवधी है इसलिए कितने ही हिंदीतर भाषियों ने तो रामायण पढ़ सकने के लिए हिंदी–अवधी सीखी थी। यही कारण है कि सूरीनाम और फ़ीजी जैसे दो देशों की इतनी भौगोलिक दूरी होते हुए भी मानस की चौपाईयाँ गाते–गाते सभी भारतीयों की प्रतिदिन के प्रयोग की भाषा अवधीमयी हिंदी बन गई।"[9]

फ़ीजी में हिंदी और 'फ़ीजी हिंदी' देवनागरी और रोमन लिपि में लिखी जाती है। अधिकतर युवा अब हिंदी को रोमन में ही लिखते हैं, जो दुखद पहलू है क्योंकि लंदनवासी प्रसिद्ध साहित्यकार शैल अग्रवाल मानती हैं कि किसी भी भाषा की लिपि का लोप भाषा के अस्तित्व के लिए घातक साबित होता है। फ़ीजी में हिंदी की घोर उठा–पटक स्थिति है। यहाँ केवल हिंदी भाषा को बचाए रखने की जुगत ही नहीं है वरन् भारतवंशियों को भी अपने अस्तित्व और पहचान को बचाए रखने की जरूरत है।

सुभाषिनी कुमार कहती हैं कि "फ़ीजी में हिंदी का पठन–पाठन चिंताजनक है तथा हिंदी साहित्य सृजन की स्थिति संतोषजनक नहीं दिख रही है।.... फ़ीजी में हिंदी न केवल अभिव्यक्ति का माध्यम है बल्कि प्रवासी

भारतीयों की अस्मिता का प्रतीक है जिसको बरकरार रखना ज़रूरी है।"[10]

'फ़ीजीबात' में कई कवियों और लेखकों की रचनाओं का प्रकाशन हो रहा है जिसे फ़ीजी ही नहीं वरन् भारत और अन्य देशों में भी जाना जाता है जिसमें प्रो. सुब्रमनी की 'फ़ीजी माँ' उल्लेखनीय हैं। फ़ीजी के 'मानक हिंदी' प्रेमियों ने इसका विरोध करते हुए इस भाषा में लिखी सभी रचनाओं को अशुद्ध और अव्याकरणिक बताया। साथ ही इसे हिंदी का विकृत रूप कहा। संभवतः यह वर्ग यह नहीं समझ पा रहा कि 'फ़ीजीबात' कोई अलग भाषा नहीं है, वरन् यह गिरमिटियों द्वारा विकसित की गई हिंदी की वह शैली है जिसे वे प्रतिदिन इस्तेमाल करते हैं। साहित्य कुंज ई पत्रिका में मातृभाषा की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए डॉ. वर्मा का कथन है कि

"प्रगति का नैसर्गिक स्वरूप भी यही है जब व्यक्ति की जड़ जम जाती है, जब वह आरोपित माध्यमों में रुचि नहीं लेता, वह सृजनात्मक रचना अपनी मातृभाषा में ही करना चाहता है और यही स्थिति फ़ीजी के सृजनात्मक लेखन में भी पनप रही है। फ़ीजी के साहित्य का मध्यकाल वस्तुतः एक संक्रमण काल है इसलिए वहाँ भाषा द्वैत की स्थिति दिखाई पड़ती है जो उन लोगों के कारण उत्पन्न हुई जो गिरमिट प्रथा समाप्त होने के वर्षों बाद फ़ीजी पहुँचे और हिंदी भाषी थे या जो भारत में रहकर पढ़े और हिंदी पर उनका अच्छा अधिकार हो गया। उनके लिए 'फ़ीजी हिंदी' में लिखना संभव ही नहीं था इसलिए वे 'मानक हिंदी' का पक्ष लेते रहे।"[11] हिंदी की लोकप्रियता और फ़ीजी के अखबारों में उसके प्रयुक्त रूप के संबंध में डॉ. विमलेश कांति वर्मा जी ने भी अपना अभिमत प्रकट करते हुए कहते हैं कि

"मुझे आज भी स्मरण है कि फ़ीजी से प्रकाशित पत्र 'शांतिदूत' साप्ताहिक में उसके संपादक महेंद्र चंद्र शर्मा 'विनोद', 'तिरलोक तिवारी' के छद्मनाम से प्रति सप्ताह 'थोर हमरो भी तो सुनो' स्तंभ लिखते थे। यह स्तंभ भारतीयों के मध्य बड़ा लोकप्रिय था तथा सभी इसे बड़े चाव से पढ़ते थे; किंतु शुद्धतावादी हिंदी–समर्थकों से यह नहीं देखा गया और उन्होंने स्तंभ का इतना विरोध किया कि स्तंभ के बंद होने की नौबत आ गई। स्तंभ बंद किए जाने की बात सुनकर तत्कालीन उपप्रधानमंत्री माननीय पंडित हरीश शर्मा, जो प्रतिष्ठित बैरिस्टर भी थे, उन्होंने 'पाठकों के पत्र' नामक स्तंभ में इस संबंध में लिखते हुए कहा, "अबकी एक बात हम बताय देई जो 'थोराहमरो भी तो सुनो' बंद भय तो तुम्हरे पेपर के बिक्किरी कमती होय जाइ। अब तुम्हीं सोचो कि तिवारी के लेख से 'शांतिदूत' पढ़ने वाले मजा लूटे हैं, ओह में फायदा है कि लेख बंद कर देव और बिक्किरी कमती होय जाइ ओह में।"[12]

फ़ीजी की कविताएँ तत्कालीन हिंदी स्थिति को समझने में मददगार होंगी।

एक कविता 'फ़ीजीबात' में, जिसमें फ़ीजी पहुँचने पर स्वर्णिम स्वप्न टूट जाते हैं। इसी पीड़ा को बताती ये पंक्तियाँ–

सब सुख खान सी एस. आर. कोठरिया।
छह फुट चौड़ी, आठ फुट लंबी,
उसी में धरी है कमाने की कुदरिया।
उसी में सिल और उसी में चूल्हा,
उसी में धरी है जलाने की लकरिया।
उसी में महल उसी में दुमहला,
उसी में बनी है सोने की अटरिया॥[13]

दूसरी कविता 'गिरमिट गाथा' डॉ. बलराम पंडित की है, जो पेशे से चिकित्सक हैं।

गिरमिट गाथा
थर–थर मंथर अविरल चंचल
कल–कल रेवा धारा निर्मल,
गिरमिटियों के गौरव गाथा का
साक्षी रहा दिनकर भी पल–पल।

पीड़ा और पुरुषार्थ की गाथा,

स्वेद, रक्त, रज–भाल की कथा।

भार्या, बंधु, संतान विरह व्यथा,
प्रलय में निर्माण की कथा।
सुनो–सुनो गिरमिट संसार कथा।

थी सोन–चिड़ैया देश एक
कौशल कुशल से भरी परी,
पर जड़ता की जंजीरों ने
जकड़ा समाज को घड़ी–घड़ी।

बिखड़े रत्न चुने शत्रुओं ने
और परतंत्रता गले पड़ी।
आक्रांताओं के अत्याचार
कुछ प्रकृति की भी पड़ी मार,
फूट–लूट संग आई आकाल
जनमानस का जर्जर हाल।

गोरे देख सुनहरा मौका
लिए प्रलोभन घर आ पहुँचा,
जीवन होगा बेहतर वहाँ
संकट का न कोई नामोनिशां
जो रट छोड़ो तुम अपना गांव"।

कुछ बहके, कुछ बहकाए गए–2
कुछ छल दंड से फुसलाए गए।
शत–शत लश्कर भर लोग चले,
माँ सी माटी तट छोड़ चले।

था नहीं पता कहाँ –किधर चले,
नयनों में सुनहरे स्वप्न लिए।
नीचे सागर, ऊपर आसमां
और कुछ न दिखे चहुँ ओर वहाँ।

ऊपर तीक्ष्ण तेज सूर्य का
इंद्र घुमड़–घुमड़ कर आते थे,
रात अँधेरी काली डायन,
हिया धड़क–धड़क रह जाते थे।
महीनों बीते वारिधि ऊपर
किलकारी भरे कुछ नए प्राण।
कुछ टूट गए, कई लूट गए,
न तट तक जीवन पा सका त्राण।

जो अधमरे से पहुंचे नव धरती
देख एक दूजे को आत्मा तड़पी।
आह! स्वप्न मृग मरीचिका निकली।

जब तक हुआ इस छल का भान
सामने था टापू अनजान।
गोरों के कोड़े सहते थे,
चुपचाप परिश्रम करते थे।
निशदिन यूँ हीं रोते बिलखते
निज गौरव को लूटते देखते थे।

यूँ हीं बरसों के बरस बीते
धर धीर कर जोड़ देख लिया,
अब रण और पौरुष की बारी थी।

लक्ष्य मात्र निज जीवन नहीं
खुले भविष्य की तैयारी थी।

खून पसीना एक कर
दिन–रात वे सद्कर्म किए।
चहुँ ओर सिर्फ विद्यालय नहीं
मंदिर मस्जिद गुरुद्वारे बने।

जो था तरुण वह व्यस्क हुआ
नव ज्ञान कौशल से लैश हुआ
उद्देश्य बड़ा कुछ और हुआ।

व्यवसाय हो, नेतृत्व हो
चिकित्सा या अन्य कोई पेशा,
एक साझा भविष्य बनाने को
नव रज को कण–कण सींचा।
घनघोर अँधेरी रात में
उजियारा लाने की कथा।
शांति शौर्य सामर्थ्य की
बिखेरती अनुपम छटा,
निज रश्मि से है दीप्तिमान
अपनी सुनहरी गिरमिट कथा।

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि 'फ़ीजी हिंदी' या 'फ़ीजीबात' फ़ीजीवासियों की

मूल भाषा है, जिसे गिरमिटयों ने अपने जहाजी भाइयों के साथ मिलकर रचा था जबकि 'मानक हिंदी' के लिए अध्ययन आवश्यक है। शिक्षा मंत्रालय द्वारा स्कूलों में हिंदी पाठ्यक्रम के निर्धारण के चलते हिंदी की व्यापकता की कामना की जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. फिजी में बसे भारतीयों का जीवन संघर्ष और सांस्कृतिक पहचान है 'अधूरा सपना'– हस्तक्षेप, 12, जुलाई, 2014
2. डॉ. विमलेश कांति वर्मा, सुश्री सुभाषिनी कुमार से डॉ विमलेश कांति वर्मा की बातचीत, भाषा, अंक सितंबर–अक्तूबर 2020, पृष्ठ 77
3. डॉ. विमलेश कांति वर्मा, प्रवासी भारतीय समाज, भाषा, साहित्य और संस्कृति पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल– अंक अक्तूबर–दिसंबर 2019, पाठ 4, पृष्ठ 11
4. डॉ. विवेकानंद शर्मा, डी., 2018, फ़ीजी माँ : एक बुक ऑफ थाउजैंड रीडिंग्स, दिसंबर, 11(1)
5. डॉ. विवेकानंद शर्मा, विवेकानंद, फ़ीजी में हिंदी–भाषा, साहित्य एवं संस्कृति–उद्भव और विकास, 16 सितंबर 2006
6. डॉ. विमलेश कांति वर्मा, सुश्री सुभाषिनी कुमार से डॉ विमलेश कांति वर्मा की बातचीत, भाषा, अंक सितंबर–अक्तूबर 2020, पृष्ठ 79
7. डॉ. विमलेश कांति वर्मा, प्रवासी भारतीय समाज, भाषा, साहित्य और संस्कृति, पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल– अंक अक्तूबर–दिसंबर– 2019, पाठ–4, पृष्ठ 13–14
8. डॉ. विमलेश कांति वर्मा, प्रवासी भारतीय समाज, भाषा, साहित्य और संस्कृति, पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल– अंक अक्तूबर–दिसंबर– 2019, पाठ–4, पृष्ठ 11–12
9. डॉ. विमलेश कांति वर्मा, सुश्री सुभाषिनी कुमार से डॉ. विमलेशकांति वर्मा की बातचीत, भाषा, अंक सितंबर–अक्तूबर 2020, पृष्ठ 77
10. डॉ. विमलेश कांति वर्मा, फ़ीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, साहित्यकुंज–ई पत्रिका
11. देखें, 'शांतिदूत' साप्ताहिक, फ़ीजी टाइम्स, सूवा, फ़ीजी, 3 नवंबर, 2019)
12. डॉ. विमलेश कांति वर्मा, फ़ीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, साहित्यकुंज–ई पत्रिका

❑❑❑

फ़ीजी में हिंदी की अलख जगाते पत्र–पत्रिकाएँ और साहित्यकार

अख्तर आलम

वैश्विक परिदृश्य में हिंदी की पत्र–पत्रिकाओं की स्थिति पर नज़र डालने के बाद हिंदी की महत्ता को बखूबी समझा जा सकता है। भारत ही नहीं दुनियाभर में हिंदी का प्रभाव बढ़ रहा है। हिंदी भाषा और हिंदी की पत्र–पत्रिकाओं का निरंतर विकास हो रहा है। पिछले दशक में विश्वभर में हिंदी बोलने वालों की संख्या में नौ करोड़ की बढ़ोतरी हुई है। जबकि भारत में हिंदी भाषियों की संख्या में दस करोड़ का इजाफा हुआ है। हाल ही में प्रकाशित किताब 'हिंदी का विश्व संदर्भ' के लेखक मुंबई विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय बताते हैं कि भारत के अलावा दुनिया में ऐसे कई देश हैं, जहाँ हिंदी जानने वालों की संख्या पचास फीसदी तक है। वहीं हिंदी प्रेमी और साहित्यकारों के प्रेम ने हिंदी भाषा को दुनिया के अधिकांश देशों तक पहुँचा दिया है। इस आलेख में भारत से बहुत दूर एक छोटे से देश 'फ़ीजी' में हिंदी की पत्र–पत्रिकाएँ और साहित्यकारों के योगदान पर शोधपरक विमर्श है। आस्ट्रेलिया महाद्वीप का एक छोटा सा देश 'फ़ीजी' भारत के बाद संसार का दूसरा ऐसा देश है जहाँ हिंदी भाषी लोगों का बाहुल्य है और इस कारण यहाँ हिंदी की पत्र–पत्रिकाएँ लोकप्रिय भी हैं और इसका दिन–प्रतिदिन विस्तार भी हो रहा है।

वैश्वीकरण में हिंदी का महत्व

वैश्वीकरण के इस युग में विश्व के समस्त देश एकीकृत होकर एक विश्वग्राम में बदल चुके हैं। विश्वग्राम शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद के मंडल, एक सूक्त 114 में मिलता है जो अपने आप में अत्यंत व्यापक अर्थ लिए हुए है और जो अत्यंत सार्थक भी है। इसके अर्थ में सर्वथा विश्वकल्याण की भावना, जिसमें हार्दिकता, निश्छलता, संवेदन–शीलता, परोपकारिता, सेवाभाव और अतिशय उदार दृष्टिकोण समाहित है और इस विश्वग्राम से तात्पर्य–संसार के समस्त प्राणियों का परस्पर सौहार्दपूर्ण अनत तथा विकसित जीवन व्यतीत करना, जिसमें न तो शोषण की समस्या हो और ना कोई भेदभाव की संभावना, अर्थात् इस भव्य विश्वग्राम में सभी लोगों का एक दूसरे के प्रति परम हितैषी होने का विचार व्याप्त हैं। हालाँकि सूचना प्रौद्योगिकी ने वैश्वीकरण को एक अलग आयाम प्रदान किया है जिसमें न केवल वस्तुओं के उत्पादन–वितरण और विपणन का मार्ग विस्तृत हुआ है, बल्कि भाषा के प्रयोग में भी विविधता के दर्शन हो रहे हैं। इसलिए यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वैश्वीकरण ने भी भारत और भारत के बाहर हिंदी भाषा की पत्र–पत्रिकाओं के विकास का मार्ग प्रशस्त किया है, जिसके फलस्वरूप हिंदी भाषा का वैश्विक विस्तार हो रहा है। आज हिंदी एक देशीय नहीं अपितु बहुदेशीय भाषा का रूप ले चुकी है। इस समय भारत से बाहर सौ से अधिक संस्थानों में हिंदी का पठन–पाठन इस बात का द्योतक है कि हिंदी मात्र साहित्य की चीज नहीं वरन् वह हृदयों को जोड़ने वाली ऊर्जा भी है और प्रेम की गंगा भी।

फ़ीजी में हिंदी की पत्र–पत्रिकाएँ

प्रशांत महासागर में स्थित एक छोटे से देश फ़ीजी में भारतीय श्रमिक, कुली के रूप में लाए गए थे। वे आज भी अपनी लगन, निष्ठा और ईमानदारी से हिंदी की अलख जगाए हुए हैं। यह संसार में दूसरा ऐसा विदेशी राष्ट्र है जहाँ हिंदी का बाहुल्य है। 1920 में फ़ीजी में

गिरमिट प्रथा समाप्त होने तक एक बड़ी संख्या में भारतीय श्रमिक फ़ीजी पहुँच चुके थे। प्रथा समाप्त होते ही वहाँ के सभी भारतीय मजदूर अपनी मर्जी से जीने के लिए स्वतंत्र हो गए और अधिकांश भारतीयों मजदूरों ने भारत वापस लौटने के बदले फ़ीजी को ही अपना स्थायी निवास बना लिया। 1979 में शर्तों के तहत आए भारतीय लोगों ने अपने फ़ीजी आगमन के सौ वर्ष पूरे किए और इस शताब्दी वर्ष को विजय वर्ष के रूप में मनाया। फ़ीजी में बसे भारतीय मजदूरों के लिए 1920 से 1980 तक कालखंड सिर्फ फ़ीजी के राजनीतिक जीवन के लिए ही नहीं बल्कि हिंदी भाषा और साहित्य के लिए भी महत्वपूर्ण था। लगभग इसी कालखंड में भारतीय लोगों ने संगठित होकर रहना शुरू किया और पत्रकारिता के महत्व को समझते हुए उन्होंने हिंदी भाषा में पत्र–पत्रिकाएँ निकालनी भी शुरू कर दी।

फ़ीजी में सर्वप्रथम सन् 1913 में पं. शिवदत्त शर्मा की देखरेख में डॉ. मणिलाल द्वारा संपादित पत्र 'सेटलर' का हिंदी अनुवाद साइक्लोस्टाइल रूप में प्रकाशित हुआ था। इसका लोगों ने भरपूर स्वागत किया। फिर सन् 1923 में 'फ़ीजी समाचार' का प्रकाशन हुआ। यह साप्ताहिक पत्र था इसके प्रथम संपादक थे बाबूराम सिंह और अंतिम चंद्रदेव सिंह थे। यह पत्र कुछ वर्षों तक प्रकाशित होकर बंद हो गया। इसी समय 'भारत पुत्र', 'बुद्धि' तथा 'बुद्धिवाणी' आदि पत्रों का प्रकाशन हुआ जो अधिक दिन न चल सका और शीघ्र ही इतिहास की एक घटना बनकर रह गया। सन् 1930–40 के मध्य दो मासिक पत्र और निकले, एक पं. श्री कृष्ण शर्मा के संपादन में 'वैदिक संदेश' तथा दूसरा 'सनातन धर्म'। किंतु दोनों पत्र पारस्परिक आलोचना प्रत्यालोचना के शिकार हुए और अकाल ही काल कवलित हो गए।

सन् 1935 में 'शांतिदूत' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। पं. गुरुदयाल शर्मा इसके संस्थापक संपादक थे। आज भी यह फ़ीजी का सर्वाधिक प्रसार वाला हिंदी पत्र है तथा फ़ीजी टाइम्स समूह प्रकाशन से संबंधित है। इसमें साहित्यिक, राजनीतिक विषयों पर भरपूर सामग्री रहती है। इसका प्रकाशन स्तर भारतीय पत्रों के समान ही है। सन् 1940 के आस–पास फ़ीजी में कई हिंदी पत्र उदित हुए, जैसे पं. वी. डी. लक्ष्मण के संपादन में 'किसान', अखिल फ़ीजी कृषक महासंघ के तत्वावधान में 'दीनबंधु', ज्ञानीदास के संपादन में 'ज्ञान' और 'तारा', आर्य पुस्तकालय के अंतर्गत 'पुस्तकालय', काशीराम कुमुद के संपादन में 'प्रवासिनी' तथा श्रीराम खेलावन के संपादन में 'प्रकाश' आदि का प्रकाशन हुआ। इन सभी पत्रों में हिंदी लेखन और साहित्य के अलावा फ़ीजी में प्रवासी भारतीयों की दशा का भी चित्रण होता था। ये सभी पत्र अधिक दिनों तक प्रकाशित नहीं हो सके और एक–एक कर सभी बंद हो गए। फिर भी में हिंदी पत्रकारिता में इनका योगदान सराहनीय रहा। इसी प्रकार 'जंजाल', 'सनातन प्रकाश' और 'मज़दूर' पत्र भी हैं जो दो चार अंकों के बाद अपने अस्तित्व की रक्षा न कर सके।

इसके बाद पं. राघवानंद शर्मा के कुशल संपादन में 'जागृति' पत्र का प्रकाशन हुआ जिसने काफ़ी लोकप्रियता प्राप्त की। पहले यह पत्र अर्द्ध साप्ताहिक था। कालांतर में यह साप्ताहिक हो गया। इसमें किसानों से संबंधित समाचार अधिक रहते थे। कुछ वर्ष पहले ही इसका प्रकाशन बंद हुआ है। सन् 1953 में 'आवाज' नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकला जिसमें राजनीतिक चेतना के स्वर अधिक थे। श्री ज्ञानदास के संपादन में 'झंकार' साप्ताहिक का प्रकाशन भी हुआ। इसका प्रकाशन बड़े उत्साह के साथ हुआ। इसमें सिनेमा के समाचारों का बाहुल्य होने से इसे शीघ्र ही लोकप्रियता मिली, पर सन् 1958 में इसका प्रकाशन बंद हो गया।

सन् 1960 में 'जय फ़ीजी' पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसके संपादक पं. कमला प्रसाद मिश्र थे। यह फ़ीजी का अति

लोकप्रिय पत्र था। इसका मुद्रण फोटो सेट विधि से होता है। इस पत्र के संपादक पं. कमला प्रसाद मिश्र की हिंदी सेवा और उनका फ़ीजी में हिंदी पत्रकारिता में योगदान के आधार पर भारत सरकार ने उन्हें 'विदेशी हिंदी सेवी' पुरस्कार से भी पुरष्कृत किया है। स्व. नंदकिशोर के संपादन में 'फ़ीजी संदेश' का भी प्रकाशन हुआ। इनमें स्थानीय लेखकों को बहुत प्रोत्साहन मिलता था फिर भी ये अधिक लोकप्रिय नहीं हुए और बंद हो गए। सन् 1974 में पं. विवेकानंद शर्मा के कुशल संपादन में 'सनातन संदेश' का प्रकाशन हुआ। यह मासिक पत्र था। यह फ़ीजी की सनातन धर्म सभा का प्रमुख पत्र था। शर्मा जी के अथक प्रयासों के बाद भी इसका प्रकाशन अधिक वर्षों तक न हो सका। इसके अतिरिक्त 1926 में 'राजदूत' पत्र का राजकीय प्रकाशन हुआ जिसमें राजकीय बातों को ही प्रश्रय दिया जाता था। इसी प्रकार 'विजय' के भी कुछ अंक निकले, पर विजय भी अपनी रक्षा न कर सका और समय के हाथों पराजय को प्राप्त हुआ। फ़ीजी के सूचना मंत्रालय द्वारा 'फ़ीजी वृत्तांत और शंख' के भी प्रकाशन हुए जिनमें वहाँ के जन–जीवन की चर्चाएँ प्रधान होती थी। इस प्रकार विश्व हिंदी पत्रकारिता में फ़ीजी के हिंदी पत्र–पत्रिकाओं की अनवरत यात्रा चली आ रही है।

भारत के राष्ट्रपति द्वारा प्रदत्त महापंडित राहुल सांकृत्यायन सम्मान से सम्मानित भाषा वैज्ञानिक एवं वरिष्ठ प्रवासी साहित्य विशेषज्ञ डॉ. विमलेश कांति वर्मा ने अपने एक आलेख में बताया है कि फ़ीजी में 'जागृति', फ़ीजी समाचार, 'जय फ़ीजी', 'वृद्धि', 'वृद्धिवाणी' आदि अनेक हिंदी समाचार पत्र निकले। यहाँ तक कि एक अंग्रेजी कंपनी 'फ़ीजी टाइम्स' ने फ़ीजी में भारतीयों की बड़ी संख्या देखकर फ़ीजी टाइम्स के हिंदी संस्करण निकालने की बात सोची और 1935 में 'शांति दूत' साप्ताहिक पत्र पं. गुरुदयाल शर्मा के संपादन में निकालना प्रारंभ किया। अनेक मंदिरों, गुरुद्वारों और मस्जिदों का निर्माण भी हुआ जो भारतीयों के लिए सांस्कृतिक केंद्र की भूमिका निभाते थे। अनेक रामायण मंडलियाँ बनीं जिनमें प्रति सप्ताह रामायण गायन तो होता ही था साथ ही भारतीय आपस में मिल जुलकर बैठते, साहित्यिक गोष्ठियाँ होतीं, जीवन की विविध समस्याओं पर विचार होता तो भारतीय जीवन को सुखद बनाने के उपाय सोचते। श्री वर्मा ने आगे लिखा है कि 1954 में ही फ़ीजी ब्रॉडकास्टिंग कार्पोरेशन की स्थापना हुई और इस प्रकार पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन तथा रेडियो प्रसारण की सुविधा ने लेखकों और कवियों को लेखन के लिए प्रोत्साहित किया। एक बड़े स्तर पर फ़ीजी के विभिन्न विद्यालयों में हिंदी भाषा और साहित्य का शिक्षण भी प्रारंभ हुआ और हिंदी को फ़ीजी की प्रधान भाषा के रूप में सरकारी मान्यता भी मिली। इस काल का साहित्यिक फलक बहुत विशाल है। अनेक नए कवि साहित्य क्षितिज पर उभरे। बदली हुई परिस्थितियों ने भारतीयों के मन में जो आशा का नव संचार किया उससे अनेक नई और अच्छी रचनाएँ सामने आईं। हिंदी पत्रिकाओं में उनका प्रकाशन हुआ और वे देश के कोने–कोने तक पहुँचीं। गिरमिट जीवन अभी भी साहित्य की मूल संवेदना बना रहा किंतु अनेक नए विषयों पर भी कवियों ने लिखना जारी रखा।

फ़ीजी में हिंदी के प्रमुख साहित्यकार

वैसे तो कई हिंदी साहित्यकारों का जन्म फ़ीजी में ही हुआ, वहीं कुछ अध्ययन–अध्यापन के लिए फ़ीजी भी गए। पं. गुरुदयाल शर्मा फ़ीजी में जन्में साहित्यकार एवं संपादक थे जिन्होंने 1932–33 में 'वृद्धिवाणी' का संपादन किया। 1935 में उन्होंने शांतिदूत साप्ताहिक की स्थापना कर हिंदी भाषा को एक नया आयाम दिया। श्री शर्मा फ़ीजी की अनेक साहित्यिक और सामाजिक संस्थाओं से जुड़े

थे, इतना ही नहीं वे फ़ीजी रेडियो के हिंदी प्रसारण में भी अपना योगदान देते रहते थे।

चंद्रदेव सिंह का जन्म भी फ़ीजी में ही हुआ था, वे 'शांति दूत' में प्रूफ़ रीडर से संपादक पद पर पहुँचे थे। अपने स्वाध्याय के बल पर उन्होंने अपना ज्ञान अर्जित किया था। श्री सिंह को हिंदी, अंग्रेजी के साथ–साथ वहाँ की भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। चंद्रदेव सिंह ने 'लघु जीवन' नाम से एक कविता भी लिखी है।

जोगेंद्र सिंह कमल फ़ीजी के डी.ए.वी. कॉलेज में अध्यापक के साथ–साथ एक साहित्यकार भी थी। हालाँकि उन्होंने अपनी शिक्षा अर्थशास्त्र में पूरी की, लेकिन कमल जी की गिनती फ़ीजी में हिंदी के रचनाकार के रूप में होती थी। कहानी लेखन में इन्हें महारत हासिल थी, उन्होंने 'करवट', 'सबेरा' 'धरती मेरी माता' नाम से तीन प्रमुख उपन्यासों की रचना की। 'सबेरा', गिरमिटिया मजदूर के रूप में फ़ीजी गए उन भारतीयों की संपर्क गाथा का विवरण है जिसमें भेदभाव, छुआछूत, जाति–पाति से जुड़े सारे अलगाव के कारणों का फ़ीजी में परिस्थितिवश समाप्ति के विवरण हैं। कमल जी ने अपने उपन्यास के बारे में कहा है कि इस पुस्तक में बहुत सी बातें सच्ची हैं मैंने उन्हें केवल शब्दों के वस्त्र भर पहनाएँ हैं, यदि पाठकों को कोई दो चार स्थानों पर यदि बनावटी सा लगे तो वो समझ लें कि वहाँ कहानी को जारी रखने के लिए कल्पना के धागों से गाँठें बाँधी गई हैं।

भगवान सिंह भारतीय प्रशासनिक सेवा के एक अधिकारी थे। वह फ़ीजी में 1971 से लेकर 1976 तक भारतीय उच्चायुक्त में नियुक्त रहे थे। भगवान सिंह, साहित्यिक प्रतिभा के धनी थे। फ़ीजी से उनका विशेष मोह इसलिए भी रहा क्योंकि उनके दादा रामचंद्र सिंह गिरमिटिया के रूप में फ़ीजी गए थे और उनके पिता का जन्म भी फ़ीजी में ही हुआ था। उनके द्वारा लिखी गई पुस्तक 'फ़ीजी' देश और निवासी पुस्तकमाला के अंतर्गत राजपाल एंड संस दिल्ली से प्रकाशित है। इस पुस्तक में फ़ीजी की भौगोलिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक गतिविधियों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इन्होंने इसके अतिरिक्त रत्नगर्भा, भारतीय चाय, उजाले अपनी यादों के, जैसी कई पुस्तकों की रचना की है।

मंजू शर्मा हिंदी की एक अच्छी रचनाकार रही हैं। 1974 में वह फ़ीजी गईं। भारत एवं फ़ीजी की पत्र–पत्रिकाओं में उनकी कई रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। फ़ीजी पर लिखा उनका एक लेख धर्मयुग में भी प्रकाशित हुआ है। उन्होंने 'फ़ीजी का भविष्य' और 'आँसू धारा' नामक अच्छी कविताएँ भी लिखी हैं।

पं. राघवानंद शर्मा का जन्म 1947 में फ़ीजी में ही हुआ था। उन्होंने फ़ीजी में हिंदी की अनेक कविताएँ, कहानियाँ और लेखों की रचना की है। वे फ़ीजी के संगठनों, जैसे फ़ीजी हिंदी महापरिषद, सनातन धर्म सभा इत्यादि से भी जुड़े रहे थे। 1967 में प्रकाशित 'जागृत' नामक पत्र के वे संपादक भी रहे हैं।

विवेकानंद शर्मा, फ़ीजी के सांसद और राजनेता भी रह चुके हैं, पर उनमें एक साहित्यकार के गुण ज्यादा थे। हिंदी से उनका विशेष लगाव था। उनकी लिखी गई रचनाओं में 'प्रशांत लहरें' तथा 'जब मानवता कराह उठी' प्रमुख हैं। अपनी पुस्तक के बारे में उन्होंने लिखा है कि "फ़ीजी में भारतीय धर्म, सभ्यता और संस्कृतियों को यथा संभव समाहित करते हुए मैंने 'प्रशांत की लहरें' की रचना की है। वहीं उनकी दूसरी पुस्तक में संस्मरणात्मक लेख हैं जिसमें उन्होंने गिरमिटिया व्यवस्था के आधार पर फ़ीजी भेजे गए प्रवासी भारतीयों के संस्मरणों को लिखा है। इस पुस्तक के अध्ययन से फ़ीजी जाने वाले भारतीय लोगों की यातना भरी जिंदगी के दृश्य स्वतः ही उभरने लगते हैं। विवेकानंद शर्मा एक प्रतिष्ठित संपादक और पत्रकार भी

थे। उन्होंने 'सनातन संदेश' और 'फ़ीजी संदेश' का संपादन भी किया था। शर्मा जी ने नागपुर में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन के अपने वक्तव्य में कहा था कि, "इस सम्मेलन में हमें ऐसा लग रहा है जैसे मैं 88 हजार ऋषियों के सम्मुख बोल रहा हूँ। हम में बसे प्रवासी लोग अपनी संस्कृति और अपनी आत्मा के लिए भारत की ओर देखते हैं।"

डॉ. सुब्रमणी, फ़ीजी में अंग्रेजी के अध्यापक थे, लेकिन हिंदी उनका प्रिय विषय था। उन्होंने 1930 में फ़ीजी की सामाजिकता, संस्कृति और इतिहास को रेखांकित करने वाले लगभग छह सौ पृष्ठों का एक उपन्यास 'डउका पुराण' की रचना फ़ीजी हिंदी में की थी।

वर्तमान हिंदी लेखन एवं प्रचार–प्रसार

वर्तमान समय में हिंदी का लेखन एवं प्रचार–प्रसार प्रायः दो रूपों में हो रहा है। इसके अंतर्गत प्रथम वो देश आते हैं जहाँ के लोग हिंदी को एक विश्व भाषा के रूप में 'स्वांतः सुखाय' सीखते, पढ़ते और पढ़ाते हैं, जिनके अंतर्गत रूस, अमरीका, कनाडा, इंग्लैंड, जर्मनी, चीन, जापान, नार्वे, ऑस्ट्रेलिया आदि देश आते हैं। वहीं दूसरे के अंतर्गत वे देश आते हैं जहाँ भारत से जाने वाले प्रवासी भारतीय और भारतवंशी लोग बड़ी संख्या में निवास करते हैं और जिनकी मातृभाषा हिंदी रही है, जो आजकल फ़ीजी, मॉरिशस, गुयाना, सूरीनाम, ट्रिनीडाड–टुबैगो, बर्मा, थाइलैंड, नेपाल, श्रीलंका, मलेशिया, दक्षिणी अफ्रीका आदि देशों में रह रहे हैं। इन्हें हिंदी भाषा अपनी पैतृक–संपत्ति के रूप में मिली है। इन दोनों प्रकार के देशों में हिंदी का रचना संसार बहुत ही विपुल एवं समृद्ध है। वहीं अपनी भाषा में अपने आप को अभिव्यक्त करने और उसका प्रचार–प्रसार करने की इच्छा ने विदेशों में बसे इन दोनों प्रकार के भारतवंशी पत्रकारों और साहित्यकारों को हिंदी पत्र–पत्रिका प्रकाशित करने के लिए प्रेरित किया है। इसलिए फ़ीजी और मॉरिशस जैसे देशों में आज भी कई हिंदी पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है जो हिंदी भाषी भारतीयों और हिंदी प्रेमियों के बीच बहुत लोकप्रिय है।

❑❑❑

सुब्रमनी और उनका डउका पुरान

अरुण मिश्र

हिंदी में प्रवासी साहित्य लगातार समृद्ध हो रहा है। प्रो. सुब्रमनी रचित 'डउका पुरान' इस कड़ी की एक महत्वपूर्ण रचना है। प्रवासी साहित्य विशेषज्ञ डॉ. विमलेश कांति वर्मा के शब्दों में "भारत से हजारों मील दूर प्रवासी भारतीय किस प्रकार अपने भावों की अभिव्यक्ति करते है[1]", उसकी एक बानगी प्रस्तुत करता है– 'डउका पुरान'।

यह लेखक की अपने समय और समाज के प्रति निष्ठा है कि उन्होंने इस रचना को भाखा में लिखने का साहस किया। सुब्रमनी को यह लगता है कि अंग्रेजी भाषा में उनके चरित्र, स्थितियाँ और कथा शायद विश्वसनीयता का स्पर्श न कर सकें। आखिर अंग्रेजी का एक विख्यात प्रोफेसर जिसके खाते में अंग्रेजी की अनेक पुस्तकें है, वो एक बार इसे अंग्रेजी मे लिखने की सोचने के बाद अपना मन बदल देता है। आखिर क्यों?

डउका पुरान शुरू होता है बीसवीं शती में और लगभग चार दशकों की कथा कहता हैं। यह फ़ीजी गए गिरमिटियों के संघर्ष, सुख–दुख, जीवन के उतार–चढ़ाव और आशा–आकांक्षा का दस्तावेज़ है। कथा नायक, फ़ीजीलाल से अतीत की उस घटना के बारे में पूछने पर कि यहाँ कैसे आए सुनिए वह क्या कहता है– "बाबू बड़ा दुख से आईन। रोवत, गावत, हिलत, डोलत"।[2] और जब कोई इन डउकन (गिरमिटियों) के इतिहास में रुचि प्रकट करता है, उसे दर्ज करना चाहता है तो फ़ीजीलाल फूला नहीं समाता। उसकी इच्छा है– "हम्मे डउका पुरान सुनायक है"। लेकिन डउका कौन? डउकन माने–आमजन। जो भुला दिए जाते हैं, बिसरा दिए जाते हैं। इतिहास उन्हें अनदेखा करता है। इसीलिए उसका आग्रह है कि 'एमा सिरिफ डउकन के खिस्सा रही।'[3] किसी और का नजरिया और हिस्सेदारी फ़ीजीलाल को अब मंजूर नहीं और यह केवल एक फ़ीजीलाल की कहानी न होकर उसके बहाने असंख्य फ़ीजीलालों की दास्तां है। सरलता, सहजता जिनकी पूँजी है और अपने देश के प्रति आकुलता, उनके हृदय में डउका पुरान सात अध्यायों में विभाजित हैं। उपन्यास में चरित्र या घटनाएँ महत्वपूर्ण न होकर वर्णन महत्वपूर्ण हैं। इनमें कथा का विकास और चरित्र के विविध रंग विन्यस्त हैं। वर्णनों के सूक्ष्म ब्योरे इन्हें जीवंत और विश्वसनीय बनाते हैं। जिनमें फ़ीजी गए भारतवंशियों का जीवन, उनकी संस्कृति तथा बदलता समय अपनी समग्रता के साथ बड़ी ही कुशलता से पिरोया गया है। ऐसे में हम एक को दूसरे से अलग नहीं कर सकते। लगता है, जैसे फ़ीजीलाल कोई किस्सागो हो जिसकी किस्सागोई की रवानी में पाठक बहे जा रहे हों। उपन्यास में कई वृत्तांत हैं– कामिनी के, पईना के, छविराम के चुडामनी के और सरदार के– और इन सबसे फ़ीजीलाल कहीं न कहीं जुड़ा हुआ है। इस कथा में व्यक्ति और समाज जैसे एक दूसरे मे घुल–मिल गए हों।

उपन्यास के आरंभ में फ़ीजीलाल अपना परिचय देता है– फ़ीजीलाल, गिरमिटराम डउका। गिरमिटियों की अस्मिता चेतना फ़ीजीलाल इन शब्दों में स्पष्ट करता है–

"सबका जागा होयका चाही देस का इतिहास मा, चाहे डउकन होय, अउघड या लाकुडु लफाड़ी"[4]। और वे सब अब इतिहास में अपनी जगह ढूँढ रहे हैं, उस इतिहास में जो उनका हो, जिसमें उनकी अपनी जगह और

अपना नजरिया हो। वह व्यंग्य के लहजे में जैसे चेता रहा हो – "अब तो तोहार इतिहास होई जाई डामा डोल,ऊबड़ खाबड़।"[5]

समाज के हाशिए पर के लोगों का इतिहास जब कोई और लिखेगा तो वो भला उनका 'अपना' कैसे होगा ? प्रसिद्ध आलोचक प्रो. हरीश त्रिवेदी के शब्दों में "निम्नवर्गीय जीवन का स्वरचित प्रामाणिक चित्रण साहित्य में नहीं मिलता। .....सबाल्टर्न का अपना सच्चा स्वर तो 'डउका पुरान' की फ़ीजी हिंदी जैसी भाषा में ही मुखरित हो सकता था और हुआ भी।"[6]

फ़ीजीलाल व्यक्ति न होकर सामूहिक चेतना का प्रतीक है, जो जानता है कि इतिहास में उन्हें जगह मिलते ही इतिहास 'ऊबड़–खाबड़' हो जाएगा। क्योंकि "जउन कुछ तू बिदमान लोगन रद्दी समझत हो, निकार के करत हो बाहेर, वही सब सान के बनाइब, डउका पुरान।"[7] इस संकल्प और अपनी तलाश की यात्रा का ही तो परिणाम है– डउका पुरान। यह कथा यात्रा गिरमिटियों का सतही लेखा–जोखा न होकर उनके जीवन को समूचे सुख–दुख, हास–परिहास, आशा–निराशा के साथ मूर्त करता है और यह पुरान है 'भाखा' में। क्योंकि "अपना भाखा मा बातचीत होय तो अउर मजा लगे।"[8] सुब्रमनी ने इसी कारण डउका पुरान अंग्रेजी या साहित्यिक हिंदी में न लिखकर फ़ीजी हिंदी में लिखा। फ़ीजी हिंदी वह हिंदी– जो फ़ीजी में प्रचलित है और जिसका रूप विन्यास शिष्ट हिंदी से काफी भिन्न है। जो अवधी और भोजपुरी की मिश्रित परंपरा से आकार ग्रहण करती है। डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित के शब्दों में 'फीजियन हिंदी का शब्द भंडार हिंदी, भोजपुरी, अवधी, अंग्रेजी और फीजियन शब्दों के मेल से बना है जैसे– कौनची (कौनचीज), वास्तीन (वास्ते), संघे (संगे), पतरा (पतला), आदि। कुछ क्रियाएँ भी अलग दिखाई देती हैं जैसे– जाए सकेगा (जा सकेगा), उ खरीदिस (उसने खरीदा½ आदि।"[9]

अपनी रचना में बोली के तत्वों का उपयोग साहित्यकार अनेक कारणों से करते हैं– कहीं छौंक के लिए तो कहीं 'चटनीफिकेशन' के लिए। कुछ ही रचनाकार इसका सर्जनात्मक उपयोग करने में समर्थ होते हैं। सुब्रमनी ने फ़ीजी हिंदी सृजनात्मक प्रयोग किया है। वे अनुभूत संसार की जिस संवेदना से हमारा साक्षात्कार करना चाहते थे, वह अपनी संपूर्णता में केवल इसी 'भाखा' में ही संभव हो पाता। और हुआ भी। डउका पुरान का सुधी पाठक यह बखूबी अनुभव करता है।

पीढ़ियों की इस कथायात्रा में लेखक ने भाषा को उसकी संपूर्णता में पकड़ा है– ध्वनि, लय और टोन के साथ। फ़ीजी में भी ऐसी भाषा का प्रयोग अब कम होता जा रहा है और उसका स्वरूप तेज़ी से परिवर्तित हो रहा है। यह हम स्वयं अनुभव कर सकते हैं। अपने आस–पास की निरंतर एकरूप होती दुनिया और हमारे द्वारा प्रतिदिन प्रयोग की जानेवाली भाषा में तेजी से आते बदलाव। डउका पुरान की रचना प्रक्रिया लेखक के लिए भी तो 'बचपन की सैर' जैसा है। फिर से बचपन के उन दिनों में पहुँच जाना फ़्लैशबैक–सा।

डॉ. कमल किशोर गोयनका इस उपन्यास के विषय में लिखते हैं– "डउका पुरान एक सामाजिक–सांस्कृतिक महाकाव्यात्मक उपन्यास है। इसमें लेखक ने फ़ीजी के भारतीयों का जीवन तथा उनकी भाषा को जीवित कर दिया है"।[10]

उपन्यास पढ़ते हुए कई बार यह लगता है कि सुब्रमनी का अपना संवेदना संसार बड़ा व्यापक है। उनके पास गहन पर्यवेक्षण शक्ति तथा बचपन की स्मृतियों का विशद कोश है। फ़ीजी में गन्ने के खेत में काम करने गए भारतवंशियों का आरंभिक जीवन अत्यंत कष्टपूर्ण था। जो सपने दिखाकर वे ले गए, वे तो कहीं थे ही नहीं। वहाँ वे आदमी नहीं बस–कुलंबर जो थे। इन भोले–भाले 'कुलियों'

के जीवन में छोटी–छोटी चीजें भी अत्यंत महत्व की थी। वे उनसे रस लेना जानते थे, उनका सहज मन उनमें रम जाता था– जैसे रेडियो का आगमन, ग्रामोफोन और फिल्म देखने का अनुभव आदि। इस कथा यात्रा के कुछ ऐसे ही रोचक प्रसंग हैं।

लेकिन इस कठिन जीवन में प्रेम की फुहारें भी तो हैं। प्रेम मनुष्य को सुंदरता की वह दृष्टि देता है– जिससे फ़ीजीलाल कामिनी के "चहराप पसीना जइसे फूलन पे पानी कि बूँदें" देख पाता है।

पीढ़ियों की इस कथा में फ़ीजी की तत्कालीन (राजनीतिक, सामाजिक) घटनाओं के भी अनेक संकेत हैं– "जइसे देस माँ गड़बड़ी मचा, कल्लू गायब" और "ई मंदिरेप आँखी गड़ाईन। तीन दफा तुरिन, तीन दफा सब मिल कै बनवाइन[11]।" फ़ीजी के समकालीन इतिहास से अनेक संदर्भ इस रचना में उपलब्ध हैं।

हास्य–व्यंग्य इस उपन्यास की महती विशेषता है। जिसमें भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है। यहाँ हास्य प्रसंग कृत्रिम या आरोपित न होकर जीवन सहज स्फूर्त है– "आस्ते खाव, तोह के इंजिन पकड़ेक है।"[12] इसी तरह सूटेड–बूटेड शहराती के कोट उतारने पर "ई सब उतारेक रहा तो काहे न घरेम उतार के आइस।[13]'' सुब्रमनी ने फ़ीजी हिंदी को उसकी संपूर्णता में पकड़ा हैं वे उच्चारण, वर्तनी और लेखन सभी स्तरों पर इसके लिए सतर्क हैं। वे अनेक शब्दों–पौंड–पौन, कुकई, डर–डेर, तउलिया–तउला, बैल–बुल्ल, शरमान–सरमान, लीख–लीक आदि का उसके मूल रूप मे ही प्रयोग करते हैं। फ़ीजी के प्रवासियों में उत्तर प्रदेश और बिहार से आए लोगों की संख्या अधिक है। इस कारण पूर्वांचल की संस्कृति के अनेक रंग वहाँ प्रचलन में हैं। विवाह–संस्कार का विशद वर्णन, उसमें कुटुंब–समाज की भागीदारी के अनेक प्रसंगों को सुब्रमनी ने बड़े मनोयोग से उपन्यास में वर्णित किया है। रामायण का गायन और मंचन फ़ीजी के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है। श्रद्धाभिभूत पईना फिल्मों में हनुमान जी को देखते ही भावुक हो जाता है– "हनुमान सामीस भेंट होई।"[14]

फ़ीजी के भारतवंशी अपनी पहचान और अपने समय के प्रति बहुत सचेत हैं। पईना के शब्दों में "उससा ईसाई आयवाला" "अगले तीन साल माँ गाँव एकदम बदलेगा"। इन सामाजिक, राजनीतिक हलचलों को देखकर लगता हैं वहाँ भी राजनेता आकर अनेक वादे कर जाते हैं। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण डउका पुरान अपने समय का एक महत्वपूर्ण "सामाजिक सांस्कृतिक टेक्स्ट" है।

मानवीय अनुभवों के इस महाकाव्य में लोग तेजी से बदलते समय में भौंचक हैं। उनकी वो दुनिया, जिसमें शायद सुविधा नहीं थी। सुख था, शांति थी– तेजी से सिमटती–सिकुड़ती जा रही है। फ़ीजीलाल के शब्दों में "बसकित सब तरफ बढ़ गया। नवा टोला वही माँ हेरान रहा।"[15] यह अपने विलुप्त होते पहचान की टीस नहीं तो और भला क्या है। केवल टोला ही नहीं है, हेराया गाँव का आपसी सद्भाव भी है। अब अपनी समस्याओं का समाधान लोग मिल–बैठकर नहीं ढूँढते। हबीबुल्ला के शब्दों में इस भयानक समय की पीड़ा– "हम बोले कोर्ट में जायक कउन जरूरत, अपनेम समझ बूझ लेव। न मानिन, आपन वाली कर के छोड़िस झुटठे वकील पइसा खाइन"।[16]

ये डउकाजन अपनी भाषा के प्रति अत्यंत जागरूक हैं। वह उनकी पहचान का महत्वपूर्ण आधार जो है। अपनी इसी भाषा पर पड़ते विविध प्रभावों से उन्हें लगता है। जैसे "आपन भाखा का हैं, खाली परछाई हैं" भाषा और जीवन के बीच बढ़ती दूरी की इससे सटीक अभिव्यक्ति भला और क्या होगी। इस भाषा को ही तो संरक्षित करने का महत्वपूर्ण प्रयास है यह उपन्यास। जिससे आम जन की पीड़ा, दुख–सुख,आशा–आकांक्षाएँ उनकी अपनी भाषा

में मुखरित हों। अन्य भाषा में यह संभव कैसे होगा। प्रो. हरीश त्रिवेदी के शब्दों में– "हर भाषा में उसका अपना विशिष्ट जीवन दर्शन होता है "निम्नवर्गीय व्यक्ति बोल नहीं पाता अतः निम्नवर्गीय जीवन का स्वरचित प्रामाणिक चित्रण साहित्य में नहीं मिलता। सबाल्टर्न का अपना सच्चा स्वर तो डउका पुरान की फ़ीजी हिंदी जैसी भाषा में ही मुखरित हो सकता था, और हुआ भी है।"[17]

घर से निकलते ही फ़ीजीलाल देखता है कि शहर में सभी दौड़ते–भागते चले जा रहे हैं–"अइसे ना चलेक चाही जैसे कोई पिछवाया है।" [18] पंडित छविराम इस कठिन समय की सच्चाई फ़ीजीलाल को समझाते हैं– सब आपन–आपन। आजकल केकर कउन। पंडित जी 'सनफरा–सिसिकों और बंकूवर जाते तो हैं लेकिन माटी पाथर से हीन शहर से सालिगराम की खोज में गाँव का ही रुख करते हैं और तो और पंडित समाचरन अपने बढ़ते काम के कारण चार 'अंपरेनटिस' भी रख लेते हैं। काम जो बढ़ता जा रहा है। जमीन से लगाव को समझ पाना जड़हीन, आकाश कुसुम जैसी शहराती पीढ़ियों के लिए कठिन है। जहाँ "वही जउन सब कै हित मा" जीवन दर्शन है एवं जीवन– "सब पंचन के साथ" बँधा है। जहाँ एकांतिक जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। समन्वय, सहयोग और सामाजिकता इस जीवन दर्शन के तंतु हैं।

डउका पुरान में सुब्रमनी ने जिस लोक भाषा का सर्जनात्मक उपयोग किया है। उनका यह प्रयोग अनायास ही कथा शिल्पी फणीश्वरनाथ 'रेणु' और उनकी रचनाओं का स्मरण करा देता है। जीवन को उसकी संपूर्णता में उपस्थित करती हुई भाषा। सुब्रमनी की भाषा शैली की प्रशंसा करनी होगी कि कैसे उन्होने फ़ीजी हिंदी के ठेठ शब्दों का इतना सर्जनात्मक प्रयोग किया। फ़ीजी का ग्रामीण जीवन डउका पुराण में बखूबी उभर के सामने आया है। अपनी बोली–बानी में बतियाते ये चरित्र अपने सुख–दुख, आशा–आकांक्षा, को एक दूसरे के साथ साझा करते हैं। वे मानते हैं कि "जब विपत्ति में कोई हाथ बढ़ा दे तो दुख थोरा कमती होई जाय।"[19] यही सरल, सहज जीवन जहाँ व्यक्ति दूसरे के दुख से दुखी होता है और उसके लिए सब कुछ करने को तत्पर भी रहता है। आज अति आत्मकेंद्रित जीवन में इस भाव का निरंतर क्षरण हो रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. विमलेश कांति वर्मा, गगनांचल, वर्ष 56, पृष्ठ 111
2. डउका पुरान, पृष्ठ 3
3. वही, पृष्ठ 7
4. वही, पृष्ठ 6
5. वही, पृष्ठ 6
6. वही, पृष्ठ 8
7. वही, पृष्ठ 6
8. वही, पृष्ठ 6
9. डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, प्रवासी हिंदी साहित्य, पृष्ठ 66
10. डॉ. कमल किशोर गोयनका, हिंदी का प्रवासी साहित्य, पृष्ठ 65
11. डउका पुरान, पृष्ठ 452
12. डउका पुरान, पृष्ठ 332
13. वही पृष्ठ 66
14. वही पृष्ठ 19
15. वही, पृष्ठ 67
16. वही, पृष्ठ 388
17. डॉ. हरीश त्रिवेदी, डउका पुरान
18. डउका पुरान, पृष्ठ 373
19. वही, पृष्ठ 77

❑❑❑

फ़ीजी के हिंदी काव्य में प्रतिबिंबित भारतीय संस्कृति

हेमांशु सेन

है क्षणिक मनुज, दो दिन का जग
है अमिट किंतु अपना अतीत
मेरी स्मृति की तह में प्रतिपल
मेरा अतीत है वर्तमान।[1]

फ़ीजी के राष्ट्रकवि पंडित कमला प्रसाद मिश्र की उपर्युक्त पंक्तियाँ प्रवासी भारतीय के जीवन में अतीत और वर्तमान के संबंध की बहुत मार्मिक व्याख्या करती हैं। अपने मूल देश का मोह उससे छूटता नहीं वहीं उसकी आत्मा उस देश की मिट्टी की भी ऋणी है जिसने उसके जीवन को आश्रय दिया, टूटे बिखरे मन को संजोकर विकसित होने का मौका दिया। उसका मन एक साथ दो देशों में विचरण करता है, दोनों से लगाव अनुभव करता है, तभी 'नॉस्टेल्जिया' का भाव प्रवासी साहित्य का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है। अपने अतीत को ही वर्तमान मानने वाला यह कवि प्रवासी देश फ़ीजी के लिए लिखता है–

यहाँ सूरज पहले निकलता है और दूर अंधेरा होता है
फ़ीजी *फिरदौस है पेसिफिक का जहाँ पहले सवेरा होता है।*[2]

फ़ीजी– प्रशांत महासागर के आगोश में लिपटा छोटा और खूबसूरत सा देश जिसे फ़ीजी का राष्ट्रकवि 'सूर्य की प्रथम किरण का देश' और 'फिरदौस' के रूप में चित्रित करता है। फ़ीजी के प्रवासी कवियों की कविताओं में जहाँ एक ओर भारत से बिछड़ने का दर्द बहुत गहराई से दिखाई देता है, वहीं से प्रतिबद्धता भी है। जीवन में अनेक झंझावातों से जूझने के बावजूद इन भारतवंशियों के हृदय में भारतीय संस्कृति बसी हुई है। वस्तुतः ''प्रवासी अपनी संस्कृति की पहचान भी लेकर चलता है। वह अपनी स्मृतियों का पाथेय और संबल लेकर दूसरे देश जाता है। वे भारत से, भारतीय संस्कृति से, भारतीय जीवन मूल्यों से अत्यधिक गहराई से जुड़े हुए हैं। इसके लिए वे भारतीय पर्व को मनाते हैं, तीर्थों के नाम पर अपने मोहल्ले का नाम रखते हैं। अपनी संस्कृति से जुड़ाव ही उन्हें अपनी भाषा और साहित्य के प्रति समर्पित बनाए रखते हैं।''[3] भारतीय प्रवासी साहित्यकारों ने अपने साहित्य और जीवन में भारत और भारतीय संस्कृति को संजोकर रखा है। प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और इतिहास वाले देश के प्रवासी नागरिकों के संदर्भ में भाषा, व्याकरण एवं प्रवासी साहित्य के विशेषज्ञ विमलेश कांति वर्मा का कथन बहुत महत्वपूर्ण है कि– ''प्रवास में व्यक्ति को अपने प्रदेश की याद सताती है, प्रियजनों की उसे याद आती है, गाँव कूचे याद आते हैं पर भौगोलिक दूरियों को वह भाषा, संस्कार, रीति–नीति को संजोकर पाटना चाहता है। उसका अपनी भाषा से, अपनी वेशभूषा, पर्व और त्योहार से लगाव बढ़ता जाता है। इनके माध्यम से उसे स्वदेश का एहसास होता है इसलिए इनकी सुरक्षा और प्रतिष्ठा के लिए वह निरंतर सचेष्ट रहता है। यही कारण है कि विदेश में भी वह छोटा स्वदेश बनाकर रहता है। अमरीका में न्यूजर्सी, इंग्लैंड में मिडिलसेक्स, सिंगापुर में लिटिल इंडिया, मलेशिया में मस्जिद इंडिया इसके उदाहरण हैं जहाँ आपको लगेगा कि आप भारत में हैं। "वस्तुतः प्राचीन संस्कृति वाले देशवासी दूसरे देश की संस्कृति को लंबे समय

तक विदेश में रहने के बाद भी आत्मसात् नहीं कर पाते और एक विशिष्ट सामाजिक घटक के रूप में ही दिखाई पड़ते हैं।''[4] संभवतः यही कारण रहा होगा कि भारत से शर्तबंदी मजदूर अथवा गिरमिटिया मजदूर के रूप में अनाम देश और गुमनाम राहों पर चल पड़े। ये आम भारतीय अपने साथ अपने दैनिकचर्या की आवश्यक वस्तुओं के साथ, अपनी आस्था अपने धर्म के प्रतीक, अपनी संस्कृति का संचित कोष रामचरितमानस, गंगाजल और तुलसी जैसी वस्तुओं को ले जा सके थे। घोर आश्चर्य होता है कि उन मजबूर भारतीयों ने मजबूरी अथवा भविष्य की आशा जैसी अस्थिर मनःस्थिति में कैसे इतना सोचा होगा। कितनी सघन आस्था और प्रबल विश्वास से सुरक्षा की होगी उन्होंने निजी आवश्यकताओं के बीच संस्कृति और अपने धार्मिक प्रतीकों की उनके भाव, विश्वास और आस्था का परिणाम है कि फ़ीजी जैसे देश में जहाँ इन प्रवासी भारतीयों की चौथी और पाँचवीं पीढ़ी आ गई है, 'रामायण महारानी' का ऐश्वर्य उसी अनुपात में बढ़ गया है। यह रामायण महारानी का ही प्रभाव है कि आर्थिक रूप से समुन्नत देश फ़ीजी के हिंदी साहित्य तथा फ़ीजी हिंदी के साहित्य में भारतीय संस्कृति का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा, उसके रीति रिवाज, मान–मर्यादा को अपने अंतर्मन में समेटे इन भारतीयों ने अपने अस्तित्व, संस्कृति और पहचान की लड़ाई बखूबी लड़ी। उनकी भाषा, गीत, धर्म आदि इन प्रवासी भारतीयों की सुरक्षा और संघर्ष का सशक्त माध्यम बने। प्रवासी और अप्रवासी भारतीयों के जीवन में हिंदी भाषा के महत्व को दर्शाते हुए पुष्पिता अवस्थी लिखती हैं ''विदेशों में भारतीयों और भारतवंशियों के लिए हिंदी उनकी अपनी सांस्कृतिक भाषा है। विदेशों में हिंदी चाहे कामकाज और कार्यालय की कमाऊ भाषा भले ही ना हो लेकिन वह रीति–रिवाज, कर्मकांड, खानपान, तीज त्यौहार, रहन–सहन और जीवन भाषा है। वह जीवनदायिनी हृदय की भाषा है। हिंदी आत्मा के तृप्ति के भाषा और प्रकाश है।''[5]

इसी आत्मा की तृप्ति और पूर्णता की कामना लेकर फ़ीजी के प्रवासी भारतीयों ने हिंदी भाषा में अपनी साहित्यिक रचनाएँ रचीं। सामान्यतया उनके साहित्य में हिंदी के तीन रूप दिखाई देते हैं पहला लोक भाषा अवधी, दूसरा मानक हिंदी और तीसरा फ़ीजीबात। फ़ीजी के साहित्यकारों ने हर रूप में संस्कृति के स्वर को मुखरित किया है। हिंदी भाषा फ़ीजी के प्रवासी साहित्य का बाह्य रूप है तो भारतीय संस्कृति उसका प्राण तत्व है।

''भारत देश जितना प्राचीन है उतनी ही प्राचीन उसकी संस्कृति है। भारतीय–संस्कृति का मूल स्वर सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की भावना से अनुप्राणित रहा है। मनुष्य मात्र के कल्याण को चरम लक्ष्य मानकर सामाजिक जीवन में सामूहिकता और मानवतावाद को प्रतिष्ठित किया गया। मनुष्य की आंतरिक एकता का बोध भारतवर्ष ने धर्म, दर्शन, कला और संस्कृति के माध्यम से कराया है। मानवतावाद की धारा इस संस्कृति में हर युग में अंतः सलिला की तरह प्रवाहित होती रहती है। मनुष्य के प्रति प्रेम और भ्रातृभाव आपसी व्यवहार में सच्चाई और सहानुभूति, पारस्परिक प्रीति और सहयोग इस संस्कृति के मुख्य तत्व रहे हैं। अपने देश के लंबे इतिहास और विकास की हर मंजिल में सामाजिक चेतना और सौंदर्य बोध ने इस संस्कृति को परिष्कृत किया है।''[6]

विश्व में अनुपम भारतीय संस्कृति मानवता, करुणा, सत्य और अहिंसा जैसे अनेक शाश्वत मानवीय मूल्यों को संपोषित करती है। विश्व बंधुत्व, सर्व कल्याण, परोपकार, जड़–चेतन सभी के प्रति प्रेम का सर्वव्यापी भाव, इसे अलौकिक रूप प्रदान करता है। भारतीय संस्कृति संपूर्ण मानव जाति और प्रकृति के एक–एक अवयव से अपना आत्मिक संबंध स्थापित करती है। भारतीय संस्कृति का विस्तार संपूर्ण विश्व तक है। उसके लिए पूरी

धरती एक परिवार है और संपूर्ण मानव जाति उसके परिजन। 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना से अनुप्राणित भारतीय संस्कृति में सर्वकल्याण की दिव्य भावना है। वह सबकी है और सबके लिए है।

संभवतः इसी कारण भारतीय संस्कृति को समझने और आत्मसात् करने वाला मनुष्य कभी भी उसको विस्मृत नहीं कर सकता, फिर वो चाहे गुलामी के दौर के प्रवासी भारतीय–गिरमिटिया मजदूर ही क्यों ना हों? भारतीय संस्कृति को परिभाषित करते हुए साहित्यकार विद्यानिवास मिश्र, अज्ञेय के शब्दों को उधार लेकर लिखते हैं– ''भारतीय संस्कृति की सही परिभाषा उसकी आत्मीयता की गहराई है, मिठास है, हरियाली है, उजाला है, गंधवाही मुक्त खुलापन है, लोच है, उल्लास है, लहरिल प्रवाह है और भव्य निर्व्याज निस्सीम का बोध है। ये शब्द तो अज्ञेय के हैं पर सीधे शब्दों में भारतीय संस्कृति सत्य की अनथक खोज है, इसलिए स्वीकारी है, उदार है, मुक्त है।''[7]

मजबूरी में अपने देश को छोड़कर जानेवाले इन प्रवासी भारतीयों की जिजीविषा अद्भुत थी। अपनी अदम्य जीवनी शक्ति से वह पुनः शक्तिशाली बनकर पुष्पित, पल्लवित और फलित हो उठे। जीवन के हर क्षेत्र में फिर उद्योग हो या व्यवसाय, भाषा हो या साहित्य, उन्होंने जीवटता की मिसाल कायम की। भारतीय संस्कृति को संरक्षित करने में इनका सबसे सहज और सशक्त साधन रहा–धर्म। फ़ीजी रामायण महारानी का देश है। इन प्रवासी भारतीयों ने सबसे मूल्यवान तरीके से अपनी धार्मिक परंपराओं को संजोया। कहीं रामायण यज्ञ का आयोजन हो तो सारा वातावरण जय जयकार से गूँज उठता है– सत्य सनातन धर्म की जय, सब देवी–देवताओं की जय, रामायण महारानी की जय। प्रायः फ़ीजीवासियों के नामकरण में भी देवी–देवताओं के नाम की प्रधानता मिलती है। गिरमिट मजदूर के रूप में कठिन त्रासद जीवन, अपनों और अपनी मातृभूमि से दूरी, ऐसे में ईश्वर के प्रति उनकी भक्ति बढ़ती गई। गन्ने के खेतों में कड़ी मेहनत और विकट परिस्थितियों में उनके पास भगवान के अतिरिक्त कोई और सहारा भी नहीं था। धीरे–धीरे इन भारतीयों की अपने धर्म के प्रति निष्ठा दृढ़ से दृढ़तर होती गई। परंपरागत भारतीय की तरह, फ़ीजी में रहने वाला भारतवंशी भी अपनी त्रासदी से उबरने के लिए ईश्वर से गुहार लगाता है, प्रार्थना करता है। कुँवर सिंह की कविता में यह भाव द्रष्टव्य है–

कृष्ण चंद्र बलराम
हमारे कृष्ण चंद्र बलराम
युग–युग में हो जन्म तुम्हारा
देते हो निज जन को सहारा
करते हो संग्राम। हमारे।।
कंसराज विध्वंस किए थे
सतयुग त्रेता द्वापर में थे
लेते नहीं आराम।
हमारे कृष्ण चंद्र बलराम।[8]

ये भारतवंशी अपनी संस्कृति और अपनी सभ्यता को, अपने छोटे से भारत को अपने हृदय में बसाकर रखते हैं। उन्हें अपनी भारतीय विरासत और परंपरा पर गर्व है। फ़ीजी के कवि विवेकानंद शर्मा के शब्दों में –

हर गाँव में रामायण की गूँज सुनना
घर–घर पे हनुमान के झंडे का फहराना
भारतीयों का भान से भारतीय कहना
फखर से हर कौम में अपने सर को उठाना

उन्हें भारत के हर अंश, प्रत्येक भाग से लगाव है–

वह मनोहर घाट, वह गृह,
वे स्वजन, सहवास सुंदर
एक ब्रज रज पर निछावर,
स्वर्ग का उल्लास सुंदर
वह मनोहर भूमि जिसमें
बाल्य मेरा खो गया है
मिल सके तो छोड दूँ मैं
प्रणय का मधुमास सुंदर।[10]

फ़ीजी के भारतवंशियों के विचार भारतीय संस्कारों से प्रभावित हैं। वे शांतिप्रिय हैं, विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों का आदर करते हैं। फ़ीजी का प्रवासी भारतीय कवि भारतीय संस्कृति के मूल तत्व सदाचार, कौमी एकता, सद्भाव जैसे गुणों से युक्त फ़ीजी की वर्तमान संस्कृति पर गर्व करता है और अपने देश फ़ीजी को महान मानता है–

कुरान और गुरु ग्रंथ की इज्जत समान है
फ़ीजी में सभी धर्म और मजहब महान है
मजहबी दुराव का न कोई स्थान है
सारे जहाँ में इसीलिए यह मुल्क महान है
एकता की वंशी हम बजाए ना होते
प्रेम ज्योति अगर तुम जलाए ना होते[11] ।

भारतीय संस्कृति में परिवार और पारिवारिक संबंध बहुत महत्वपूर्ण और विशिष्ट हैं। इन भारतीय पारिवारिक रिश्तों का विशिष्ट नाम, गुण ,धर्म और कर्तव्य होता है। फ़ीजी में भी इन रिश्तों का वही नाम, वही पहचान है, जैसे आजी–आजा (बाबा–दादी), माई–बापू, भैया–भाभी, बहिनी, बिटीया जैसे पारिवारिक संबंधों के संबोधन विशुद्ध भारतीय हैं। भारतीय संस्कृति में माता–पिता को देव तुल्य माना जाता है। उस परंपरा को अभिव्यक्त करते हुए कवि पंडित प्रताप चंद्र शर्मा लिखते हैं–

उच्च–नीच की प्रथा त्यागकर सच्ची ज्योत जलाओ
माता–पिता की सेवा करके भवसागर तर जाओ।[12]

पारिवारिक रिश्तों में संबोधन और नामकरण विशुद्ध भारतीय परंपरा के अनुरूप है। अमरजीत कौर की कविता–

हमरा कोई भैया भाभी ना हमारी कोई बिटिया
नजर जो रोना कोई भी ना भेजें कोई चिट्ठी है।[13]

बच्चे के नाम से अपने पति को बुलाने की भारतीय परंपरा इस कविता में दिखाई देती है।

काहे करे मनमानी सुन मुन्ना के बापूआ
माटी भाई जिंदगानी हाय मुन्ना के बापूआ[14]

भारतीय संस्कृति की उत्सवधर्मिता और उसके त्योहारों का आकर्षक कलेवर भी इन प्रवासी भारतीयों ने संजोकर रखा है। फ़ीजी के प्रवासी भारतीय, भारतीय उत्सवों को धूमधाम से मनाते हैं[15] 'दीपावली' सरकार द्वारा अनुमोदित राष्ट्रीय अवकाश है। आर्य समाज के अनुयायी इनके साथ स्वामी दयानंद सरस्वती बोधि दिवस, आर्य समाज स्थापना दिवस, पंडित विष्णु देव जन्म दिवस, वेद सप्ताह और स्वामी श्रद्धानंद बलिदान दिवस मनाते हैं, गुजराती गणेश उत्सव मनाते हैं, मुसलमान ईद, ईद उल अज्हा और पैगंबर मोहम्मद साहब का जन्म दिवस मनाते हैं। मोहम्मद साहब का जन्म दिवस भी सरकार द्वारा अनुमोदित राष्ट्रीय अवकाश है। त्योहार में बर्फी, गुलाब जामुन, लड्डू, पेड़े, मालपुए सब घरों में ही बनते हैं। घरों को दुल्हन की तरह सजाया जाता है। यही नहीं सबसे सुंदर रंग–बिरंगे सजे घर को इनाम भी दिया जाता है और अखबारों में उसकी फोटो भी निकलती है। भारत की तरह वहाँ भी घरों की बनी मिठाइयाँ प्लेट में सजाकर एक दूसरे के घर बंधु–बांधवों को भेजी जाती हैं। इसी प्रकार नवरात्रि की रौनक तो देखने लायक होती है। मंदिरों में देवी की पूजा बड़े विधि विधान से की जाती है। अष्टमी–नवमी के दिन कन्या खिलाने के लिए बच्चों को निमंत्रित किया जाता है। बड़े प्रेम से उनके पैरों को धोकर टीका कर, बड़े सम्मान से पूरी, चने और हलवा खिलाकर कुछ दक्षिणा देकर विदा करते हैं।[16]

रीति–रिवाजों और परंपरा की दृष्टि से फ़ीजी के प्रवासी स्वागत की परंपरा, विवाह में हल्दी–तेल की रस्म, दुल्हे को टीका लगाने की परंपरा,रस्मों में गाए जाने वाले गीत, गारी तथा विभिन्न संस्कारों, हिंदू मान्यताओं और धार्मिक कर्मकांडों को बहुत महत्व देते हैं। कवि प्रताप चंद्र शर्मा लिखते हैं–

धर्म सनातन का प्रचार संसार में हम फैलाएँगे
सच्चा हिंदू आदर्श उन्हें हम भलीभाँति समझाएंगे।[17]
इसी तरह सजाओ सखी आरती कंचन थार
अक्षत, रोरी, पान,फूल औ घी का दीपक बार।[18]
अन्यत्र वे लिखते हैं–
सिंदूर दान में प्रिय सिंदूर का टीका जो मस्तक में लगाता हूँ
हृदय अधिकारिणी सुभगे तुम्हें अपना बनाता हूँ।[19]

परिधान–रहन–सहन फ़ीजी के नागरिकों का पहनावा पश्चिमी है। पुरुष पैंट–शर्ट पहनते हैं। महिलाएँ दफ्तर में स्कर्ट तथा विशेष अवसरों पर सलवार कमीज और साड़ी पहनती हैं। ''पहनावे की दृष्टि से यहाँ तो ऐसा कुछ भी नहीं था। सूरत शक्लें दो तरह की दिखती थीं। अधिकतर तो अपने भारतीयों की भारतीय वेशभूषा में महिलाएँ जो अधिकतर साड़ी में ही दिखती थीं, कुछ एक ही सलवार कुर्ते में दिखती थीं। पुरुष वर्ग सामान्यतः पैंट और शर्ट, पाजामा–कुर्ता और दक्षिण भारतीय लुंगी और कमीज में दिखते थे। दूसरे वहाँ के मूल निवासी काई बीती जो श्याम वर्णी और सर पर घने काले घुँघराले बालों वाले हट्टे–कट्टे स्त्री–पुरुष थे अपनी पारंपरिक वेशभूषा सूलू पहने दिखते थे। पुरुषों की सूलू घुटनों तक की सीधी स्कर्ट जैसी होती है साथ ऊपर बुशर्ट पहनते हैं जबकि स्त्रियाँ पूरी लंबी स्कर्ट के साथ कुर्ती पहनती हैं। इनकी ये वेशभूषा उनके आर्थिक स्तर के अनुसार महँगी और सस्ती होती है।"[20]

छोटे से देश फ़ीजी में राजनीतिक अस्थिरता बहुत है। अंग्रेजों से आजादी के बाद फ़ीजी में चार बड़े राजनीतिक परिवर्तन हुए। चार बार तख्तापलट हुआ। इस तख्तापलट के शिकार प्रवासी भारतीय हुए। पहली बार महेंद्र पाल चौधरी प्रवासी भारतीय जब फ़ीजी के प्रधानमंत्री बने तब प्रवासी भारतीयों को अपने दिन बहुरने की बहुत उम्मीद थी, परंतु वहाँ शीघ्र ही तख्तापलट हो गया। जब–जब प्रवासी भारतीयों की स्थिति मजबूत बनी तब–तब बड़े राजनीतिक हेरफेर के कारण अप्रवासी भारतीयों के मन में बहुत असंतोष हो गया। उन्हें बार–बार यह अनुभव होने लगा कि फ़ीजी उन्हें अभी मूल नागरिक के रूप में स्वीकार नहीं करता। संवैधानिक धरातल पर समानता का अधिकार होने के बावजूद और पिछले 100 वर्षों से अपना तन–मन–धन लगाकर जिस फ़ीजी की उन्नति और विकास में सक्रिय हैं वहाँ उनका कोई महत्व नहीं है। राजनीतिक अस्थिरता और संघर्ष के तख्तापलट के समय में फ़ीजी के प्रवासी भारतीयों ने अपनी वेदना को जिस रूप में अभिव्यक्त किया है वह बहुत मार्मिक है। जोगिंदर सिंह 'कँवल' की कविता द्रष्टव्य है–

सात सागर पार करके भी ठिकाना न मिला,
सौ साल प्यार करके भी निभाना न मिला।
कई जनमों से तो बिछड़े थे एक माँ से हम,
दूसरी माँ के आंचल में भी सिर छिपाना न मिला।
पीढ़ियाँ खेली हैं ऐ देश तेरी गोद में, फिर भी तेरी ममता का हमें नजराना न मिला।
हम ने बंजर धरती में खिला दिए रंगीन फूल,
तेरी पूजा के लिए दो फूल चढ़ाना न मिला।
खून–पसीने से बनाया था जन्नत का चमन,
इस की किसी डाल पर भी आशियाना न मिला।
हम तो पागल हो गए मंजिलों की खोज में,
इतनी भटकन के बाद भी कोई ठिकाना न मिला।
हम ने क्या पाप किया समझ में आता नहीं,
वर्षों की लगन का हमें, कोई इजवाना न मिला।[21]

प्रवासी भारतीयों एवं भारतीय संस्कृति से उनके जुड़ाव के संबंध में डॉ. विद्यानिवास मिश्र का कथन ध्यातव्य है– ''भारतीय संस्कृति जीवन के रस का तिरस्कार नहीं है। नकार नहीं है, पर एक अलग ढंग का स्वीकार है।

भारतीय संस्कृति जीवन को केवल भोग्य रूप में नहीं देखती, वह जीवन को भोक्ता के रूप में भी देखती है, बल्कि ठीक–ठाक कहें तो जीवन को भाव के रूप में, अपव्यय भाव के रूप में, न चुकने वाले भाव के रूप में देखती है। अंग–अंग कट जाए, तब भी मैदान न छूटे, ऐसे सूरमा भाव के रूप में देखती है।[22] फ़ीजी में गिरमिटिया मजदूर के रूप में गए इन भारतीयों को जितना सताया गया, उतना ही वे अपनी मूल पहचान और संस्कृति से संबद्ध होते गए, जितना इनके अस्तित्व को नकारा गया उतना ही अपने धर्म और संस्कृति से प्रतिबद्ध होते गए। फ़ीजी के इन भारतवंशी पुरुषों और स्त्रियों के मन में गहन आक्रोश और विद्रोह पनप रहा था। भारतीय संस्कृति ने इन वीर, जुझारू योद्धाओं को जीवन समर में जूझने और स्वयं को स्थापित करने का आत्मबल दिया। इसमें संदेह नहीं कि प्रवासी भारतीयों ने अपनी संस्कृति और उसके वैशिष्ट्य को संजोने की पुरजोर कोशिश की है, तभी आज वैश्विक हिंदी और भारतीय संस्कृति के वैश्विक स्वरूप पर चर्चा करना सहजता से संभव हो पा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संपा. सुरेश ऋतुपर्ण, फ़ीजी के राष्ट्रकवि पंडित कमलाप्रसाद मिश्र की रचनाएँ, पृष्ठ 72

2. संपा. जयंती प्रसाद मिश्रा, फ़ीजी परिवेश और कमलाप्रसाद मिश्र का कवि कर्म, 2012, पृष्ठ 73

3. डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी, गगनांचल, 2002, अंक 4, पृष्ठ 25

4. संपा. विमलेश कांति वर्मा, प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, प्राक्कथन पृष्ठ 11

5. पुष्पिता अवस्थी, भारतवंशी भाषा एवं संस्कृति ,पृष्ठ 46

6. डॉ. कृपाशंकर, भारतीय संस्कृति का प्रवाह, पृष्ठ 154

7. डॉ. विद्यानिवास मिश्र, हिंदी साहित्य में भारतीय संस्कृति का स्वरूप, पृष्ठ 143

8. कुँवर सिंह, 3 संपा. विमलेशकांति वर्मा, फ़ीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, पृष्ठ 102

9. राघवानंद शर्मा, संपादक विमलेश कांति वर्मा, प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, पृष्ठ 56

10. संपा. सुरेश ऋतुपर्ण, फ़ीजी के राष्ट्रकवि पंडित कमलाप्रसाद मिश्र की रचनाएँ, पृष्ठ 61

11. राघवानंद शर्मा, संपादक विमलेश कांति वर्मा, प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, पृष्ठ 55–56

12. अजय कुमार शर्मा, शांतिदूत, फ़ीजी टाइम्स, 1985, नवंबर 07, ज्ञान ज्योति जलाओ, पृष्ठ 99

13. अमरजीत कौर, संपादक विमलेश कांति वर्मा, प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, पृष्ठ 27

14. अमरजीत कौर, संपादक विमलेश कांति वर्मा, प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, पृष्ठ 29

15. आर्यरत्न पंडित भुवन दत्त, साक्षात्कारकर्ता सुश्री सुनंदा वर्मा, प्रवासी जगत, फ़ीजी विशेषांक, जनवरी–मार्च, 2021, पृष्ठ 36

16. धीरा वर्मा, रमणीक द्वीप फ़ीजी–सुरभित स्मृतियाँ प्रवासी जगत, फ़ीजी विशेषांक, जनवरी–मार्च, 2021, पृष्ठ 44– 45

17. कवि प्रताप चंद्र शर्मा, धर्म सनातन,प्रताप काव्यांजलि, उद्धृत दीप्ति अग्रवाल, प्रवासी जगत, फ़ीजी विशेषांक, जनवरी–मार्च, 2021, पृष्ठ 24

18. कवि प्रताप चंद्र शर्मा, धर्म सनातन, प्रताप काव्यांजलि, उद्धृत दीप्ति अग्रवाल, प्रवासी जगत, फ़ीजी विशेषांक, जनवरी–मार्च, 2021, पृष्ठ 24

19. कवि प्रताप चंद्र शर्मा, धर्म सनातन, प्रताप काव्यांजलि, उद्धृत दीप्ति अग्रवाल, प्रवासी जगत, फ़ीजी विशेषांक, जनवरी–मार्च, 2021, संख्या 24

20. धीरा वर्मा, रमणीक द्वीप फ़ीजी– सुरभित स्मृतियाँ, प्रवासी जगत, फ़ीजी विशेषांक, जनवरी–मार्च, 2021, पृष्ठ 42

21. जोगिंद्र सिंह कंवल, भारत दर्शन, सितंबर–अक्तूबर, 2000,

22. डॉ. विद्यानिवास मिश्र, हिंदी साहित्य में भारतीय संस्कृति के आधार, पृष्ठ18

❑❑❑

दुर्गा : हस्तलिखित पत्रिका–1935

कमल किशोर गोयनका

मॉरिशस में '11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन' का आयोजन एक महत्वपूर्ण घटना है। मॉरिशस में जब पहला विश्व हिंदी सम्मेलन हुआ था, तब सारे विश्व को मॉरिशस में हिंदी भाषा व साहित्य की सुखद स्थिति की जानकारी हुई और मॉरिशस हिंदी विश्व का एक महत्वपूर्ण देश बन गया। इस आयोजन का श्रेय श्री सूरज प्रसाद मंगर (एस.एम.) 'भगत' को है जो अपने जीवन–काल में मॉरिशस में विश्व हिंदी सम्मेलन कराना चाहते थे। श्री भगत ने तब कहा था कि उनका स्वप्न पूरा हुआ और जीवन सार्थक हुआ। श्री सूरज प्रसाद मंगर 'भगत' मॉरिशस के एक ऐसे हिंदी–प्रेमी तथा हिंदी सेवी थे जिन्होंने सारा जीवन हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए अर्पित किया, 'हिंदी प्रचारिणी सभा' के लगभग चालीस वर्ष मंत्री रहे और वर्ष 1935 से 'दुर्गा' नाम से हस्तलिखित पत्रिका निकाली। उस समय मॉरिशस में किसी हस्तलिखित पत्रिका को आरंभ करने की कल्पना ही अकल्पनीय लगती है, यद्यपि तब तक हिंदी में कुछ मुद्रित पत्रिकाएँ निकल चुकी थीं। श्री सूरज प्रसाद मंगर 'भगत' के मन में इस अभिनव प्रयोग का विचार कैसे आया, इसकी खोज तो संभव नहीं है, परंतु हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि मॉरिशस के प्रवासी भारतीयों में जिसमें बहुत ही कम लोग शिक्षित और हिंदी भाषा–साहित्य के ज्ञाता थे, उनको यह आवश्यक लगा कि देश को जाग्रत करने के लिए, 'मुर्दा कौम' में क्रांति लाने के लिए, हिंदी भाषा के 'जानदार और शानदार' होने के सत्य को स्थापित करने एवं 'हिंदी–हिंदी–हिंदी' के नाद को दिग्दिगंत तक मुखरित करने तथा 'हिंदू नवयुवकों' को कर्म–पथ एवं लेखन–पथ पर अग्रसर करना और 'राजनीति' का ज्ञान देने के लिए एक पत्रिका की आवश्यकता है। उस काल–खंड में इन प्रवासी भारतीयों के पास कोई आर्थिक साधन नहीं थे, अतः उन्होंने हस्तलिखित पत्रिका के निकालने का निर्णय किया। यह महायज्ञ एक व्यक्ति–सूरज प्रसाद मंगर 'भगत' के द्वारा शुरू हुआ, लेकिन इसमें हिंदी एवं देश प्रेमी जुड़ते गए और 'दुर्गा' पत्रिका एक आंदोलन बन गया और जनवरी, 1935 से शुरू होकर 1938 तक चलता रहा। इसके मूल मे 'भगत' जी की अटूट निष्ठा, अटूट संकल्प एवं अखंडित तथा निष्कंप राष्ट्र–भक्ति और हिंदी–भक्ति थी। मॉरिशस में गुलामी के उस समय में जब गोरी सरकार के अत्याचारों से प्रवासी भारतीय दुःख एवं व्यथापूर्ण जीवन जी रहे थे और जीवन नारकीय बन गया था, तब सूर्यप्रसाद मंगर 'भगत' जैसे देश प्रेमी नवयुवक देश, जाति, धर्म एवं भाषा के उद्धार के लिए जागृति–यज्ञ आरंभ कर रहे थे। इस राष्ट्रीय कार्य में 'भगत' का पूरा परिवार लगा था। गिरधारी भगत एवं रामलाल मंगर 'भगत' ने 24 दिसंबर, 1935 को 'हिंदी प्रचारिणी सभा' की स्थापना की। इसके मूल में 12 जून, 1926 को मोंताई लोग गाँव में स्थापित 'तिलक विद्यालय' था। 'हिंदी प्रचारिणी सभा' के लिए गिरधारी ने दस बीघा जमीन और तीन हजार रूपये दिये और सूरज प्रसाद मंगर 'भगत' चालीस वर्ष तक इस संस्था के मंत्री रहे। मॉरिशस में प्रथम हिंदी सम्मेलन वर्ष 1941 में हुआ और द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन 28–30 अगस्त, 1976 को मॉरिशस में हुआ। इन दोनों के आधार–स्तंभ सूरज प्रसाद मंगर 'भगत' ही थे। उन्होंने 28 अगस्त, 1976 को उद्घाटन के दिन राजेंद्र अरुण से कहा था कि आज मेरी तपस्या फलीभूत हुई। यह

सम्मेलन करके चाचा रामगुलाम (प्रधानमंत्री) ने हिंदी को विश्व–मंच दिया है। अब मैं मर भी गया तो कोई हर्ज़ नहीं। और इसके 11 दिन बाद मॉरिशस के इस 'हिंदी–वीर' तथा 'हिंदी–रत्न' एवं 'मॉरिशस– रत्न' का देहावसान हो गया। इसके एक वर्ष बाद उनका कविता–संग्रह 'विचार– वीथिका' प्रकाशित हुआ और इसकी भूमिका में उन्होंने लिखा, "प्रस्तुत कविताएँ प्रायः कठिन वेदना के बावजूद अस्पताल में रुग्ण–शैया पर उद्‌भूत एवं लिपिबद्‌ध हुई हैं। अस्पताल में तड़पन, क्रंदन, कराह के साथ कविता आँसू बनकर निकलती है।" कवि का निजी कष्ट भी उसे काव्य–रचना के संकल्प से हटा नहीं सका है। सच, ऐसे ही व्यक्ति राष्ट्र एवं समाज के निर्माता होते हैं। यह उनके गौरवमय जीवन की उपलब्धि है कि वे मॉरिशस में विश्व हिंदी सम्मेलन करा सके और 'हिंदी प्रचारिणी सभा' को ऐतिहासिक महत्व की संस्था के रूप में विकसित कर सके। 'हिंदी प्रचारिणी सभा' ने अनेक भारतीय हिंदी साहित्यकारों का अपने प्रांगण में स्वागत किया है, अनेक कार्यक्रम किए हैं, असंख्य छात्रों को हिंदी का ज्ञान कराया है तथा अनेक लेखक पैदा किए हैं। मेरी पहली मॉरिशस यात्रा वर्ष 1980 में 'प्रेमचंद जन्म– शताब्दी' के समारोह में भाग लेने के लिए हुई थी जो 'हिंदी प्रचारिणी सभा' ने ही आयोजित किया था और भारत सरकार ने मुझे भारतीय प्रतिनिधि बनाकर जैनेंद्र कुमार जी के साथ भेजा था। मैंने तब दिल्ली में 'प्रेमचंद जन्म– शताब्दी राष्ट्रीय समिति' बनाई थी और जैनेंद्र जी इसके अध्यक्ष थे, मैं संस्थापक महामंत्री और प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी संरक्षक थीं। मैंने उस समय 'हिंदी प्रचारिणी सभा' को शताब्दी– समारोह करने के लिए लिखा था और भारतीय उच्चायोग के सहयोग से यह कार्यक्रम हुआ था।

मॉरिशस की इस पहली यात्रा में और कुछ बाद तक भी मुझे 'दुर्गा हस्तलिखित पत्रिका' की जानकारी नहीं थी और जैसा कि इतिहास बताता है कि मॉरिशस के हिंदी समाज को भी इसके बारे में कुछ विशेष जानकारी नहीं थी। वहाँ के कुछ हिंदी विद्‌वानों एवं लेखकों– डॉ. लक्ष्मीप्रसाद रामयाद, सोमदत्त बखोरी, डॉ. मुनीश्वर लाल चिंतामणि, डॉ. बीरसेन जागासिंह, डॉ. विनोद बाला अरुण, प्रह्‌लाद रामशरण आदि ने 'दुर्गा' का उल्लेख किया है, परंतु डॉ. विनोदबाला अरुण ने ही कुछ मूल्यांकनपरक टिप्पणियाँ की हैं, लेकिन एक ऐसी घटना हुई कि 'दुर्गा हस्तलिखित पत्रिका' का इतिहास खुला, उसके अंकों की एवं प्रकाशन–काल (1935– 38)की जानकारी मिली और मुझे साक्षात् देखने का अवसर मिला। संभवतः यह बात 1998–99 के आसपास की है। इस समय तक हिंदी जगत यह जान गया था कि प्रेमचंद के साथ मॉरिशस का हिंदी साहित्य भी मेरा अध्ययन–शोध का विषय है। एक दिन विदेश मंत्रालय में कार्यरत श्री तेजपाल 'दुर्गा' पत्रिका की एक फाइल लेकर आए और बोले कि यह फाइल हमारे कबाड़खाने में पड़ी थी। आप का संबंध मॉरिशस से है, कृपया आप देखें कि इसका कोई महत्व है या नहीं। यदि यह बेकार है तो हम इसे कबाड़खाने में ही डाल देंगे और रद्‌दी वाला ले जाएगा। मैंने देखकर कहा कि तेजपाल जी यह तो हीरा है और इसकी रक्षा आवश्यक है। मैंने कहा कि यह 'दुर्गा' की फाइल 'हिंदी प्रचारिणी सभा', मॉरिशस को लौटा देनी चाहिए तथा यह सरकारी तरीके से होना चाहिए। हुआ यह है डॉ. हरगुलाल गुप्त मॉरिशस में भारतीय उच्चायोग में हिंदी अधिकारी थे और वे वर्ष 1985 में भारत में आयोजित एक प्रदर्शनी के लिए उसे वहाँ से लेकर आए थे। उसके बाद यह फाइल विदेश मंत्रालय को कबाड़खाने तक पहुँच गई, परंतु तेजपाल एवं एन.आर. भगत ने, मेरा अनुरोध मानकर इसे भारतीय उच्चायोग, मॉरिशस के माध्यम से मॉरिशस को 'हिंदी प्रचारिणी सभा' (जो इसकी असली मालिक थी) को वापिस लौटाया। सभा ने इसका बड़ा स्वागत किया, उनका कोहिनूर हीरा उन्हें वापस मिल गया था और उन्होंने मुझे मॉरिशस बुलाकर मेरा

स्वागत–सम्मान किया। मेरे मॉरिशस प्रेम का यह अनुपम उपहार था।

'दुर्गा' की मॉरिशस वापसी 'हिंदी प्रचारिणी सभा' के विगत अध्यक्ष श्री अजामिल माताबदल के कार्यकाल में हुई। इस संबंध में उनका योगदान महत्वपूर्ण है। उनके समय में ही मैंने 'दुर्गा' की कहानियों का संग्रह तैयार किया जो छपा तथा 'दुर्गा' पर एक शोध लेख भी प्रकाशित हुआ। इसी समय से मेरे मन में यह बात थी कि 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका (1935–38) के संपूर्ण अंक मूल रूप में प्रकाशित होने चाहिए, क्योंकि हिंदी भाषा के इस इतिहास को उसके मूल रूप में सुरक्षित रखना इतिहास को जीवित रखना है। 'दुर्गा' के उद्देश्य, उसकी भाषा एवं विचार, उसकी लिपि तथा उस समय का मॉरिशस का समाज, इन सभी के आप साक्षात् दर्शन कर सकते हैं। यह संभवतः मॉरिशस में हिंदी लिपि का पहला हस्तलेख है जो मूल रूप से सुरक्षित है, यह इतिहास की धरोहर है, यह मॉरिशस के पूर्वजों की निशानी है, यह प्रवासी भारतीय की पीड़ा का तथा उससे मुक्ति की छटपटाहट का दस्तावेज है और हिंदी भाषा–साहित्य–पत्रकारिता–लिपि का दर्पण जिसमें मॉरिशस की आज की पीढ़ी अपने पूर्वजों के महान योगदान को देखकर गर्व कर सकती है। इसी भाव के कारण मैंने दिवंगत श्री अजामिल माताबदल के सम्मुख इसके प्रकाशन का प्रस्ताव रखा था लेकिन उनके दिवंगत होने से यह आरंभ न हो सका तो '11वें विश्व हिंदी सम्मेलन' के मॉरिशस में आयोजित होने से मुझे यह अवसर मिला कि मैं इस ओर फिर प्रयत्न करूँ क्योंकि मेरा दृढ़ मत है कि 'दुर्गा' की सहज उपलब्धि में मॉरिशस के हिंदी जगत, उसके साहित्य एवं पत्रकारिता तथा उसके स्वाधीनता के संबंध में प्रवासी भारतीयों के योगदान के बारे में अनेक अज्ञात तथ्यों की जानकारी हो सकती है तथा इसका ज्ञान मॉरिशस को ही नहीं विश्व को भी होना चाहिए। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर मैंने 'विश्व हिंदी सम्मेलन, मॉरिशस', 2018 की पहली बैठक में ही 'दुर्गा' का प्रस्ताव रखा था। उसके बाद विदेशमंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज ने 19 मई, 2018 की बैठक में यह निर्णय किया कि 'दुर्गा' के सभी अंक जो लगभग 2000 पृष्ठ हैं, उनका तीन खंडों (1935, 1936 तथा 1937–38) में प्रकाशन होगा और कमल किशोर गोयनका इसका संपादन करेंगे और इसके प्रकाशन की रूपरेखा बनाएँगे। माननीया सुषमा जी ने कहा कि 'दुर्गा' का अभिलेखागरीय महत्व है और इसका मूल रूप से सुरक्षित रहना आवश्यक है। यह मॉरिशस तथा हिंदी विश्व के लिए एक उपलब्धि होगी।

'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका (1935–38) की उपलब्धि एवं प्रकाशन की इस पृष्ठभूमि के बाद उसके उपलब्ध इतिहास तथा उसके स्वरूप के संबंध में कुछ तथ्यों की जानकारी देना आवश्यक है जिससे 'दुर्गा' के अंकों को पढ़ने से पहले पाठक उसकी आत्मा को तथा उसके स्वरूप को समझ सकें। मैं मॉरिशस के हिंदी–प्रेमी तथा द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजक के रूप में सूरज प्रसाद मंगर 'भगत' के नाम से परिचित था, परंतु वे 'दुर्गा' के संपादक थे और वह हस्तलिखित थी, इसकी पहली बार जानकारी सोमदत्त बखोरी की पुस्तक 'एक मॉरिशसवासी की हिंदी यात्रा' से हुई थी। बखोरी सूरज प्रसाद मंगर 'भगत' के शिष्य थे और उन्होंने उनसे हिंदी सीखी थी। सूरज प्रसाद ने 'दुर्गा' पत्रिका निकाली तो बखोरी को भी लिखने के लिए प्रेरित किया। डॉ. लक्ष्मण प्रसाद रामयाद ने भी अपने अंग्रेजी शोध–प्रबंध में 'दुर्गा' का उल्लेख 'हिंदी प्रचारिणी सभा' की अनियतकालीन हस्तलिखित पत्रिका के रूप में किया है, परंतु यह अनियतकालीन नहीं थी। यह तो मासिक हस्तलिखित पत्रिका थी और एक पाठक (जो प्रायः लेखक होता था) से दूसरे पाठक तक स्वयं पहुँचाई जाती थी अथवा पाठक स्वयं हासिल करता था। डॉ. मुनीश्वर लाल चिंतामणि ने अपनी पुस्तक 'मॉरिशसीय हिंदी साहित्य' (द्वितीय भाग) में इसका उल्लेख मात्र किया है, लेकिन उनकी अन्य

पुस्तकों तथा 'मॉरिशस में हिंदी पत्रकारिता' शीर्षक अध्याय में 'दुर्गा' का उल्लेख नहीं है।

मॉरिशस की डॉ. विनोद बाला अरुण ने अपनी पुस्तक 'मॉरिशस की हिंदी कहानी–यात्रा' में अवश्य ही कुछ मूल्यांकन परक टिप्पणियाँ की हैं तथा 'दुर्गा' में प्रकाशित प्रायः सभी कहानियों की समीक्षा की है। यह पहला प्रयास है जब 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका को इतना महत्व दिया गया और यह माना गया कि इसके द्वारा हिंदी के लेखन को विकसित करने तथा भाषा से अपनी पहचान बनाने का स्तुत्य प्रयास किया गया। विनोद बाला अरुण ने लिखा है कि इन कहानियों के बिना मॉरिशस के कथा–साहित्य को नहीं समझा जा सकता और यह भी कि सूरज प्रसाद मंगर 'भगत' के वास्तविक योगदान का भी मूल्यांकन होना अभी शेष है।

मैं समझता हूँ, इस भूमिका की यही पृष्ठभूमि है और यही इसकी प्रेरणा–भूमि है। 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका के उल्लेख के बावजूद, मॉरिशस के अधिकांश इतिहासकारों, शोधार्थियों तथा समीक्षकों ने इसके महत्व को क्यों नहीं समझा, मेरे सामने यह एक बड़ा प्रश्न है। संभवतः इसके हस्तलिखित होने के कारण इसे महत्वहीन मान लिया गया, लेकिन इतिहासकारों को तो इसके मूल्य को समझना चाहिए था। भारत में हजारों पांडुलिपियाँ भोजपत्रों में उपलब्ध होती हैं, क्योंकि उस समय मुद्रण की तकनीक नहीं थी और वे ही ज्ञान–विज्ञान को सुरक्षित रखने तथा अध्ययन– अध्यापन का साधन थीं। विश्व के प्रायः सभी धार्मिक ग्रंथ तथा संस्कृत की अधिकांश प्राचीन पुस्तकें एवं कबीर, तुलसी, जायसी, सूरदास, बिहारी आदि की रचनाएँ भी हस्तलिखित रूप में ही मिलती हैं और ये सभी भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, कला और साहित्य की आधारभूत सामग्री बनती हैं। अतः 'दुर्गा' के मुद्रित न होने के कारण यदि इसकी उपेक्षा की गई तो यह खेद का विषय है। विनोद बाला अरुण के विवेचन से स्पष्ट है कि वे पहली समीक्षक हैं जिन्होंने 'दुर्गा' के सभी उपलब्ध अंकों को पहली बार विस्तार से देखा है और उनमें हस्तलिपि में लिखित सभी कहानियों का विवेचन किया है।

'दुर्गा' हस्तलिखित ऐसी पत्रिका है जिसके उद्देश्यों तथा रचनाओं की प्रकृति से इतिहास के कुछ ज्ञात तथ्यों की पुष्टि हो सकती है तथा अनेक अज्ञात एवं अकल्पनीय तथ्यों की स्थापना हो सकती है। 'दुर्गा' में प्रस्तुत साहित्यिक रचनाएँ मॉरिशस के इतिहास, हिंदू धर्म एवं संस्कृति, हिंदी भाषा तथा साहित्य, भारतवंशियों की मॉरिशसीयता, मॉरिशस–भारत के संबंधों आदि अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है, इसलिए उसके संपूर्ण अंकों का विवेचन–मूल्यांकन होना चाहिए। मैं यहाँ 'दुर्गा' के पहले वर्ष सन् 1935 के उपलब्ध सभी अंकों का संक्षिप्त अध्ययन एवं विवेचन प्रस्तुत कर रहा हूँ जिससे इसके संपूर्ण अध्ययन की महत्ता मॉरिशस के साहित्य–प्रेमियों को स्पष्ट हो सके। इस वर्ष के मार्च और दिसंबर के अंक अब उपलब्ध नहीं हैं।

1. पत्रिका का आवरण

'दुर्गा' के फरवरी, 1935 के अंकों में पाँच पृष्ठों के बाद लखनऊ (भारत) से प्रकाशित होने वाली हिंदी मासिक पत्रिका 'माधुरी' का आवरण काटकर चिपकाया हुआ है।

मॉरिशस में सन् 1935 से पूर्व भारत से हिंदी की प्रमुख पत्रिकाएँ आती थीं और वे मॉरिशस में हिंदी भाषा और साहित्य के वातावरण को निर्मित करने में महत्वपूर्ण योगदान कर रहीं थीं।

2. पत्रिका के उद्देश्य

'दुर्गा' के पहले अंक (जनवरी, 1935) में संपादक ने पत्रिका के सात उद्देश्यों की घोषणा की हैं। ये उद्देश्य इस प्रकार से हैं–

1. हिंदी नवयुवकों, हिंदी विद्यार्थियों में लेख लिखने का माद्दा पैदा करना।

2. हिंदी कैसी जानदार और शानदार भाषा है अंग्रेज–फ्रेंच पर लट्टू रहने वालों को दिखाना।

3. हमारी मुर्दा कौम में क्रांति की रूह फूँकना।

4. हिंदू नवयुवकों को कर्म–पथ पर अग्रसर करना।

5. राजनीति किस चिड़ियाँ का नाम है, उससे हिंदुओं को परिचित कराना।

6. हिंदू धर्म का रहस्योद्घाटन करना।

7. हिंदी–हिंदी–हिंदी के नाद से दिग्दिगंत को मुखरित करना।

मेरे विचार से ये उद्देश्य मॉरिशस में जन्म लेने वाली वैचारिक क्रांति के प्रमाण और प्रतीक हैं। 'दुर्गा' हिंदू जाति, धर्म, संस्कृति, हिंदी भाषा और मॉरिशसी अस्मिता का शंखनाद करती है। 'दुर्गा' के ये उद्देश्य उसके बाद के अंकों में बार–बार लिखे जाते हैं, जिससे उसके नए–नए रचनाकार–पाठकों को उनकी जानकारी होती रहे और वे सांस्कृतिक–राष्ट्रीय–जागरण के मिशन में साथ हो सकें।

3. लेख तथा लेखकों के नियम

'दुर्गा' के पहले अंक में और बाद में भी कभी–कभी, लेख एवं लेखकों के नियम स्पष्ट किए गए हैं। संपादक ने इस प्रकार लेखक एवं लेखों के चयन की नीति बनाई और उसे पहले अंकों में घोषित किया। 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका थी और उसके पाठक प्रायः उसके लेखक ही हो सकते थे, इसलिए इन नियमों में इन स्थितियों का उल्लेख मिलता है।

'दुर्गा के नियम लेख संबंधी बातें' शीर्षक से ढाई पृष्ठों में लिखित ये नियम इस प्रकार से हैं–

1. 'दुर्गा' हर एक अंग्रेजी मास के प्रथम सप्ताह में प्रकाशित हुआ करेगी।

2. 'दुर्गा' हर एक लेखक को बिना मूल्य सर्वप्रथम पढ़ने को मिलेगी। जो लेखक स्थानीय न होंगे वे डाक खर्च भेज कर प्रकाशक से मँगा सकते हैं।

3. 'दुर्गा' को हर एक पाठक अपने पास दो दिन से अधिक नहीं रख सकता। अस्थानीय लोगों पर यह नियम लागू न होगा।

4. लेखकों के अलावा अन्य शिक्षित पाठक भी पढ़ने के अधिकारी हैं, बशर्ते कि वे पत्रम्–पुष्पम् सहायता के रूप में देवें।

5. प्रकाशक की आज्ञा बिना किसी भी (कोई भी) पत्रकार 'दुर्गा' के लेख उद्धृत करने के अधिकारी नहीं हैं।

6. घासलेट लेख न लिखे जाएँगे। विशेषतः राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा धार्मिक लेख लिखे जाएँगे। वीर रस संबंधी लेख हमेशा स्वीकृत हैं।

7. लेख साफ और मोटे हरफों में आने चाहिए। गाली–गलौज तथा व्यक्तिगत आक्षेपपूर्ण लेख को हमेशा बहिष्कृत समझना चाहिए।

8. लेखक को काग़ज कलम दवात न दिए जाएँगे। चार (बाद में आठ हो गए) फुल काग़ज से अधिक लेख न होने चाहिए।

9. लेख हमेशा सुंदर ग्लेज़ पेपर पर ही लिख कर भेजना चाहिए।

10. यदि लेखक अपना लेख सचित्र प्रकाशित करवाना चाहे, तो चित्रों का प्रबंध लेखक को ही करना चाहिए।

11. संपादक को लेखों को कतर–व्योंत करने का अधिकार है। संपादक के लिए पृष्ठ को दोनों ओर मार्जिन छोड़ने चाहिए।

इन नियमों में एक पर यहाँ टिप्पणी करना चाहूँगा। क्रम संख्या 6 में 'घासलेट लेख' के न छापने का उल्लेख है, परंतु मॉरिशस के हिंदी पाठक शायद इस 'घासलेट' शब्द का संदर्भ न समझ पाएँ, क्योंकि यह शब्द भारत से गया है। 'विशाल भारत' के संपादक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने हिंदी के गंदे और नग्न साहित्य को 'घासलेटी साहित्य' (कभी 'चाकलेटी' भी) घोषित कर 'विशाल भारत' में सन् 1929 में एक आंदोलन चलाया था और इसके दिसंबर, 1929 के अंक में 'घासलेट–विरोधी आंदोलन का उपसंहार' शीर्षक से अंतिम लेख लिखा। इस लेख में प्रेमचंद के विचारों को भी उद्धृत किया गया है। प्रेमचंद ने लिखा कि 'नग्न कुवासनाओं का निदर्शन' करने वाला घासलेटी साहित्य बहुत

ही हानिकारक है उन्होंने आगे कहा कि साहित्य का उद्देश्य ही चरित्र का निर्माण है, इसलिए साहित्य–रचना में अपने आदर्शों और उद्देश्यों को पवित्र रखना चाहिए। इस प्रकार 'दुर्गा' में 'घासलेट' शब्द के प्रयोग से दो निष्कर्ष निकलते हैं– (1) 'दुर्गा' के आरंभ होने से पूर्व 'विशाल भारत' हिंदी मासिक पत्रिका भी मॉरिशस पहुँचती थी। 'विशाल भारत' सन् 1928 से कलकत्ता से आरंभ हुई थी और पं. बनारसीदास चतुर्वेदी इसके संपादक थे। इस प्रकार मॉरिशस में हिंदी की नई–नई साहित्यिक पत्रिकाएँ पहुँच रही थीं और मॉरिशस में हिंदी एवं हिंदी साहित्यकारों को प्रभावित कर रही थीं। (2) 'दुर्गा' संपादक घासलेटी लेख के बहिष्कार में एक प्रकार से प्रेमचंद और बनारसीदास चतुर्वेदी की मान्यताओं का ही समर्थन कर रहे थे। उन्हें भी भारत के समान अपने देश में कामुकता और नग्नता के विरोध में ही देश का निर्माण दिखाई दे रहा था।

4. पत्रिका का नामकरण 'दुर्गा' क्यों?

'दुर्गा' के पहले अंक में इसके संपादक 'ज्वालामुखी' (सूर्यप्रसाद मंगर 'भगत') ने 'सिहंनाद' शीर्षक से संपादकीय लिखा हैं इसमें चार टिप्पणियाँ हैं– 'दुर्गा', 'दुर्गा नाम क्यों पड़ा', 'प्राइमरी स्कूलों में हिंदी', तथा 'लेखकों को धन्यवाद'। ज्वालामुखी गरीब है, खेतों में काम करके दो रोटी कमाते हैं, लेकिन साधनहीन होने के कारण हाथ पर हाथ रखना कायरता समझते हैं। महात्मा गांधी का उदाहरण उनके सामने है। वे 'दुर्गा' में टिप्पणी लिखते हैं, "महात्मा जी केवल मात्र लंगोटी धारण कर संसार की सबसे जबर्दस्त शक्ति को हिला सकते हैं तो हम गरीब होने पर, साधनहीन होने पर हिंदुओं में क्रांति की लहर–एक हस्तलिखित पत्रिका के द्वारा दौड़ा नहीं सकते?" इस संकल्प में एक अग्नि है, एक क्रांति है, नवजागरण की आँधी है।

ज्वालामुखी पत्रिका के नामकरण पर लिखते हैं, "हमारा मत तो इस पत्र का नाम 'क्रांतिकारी' रखने का था, लेकिन मित्रमंडली ने इसे ज़रा गर्म समझा और इस नाम से कोई पत्र निकालने की मनाई की। किसी ने कहा कि 'ज्वाला' नाम रखो, किसी ने कहा 'अंधेर', किसी ने कहा 'अभिमन्यु'। अनेक वाद–विवाद के बाद हमारे मित्र श्री केशव देव जी, हिंदी के ख्यात नाम, लेखक ने 'दुर्गा' नाम रखने का प्रस्ताव रखा। यह नाम सभी को ठीक जँचा। हमारा उद्देश्य हिंदुओं में क्रांति करना है।"

सूर्यप्रसाद मंगर भगत में विवेकानंद, स्वामी दयानंद, महात्मा गांधी, सुभाषचंद्र बोस आदि का संश्लिष्ट भाव और बेचैनी है। वे 'दुर्गा' से हिंदुओं में क्रांति उत्पन्न करना चाहते हैं, जैसे प्रेमचंद और गांधी के स्वाधीनता महासमर' में 'हंस' पत्रिका (सन् 1930) को आरंभ करके राम के सेतु–बंध में गिलहरी जैसा योगदान करने का संकल्प लेते हैं। प्रेमचंद इसे सन् 1930 में कर रहे थे और सूर्यप्रसाद मंगर भगत 'ज्वालामुखी' के नाम से जनवरी, 1935 में मॉरिशस में कर रहे थे। दोनों लेखक एक समान रूप में ही अपने–अपने देश में क्रांतिकारी परिवर्तन का आह्वान कर रहे थे।

5. संपादकीय टिप्पणियों का स्वरूप

'दुर्गा' के सन् 1935 के उपलब्ध दस अंकों में संपादकीय टिप्पणियाँ दो प्रकार की हैं–

(1) 'सिंहनाद' शीर्षक से विभिन्न विषयों पर संपादकीय विचार।

(2) पत्रिका के विभिन्न स्थानों पर छोटे–छोटे वाक्यों में पाठकों को संदेश तथा चेतावनियाँ पहले 'सिंहनाद' के संपादकीयों पर विचार करते हैं। 'दुर्गा' के जनवरी अंक में चार, फरवरी में तीन, अप्रैल में चार, मई में पाँच, जून में सात, जुलाई में सात, अगस्त में छह, सितंबर में पाँच, अक्तूबर में छह, तथा नवंबर में सात संपादकीय टिप्पणियाँ हैं। इस प्रकार इस वर्ष के दस अंकों में कुल चौवन टिप्पणियाँ हैं। ये संपादकीय टिप्पणियाँ प्रायः भारत की तत्कालीन हिंदी पत्रिकाओं के संपादकीयों की पद्धति पर ही लिखी गई हैं। इन हिंदी पत्रिकाओं में 'माधुरी', 'मर्यादा', 'हंस',

'चाँद', 'विशाल भारत', 'विश्व–मित्र' आदि पत्रिकाओं को देखा जा सकता है। 'दुर्गा' के इन चौवन संपादकीयों का विषय मॉरिशस, भारत और विश्व की घटनाएँ हैं। कुछ महत्वपूर्ण टिप्पणियों के शीर्षक उल्लेखनीय हैं–

1. प्राइमरी स्कूलों में हिंदी–जनवरी, 1935
2. प्राइवेट स्कूलो के हिंदी अध्यापक–फरवरी, 1935
3. मॉरिशस के विद्वान–फरवरी, 1935
4. राष्ट्र संघ में फरियाद–अप्रैल, 1935
5. सम्राट की रजत जयंती (जुबिली)–मई, 1935
6. भारतीय व्यवस्थापिका सभा–मई, 1935
7. पोर्ट लुइस शहर निर्माण का द्वयाष्टि महोत्सव–जून, 1935
8. कुली शताब्दी– जून, 1935
9. भारत में फिर भूकंप–जुलाई, 1935
10. इटली तथा अवसीनिया–जुलाई, 1935
11. हमारी चीनी–मूल्य का ह्रास–अगस्त 1935
12. कुली शताब्दी–अगस्त, 1935
13. डॉक्टर रामगुलाम का स्वागत–अगस्त, 1935
14. प्रवासी शताब्दी–सितंबर, 1935
15. जातीय सभाएँ–सितंबर, 1935
16. हिंदी साहित्य सम्मेलन की आवश्यकता–सितंबर, 1935
17. विशेषांक के संबंध में– नवंबर, 1935
18. घृणा व्यंजक 'मालबार' शब्द–नवंबर, 1935
19. उद्योग धंधे और हम–नवंबर, 1935
20. स्वागत का रोग–नवंबर, 1935

'दुर्गा' के सभी संपादकीयों को एक पुस्तक में संकलित करके प्रकाशित किया जाना चाहिए। इन संपादकीयों में उस काल–खंड का इतिहास है तथा हिंदी पत्रकारिता का वह श्रेष्ठ रूप है जिस पर मॉरिशस को गर्व हो सकता है। 'दुर्गा' के इन संपादकीयों में संपादक की अपने देश, धर्म, संस्कृति, जाति, भाषा तथा मनुष्यता के प्रति जो दृष्टि है, वह उसे भारत के विख्यात संपादकों (महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, दुलारे लाल भार्गव, आदि) की कोटि में रख देता है। 'दुर्गा' की संपादन–कला तथा संपादकीयों पर यदि कोई स्वतंत्र शोध–कार्य हुआ तो मुझे विश्वास है कि वह मॉरिशस की हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में देदीप्यमान ज्योति–स्तंभ की तरह चमकता हुआ दिखाई देगा। 'दुर्गा' हस्तलिखित हिंदी पत्रिका होने पर भी वह हिंदी पत्रकारिता का उस काल–खंड में मानक उपस्थित करने वाली पत्रिका है।

'दुर्गा' संपादक की कुछ टिप्पणियाँ पत्रिका में यत्र–तत्र मिलती हैं। ये टिप्पणियाँ खाली स्थानों को भरने के लिए हैं या कई बार बाएँ खाली पृष्ठ पर लिखी गई हैं, पर ये किन्हीं उद्देश्यों के लिए हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना समीचीन होगा–

1. आगामी 3 मार्च को शिवरात्रि महापर्व मनाइए। (फरवरी, 1935)
2. पाठकों से निवेदन–प्रिय पाठकगण, दुर्गा बिल्कुल राजनीतिक पत्रिका है। आप अनाधिकारियों को पढ़ने को न दीजिएगा, क्योंकि हम दोनों की हानि है और 'दुर्गा' सरकारी नियमानुसार रजिस्टर्ड नहीं है। (फरवरी, 1935)
3. संसार का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष कौन है? महात्मा गांधी। (फरवरी, 1935)
4. संघ शक्ति कलियुग। (फरवरी, 1935)
5. क्या आप अल्प समय में लेखक बनना चाहते हैं तो 'दुर्गा' में लेख लिखिए। (अप्रैल, 1935)
6. आपस में हिंदी में ही वार्तालाप कीजिए। गोरे विदेशी भाषा में क्यों बोलते हैं, इसलिए कि उनमें राष्ट्रीयता है। (मई, 1935)
7. लेखकों के हित की बात–आप हमेशा मौलिकता की ओर ध्यान दीजिए। किसी का लेख चोरी न कीजिए। धार्मिक कट्टरता और अंधविश्वास को दूर ही से नमस्कार कीजिए और साफ सुंदर अक्षरों में लिखिए। (जून, 1935)

8. सभी नवयुवकों का एक ही उद्देश्य हो–हिंदी का प्रचार करना। (जून, 1935)

6. साहित्यिक रचनाएँ

'दुर्गा' के उपलब्ध दस अंकों के लगभग 580 पृष्ठों में साहित्य की विभिन्न विधाओं की रचनाएँ हैं, जिनसे इस काल–खंड (वर्ष 1935) के हिंदी–संसार का ज्ञान होता है। इन विधाओं में कविता, कहानी, निबंध आदि ऐसी विधाएँ हैं जो इस समय तक मॉरिशस के हिंदी–संसार में प्रचलित हो चुकी थी, परंतु गद्य–गीत, पुस्तक–समीक्षा, प्रहसन, इंटरव्यू आदि ऐसी विधाएँ हैं, जिनका उद्भव 'दुर्गा' की हस्तलिखित रचनाओं से होता है। यहाँ इस साहित्यिक सामग्री का विवेचन उपयुक्त होगा।

(क) कविता

'दुर्गा' के उपलब्ध दस अंकों में तेरह मौलिक, दस भारतीय पत्रिकाओं से उद्धृत, दो मूल संस्कृत में तथा एक कविता मूल संस्कृत में तथा एक कविता संस्कृत से अनुवाद करके प्रस्तुत की गई है। यदि 'दुर्गा' के संपूर्ण अंकों का सर्वेक्षण किया जाए तो यह स्थिति एकदम बदल जाएगी, परंतु मेरा विश्वास है कि काव्यगत प्रवृत्तियों में अंतर नहीं पड़ेगा। 'दुर्गा' में 'गीता' के श्लोक यदा (अगस्त) तथा प्रसिद्ध संस्कृत के राष्ट्रीय गीत 'वन्दे मातरम्' (अगस्त) की उपस्थिति चाहे आश्चर्यजनक न हो, परंतु 'कुमुद' वटु द्वारा भार्गव भूषण की संस्कृत कविता का अनुवाद 'पंच–पल्लव' नाम से अगस्त अंक में प्रकाशित कराना एक नए विमर्श की ओर हमें ले जाता है। इससे स्पष्ट है कि सन् 1935 से पूर्व भारत से संस्कृत विद्वान मॉरिशस पहुँच गए थे और वे संस्कृत साहित्य से प्रवासी भारतीयों को परिचित ही नहीं करा रहे थे, अपितु संस्कृत भाषा की रचनाओं के हिंदी में भी अनूदित कराकर हिंदी साहित्य का हिस्सा बनवा रहे थे। मैथिलीशरण गुप्त की दो अंकों में (फरवरी एवं सितंबर) नामोल्लेख से कविताएँ उद्धृत की गई हैं। मॉरिशस की हिंदी पत्रिका – चाहे मुद्रित हो या हस्तलिखित, यह एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है कि उनमें भारतीय कवियों की कविताएँ उद्धृत की जाती रही हैं। इससे भारत के राष्ट्रीय, मानवीय एवं सांस्कृतिक मूल्यों को मॉरिशस के भारतवंशियों में जीवित रखना संभव था और साथ ही भारत की हिंदी कविता के स्वरूप को बताना और उससे जोड़ना भी आसान था। मॉरिशस की हिंदी काव्य–धारा के उद्भव और विकास में इन उद्धृत हिंदी कविताओं के महत्व को अस्वीकार करना उचित न होगा। प्रह्लाद रामशरण ने सन् 1913 से 1960 तक मॉरिशस की पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित लगभग 300 अज्ञात एवं अनुपलब्ध कविताएँ खोजीं और उन्हें खंडों में प्रकाशित भी किया।

'दुर्गा' में प्रकाशित मौलिक कविताओं में जनवरी में एक, फरवरी में एक, अप्रैल में तीन, मई में तीन, जून में एक, जुलाई में दो तथा अक्तूबर अंक में दो कविताएँ मिलती हैं। इनकी कुल संख्या इस प्रकार तेरह है। इनमें कुछ भक्तिपरक कविताएँ हैं, माँ और भारत–भूमि पर हैं, एक स्वामी दयानंद पर है और 'शोभते पण्डा' जैसी लघु व्यंग्य कविता भी है। मई अंक में प्रस्तुत कविता– 'नवल वधू सी इठलाती/ऊष्मा आती मुसकाती' – एक सुंदर कविता है, जिसमें छायावाद का स्पर्श है, परंतु इसके रचियता का नाम नहीं दिया गया है। ये कविताएँ प्रायः साधारण हैं, परंतु उस युग की काव्य–मनोभूति के ही अनुरूप हैं। अतः इन्हें भी प्रह्लाद रामशरण को 'मॉरिशस के मध्यकालीन काव्य–प्रसून' में संकलित करके इस उपेक्षित सामग्री को भी उचित सम्मान देना चाहिए था।

(ख) कहानी

'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका में प्रकाशित कहानियों की विस्तृत चर्चा पहली बार डॉ. विनोद बाला अरुण ने अपनी पुस्तक 'मॉरिशस की हिंदी कथा–यात्रा' में की है तथा कहानी–विधा को विकासशील बनाने तथा हिंदी भाषा से अपनी पहचान बनाने के प्रयास की सराहना की है। दुर्भाग्य यह है कि मॉरिशस के खोजी साहित्यकारों ने 'दुर्गा' में

प्रकाशित कहानियों को अभी तक संकलित करके पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित नहीं कराया। इस कालखंड (1935–38) में लगभग 20–25 कहानियाँ छपी होंगी।

(ग) निबंध

'दुर्गा' के इन दस अंकों में निबंधों की संख्या सबसे अधिक है, बल्कि कहना उचित होगा कि इस पत्रिका की मुख्य विधा ही निबंध है। 'दुर्गा' का आरंभ ही वैचारिक क्रांति के लिए हुआ था, इसलिए वैचारिक उद्‌बोधन वैचारिक उद्‌वेलन तथा वैचारिक क्रांति के लिए निबंध ही सबसे अधिक उपयोगी हो सकते थे। इन दस अंकों में पचास से ऊपर निबंध हैं। इनके विषय प्रमुख रूप से– भारत माता, हिंदू धर्म एवं जाति, हिंदी की दुर्दशा और चुनौतियाँ, समाज–सुधार, नारी चेतना, राष्ट्र–चेतना, स्वास्थ्य, अस्मिता और उसका संघर्ष, घुड़–दौड़ आदि का उल्लेख किया जा सकता हैं। इन निबंधों में मॉरिशस के हिंदू समाज ने अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य पर आलोचनात्मक दृष्टि डाली है तथा अपने निष्कर्षों से अपने समाज को दिशा देने का प्रयत्न किया है। इन निबंधों में हिंदू धर्म एवं जाति तथा हिंदी भाषा पर सर्वाधिक निबंध हैं और मॉरिशस में हिंदू, हिंदी तथा हिंदुस्तानी मॉरिशसीयता को सशक्त बनाने का संकल्प है। भारतेंदु युग का भारतीय पुनर्जागरण 'हिंदू पुनर्जागरण' ही था। डॉ. नामवर सिंह ने सन् 1987 में 'जनसत्ता' अखबार में लिखे लेख में भारतेंदु को 'हिंदू पुनरुत्थानवादी' कहा था। भारतेंदु ने 1877 में बलिया में दिए भाषण में कहा था कि जो हिंदुस्तान में रहे, वह हिंदू है। भारतेंदु के अनुयायी पं. प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' पत्रिका के 15 जुलाई, 1892 के अंक में 'हिंदू–जागरण' का यह प्रसिद्ध नारा दिया था, "चहहू जो सांचहू निज कल्यान, तौ सब मिली भारत–संतान। जपो निरंतर एक जवान, हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान।" भारत के उस हिंदू जागरण के प्रभाव के रूप में 'दुर्गा' की इस हिंदू जागृति को समझा जा सकता है।

'दुर्गा' के दस अंकों में सर्वत्र हिंदू जाति का ऐसा कठोर आलोचनात्मक आत्म–मंथन देखा जा सकता है। लेखकों ने तटस्थता के साथ हिंदू जाति के पतन और दुर्बलताओं का मूल्यांकन किया है, लेकिन वे हिंदू जाति की श्रेष्ठता का बखान करते हुए भारत में हिंदुओं के संघर्ष की चर्चा भी करते हैं, परंतु वे प्रमुख रूप से मॉरिशस के हिंदू समाज को जागृत करना चाहते हैं। कई लेखकों ने मॉरिशस के मुसलमानों, ईसाइयों, चीनियों, क्रिओलों आदि से हिंदू समाज की तुलना भी की है। और हिंदू जाति की भर्त्सना भी की है। यह आलोचनात्मक आत्म–मंथन है, अमृत और विष को पहचानने की व्याकुलता है और मॉरिशस में हिंदू समाज को सम्मानित स्थान दिलाने का ठोस आंदोलन है। इस प्रकार 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका हिंदू जागृति और हिंदू क्रांति की पत्रिका है।

'दुर्गा' के सन् 1935 के अंक हिंदी भाषा के आंदोलन को राष्ट्रव्यापी बनाते हैं। मॉरिशस में भारतवंशी हिंदू ही हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार के लिए कटिबद्ध होते हैं, परंतु 'दुर्गा' से लगता है कि हिंदी भाषा का प्रश्न एक राष्ट्रीय प्रश्न बन गया था। 'दुर्गा' के उद्‌देश्यों में तीन उद्‌देश्य हिंदी भाषा से ही संबंधित थे, यथा– (1) हिंदी विद्‌यार्थियों में लेख लिखने का माद्‌दा पैदा करना, (2) हिंदी कैसी जानदार और शानदार भाषा है, अंग्रेजी–फ्रेंच पर लट्टू रहने वालों को दिखाना, तथा (3) हिंदी–हिंदी–हिंदी के नाद से दिग्‌दिगंत को मुखरित करना। ये उद्‌देश्य एक प्रकार से हिंदी भाषा की श्रेष्ठता और उसके द्‌वारा मॉरिशस राष्ट्र के निर्माण तथा अपनी अस्मिता एवं संस्कृति की रक्षा के लिए थे। उस समय हिंदी भाषा ही भारतवंशियों के लिए भारतीय होने की सबसे बड़ी पहचान थी और स्वाभाविक था कि वे अपनी भारतीय पहचान बनाए रखने के लिए हिंदी भाषा की रक्षा ही नहीं करें, उसका विस्तार करें और उससे मॉरिशस के भविष्य का निर्माण करें।

(घ) गद्‌य की नई विधाओं का आरंभ–

'दुर्गा' के इधर के अध्येताओं ने उसके अंकों को उसकी समग्रता में देखने की कोशिश नहीं की जिसका परिणाम यह हुआ कि 'दुर्गा' के गद्य की नई–नई विधाओं के श्रीगणेश करने का महत् योगदान सामने नहीं आ सका। श्रीमती विनोद बाला अरुण संभवतः पहली ऐसी शोधार्थिनी थीं जिन्होंने सन् 1980 में मॉरिशस की हिंदी कहानी–यात्रा पर कार्य करते हुए 'दुर्गा' के संपूर्ण अंकों को देखा था और उसमें संकलित कहानियों का विवेचन किया था। इस प्रयास की आवृत्ति नहीं हुई, यहाँ तक कि साहित्य खोजी प्रह्लाद रामशरण भी 'दुर्गा' की हस्तलिखित कविताओं को महत्व नहीं दे पाए। मेरा मत है कि सूर्यप्रसाद मंगर भगत के सम्मुख 'दुर्गा' को हस्तलिपि में प्रकाशित करके उस आदर्श को प्रतिरूप देने के साथ हिंदी पत्रकारिता में एक नई क्रांति कर रहे थे। यह क्रांति 'दुर्गा' में गद्य की नई–नई विधाओं को आरंभ करने में भी देखी जा सकती है। हस्तलिखित पत्रिका निकालने के कष्टों और बाधाओं में रचनाएँ लिखवाने की संपादकीय कल्पना पर आश्चर्य होता है। सूर्यप्रसाद मंगर भगत के सम्मुख मॉरिशस में हिंदी की प्रतिष्ठा एवं उसका प्रचार–प्रसार करने के उद्देश्य के साथ हिंदी में साहित्य का बहुविधाओं में विकास भी रहा है जो उस काल–खंड में हिंदी के संपादक के रूप में उनकी महत् भूमिका को रेखांकित करता है। उन्होंने 'दुर्गा' के द्वारा गद्य की अनेक विधाओं का मॉरिशस में शुभारंभ किया, जिसका उल्लेख इतिहास की पुस्तकों में न करके इतिहासकारों ने उनके साथ न्याय नहीं किया। यहाँ ऐसी ही कुछ गद्य विधाओं के शुभारंभ के प्रमाण उल्लेखनीय हैं।

(अ) पुस्तक–समीक्षा

'दुर्गा' के जनवरी, 1935 के अंक में पं. यदुनंदन शर्मा 'सुधांशु' की सन् 1934 में प्रकाशित भक्ति एवं वंदना परक गीतों की पुस्तक 'कृष्ण की वंशी' की समीक्षा मिलती है। यह पुस्तक समीक्षा 'केशवदेव' के छद्म नाम से लिखने वाले हिंदी–प्रेमी नेमनारायण गुप्त ने लिखी है। समीक्षक ने पुस्तक की प्रशंसा की है और अंत में नाम लिखा है," जय हिंदी, हिंदुस्तान, दुनिया रखे तेरी सान"। मेरे विचार में पुस्तक–समीक्षा विद्या का यह आरंभ है। पुस्तक–समीक्षाएँ फरवरी, जुलाई, अक्तूबर तथा नवंबर के अंकों में भी मिलती हैं। जुलाई अंक में 'चंद्रकांता', 'प्रेम–प्रसून' (प्रेमचंद), 'बहता हुआ फूल' (रूपनारायण पांडेय) का परिचय मिलता है।

(आ) गद्य–गीत

'दुर्गा' के जून अंक में विद्यावती का गद्य–गीत 'अनत पथिक' एवं गोपाल देवी का 'भावना' तथा जुलाई में लेखक 'के' का 'हा हरि! तू किधर है' गद्य–गीत प्रकाशित हुए हैं। यह उसी का प्रभाव है, परंतु खेद है मॉरिशस के बाद के हिंदी लेखकों ने इस विधा को आगे नहीं बढ़ाया और उसे मर जाने दिया।

(इ) संस्मरण

'दुर्गा' के अगस्त अंक में वासुदेव का संस्मरण 'श्रद्धानंदाश्रम में दस मिनट' तथा सितंबर अंक में 'पोर्टलुईश शहर की प्रदर्शनी' (अक्तूबर में भी शेषांश) प्राप्त होते हैं। ये एक प्रकार से संस्मरण ही हैं जो शायद पहली बार लिखे गए हैं।

(ई) नाटक

'दुर्गा' में शुद्ध नाटक तो नहीं, लेकिन उसका आरंभिक रूप देखा जा सकता है। जुलाई, 1935 में केशवदेव की रचना 'प्राचीन मारीच द्वीप' संकलित है। इसमें नाटकीय रचना की प्रवृत्ति है।

(उ) अनुवाद

'दुर्गा' में फ्रेंच, संस्कृत, गुजराती आदि भाषाओं से अनुवाद मिलते है। फ्रेंच से अनुवाद हैः

(1) चुटकुले (जनवरी), (2) मॉरिशस के हिंदुओं की स्थिति–फ्रेंच भाषण का भावानुवाद (जून, अनुवादक चिनगारी), (3) परिवर्तन–फ्रेंच भाषण का भावनावुाद (जुलाई, अनुवादक चिनगारी), (4) एक गरीब बच्चे का हृदय–फ्रेंच कहानी के आधार पर (अक्तूबर–सुखदेव विष्णुदयाल)।

संस्कृत भाषा से अनुवाद

भार्गव भूषण की संस्कृत कविता संग्रह से क्रेवकेर, मोंताई लोंग के 'कुमुद' वटु का हिंदी अनुवाद 'पद्य पल्लव' अगस्त, 1935 के अंक में प्राप्त होता है। यह एक नया तथ्य है और संभवतः एक नया आरंभ भी। मॉरिशस में हिंदी भाषा के विकास में संस्कृत भाषा के योगदान की खोज की जानी चाहिए।

गुजराती भाषा से अनुवाद

1. चोरी का फल, मृत्यु– दो लघुकथाएँ (मई, गुजराती 'इल्म' पत्रिका से), 2. अमूल्य उपदेशमाला (जून, गुजराती 'इल्म' से), 3. विश्व विचित्र (जुलाई, 'गुजराती मित्र' से), 4. उपदेशमाला (जुलाई, 'इल्म' से) 5. बदला (जनवरी, जॉन बुल), 6. जर्मनी में क्या हो रहा है (सितंबर, हेराल्ड प्रलास्किट) ये अनुवाद एक विकसित पत्रकारिता के प्रमाण हैं। 'दुर्गा' का यह प्रयास सराहनीय है।

(ऊ) लघुकथा

'दुर्गा' में दो लघुकथाएँ मिलती हैं– (1) 'पागल प्रलाप' (जुलाई) तथा (2) 'शरीफ आदमी और मंगते।' आज मॉरिशस में अभिमन्यु अनत, रामदेव धुरंधर, बीरसेन जागासिंह आदि ने लघुकथा का जो विकास किया है, उसका आदि रूप इन लघुकथाओं में देखा जा सकता है।

(ए) इंटरव्यू

'दुर्गा' के अक्तूबर, 1935 के अंक में 'इंटरव्यू (भेंट)' रचना से मॉरिशस के हिंदी साहित्य में 'इंटरव्यू' विधा का आरंभ होता है। इसका शीर्षक है– 'इंदुभूषण से इंटरव्यू' के लिए हिंदी शब्द 'भेंट' दिया है जो इधर कुछ वर्षों से भारत में इंटरव्यूकार प्रयोग कर रहे हैं। सन् 1935 में भारत में 'इंटरव्यू' के लिए 'भेंट' शब्द का प्रयोग होता हो तो मुझे इसकी जानकारी नहीं है। यह संपादक की भाषा–क्षमता का प्रमाण है कि उसने अंग्रेजी शब्द 'इंटरव्यू' के लिए सटीक हिंदी शब्द दिया है। 'दुर्गा' संपादक अपने मित्र खनखन को साहित्यकार इंदुभूषण का इंटरव्यू लेने भेजता है कि क्या वास्तव में उन्होंने साहित्य से संन्यास ले लिया है। इसमें इंदुभूषण 'दुर्गा' संपादक सूर्यप्रसाद मंगर भगत का छद्म नाम है और खनखन भी वही है। इस प्रकार भगत स्वयं ही अपना इंटरव्यू लेकर 'इंटरव्यू' की एक नई विधा का आरंभ करते हैं। भगत की यह उपलब्धि मॉरिशस के हिंदी साहित्य के इतिहास में यथास्थान रेखांकित होनी चाहिए।

(ऐ) व्याख्यान

मई अंक में चमूपति एम. ए. का 'श्रीमद्धयानंद जन्म शताब्दी के अवसर पर पं. चमूपति एम.ए. का व्याख्यान' शीर्षक से एक व्याख्यान है। यह भी व्याख्यान देने की एक नई परंपरा का आरंभ है।

(ओ) पत्र

नवंबर अंक में 'पत्र' विधा में एक साहित्यिक रचना मिलती है। उसका शीर्षक है– 'स्वर्ग की चिट्ठी' लेखक हैं स्वर्गीय शिशिर चंद्र, पता है– स्वर्गधाम, आनंद कानन से, तिथि है– 20–10–35। चिट्ठी स्वर्ग से लिखी गई है और इस पते पर आती है– श्री ज्वालामुखी, धारा नगरी। यह भी संपादक की रचना है जो मौलिकता और कल्पनाशीलता का प्रमाण है।

(औ) जीवन–चरित्र

नवंबर अंक में ही एक प्रवासी भारतीय का जीवन–चरित्रात्मक लेख 'मॉरिशस के हीरे' दिया गया है। यह जीवन–चरित्र का आरंभिक रूप है।

इनके अतिरिक्त 'विज्ञान–वार्ता' (जुलाई, अगस्त, सितंबर), 'चिकित्सा विज्ञान' (अगस्त, अक्तूबर), 'नेताओं के विचार' (जून) आदि नए–नए स्तंभ भी 'दुर्गा' में देखे जा सकते हैं। 'दुर्गा' को संपादक ने सचित्र मासिक बनाने का भी भरपूर प्रयत्न किया है। इसके दस अंकों में लगभग छह चित्र हैं। इनमें रंगीन, श्वेत–श्याम, रेखा–चित्र, पेंसिल से बनाए चित्र सभी प्रकार के चित्र हैं। रंगीन चित्र प्रायः भारत की हिंदी पत्रिकाओं से काटकर चिपकाए हुए हैं। यह प्रयास निश्चय ही हस्तलिखित पत्रिका को नई ऊचाईयाँ देता है। इसी प्रकार इन अंकों में लगभग बीस कार्टून भी हैं जो लेखकों/पाठकों के द्वारा बनाए गए हैं। ये

कार्टून हिंदू जाति की दुर्दशा के साथ इस समाज की बुराइयों पर तीखा–व्यंग्य करते हैं। ये सूर्यप्रसाद मंगर भगत की संपादन–कला की मौलिकता और श्रेष्ठता का प्रमाण हैं। ये पत्रिका को आधुनिक रूप देने की चेष्टा का भी प्रमाण हैं। 'दुर्गा' में लगभग पंद्रह विज्ञापन भी छपे हैं जो एक सर्वथा नई बात है। हस्तलिखित पत्रिका में वस्तुओं के प्रचार के लिए विज्ञापन देने की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता, परंतु संपादक ने यह चमत्कार भी कर दिखाया है। जनवरी अंक से विज्ञापन का एक उदाहरण प्रस्तुत है।

मिठाई

पोट्र लुईस निवासी श्री पं. अर्जुन मिश्र और द्वारका मिश्र जी की दुकान में खाने–पीने की हर तरह की सुविधा है– शहर जाएँ तो तशरीफ रखीएगा, ननखताई और अमरतमयी चहा। मत भूलिए वर्ना पछिताओगो?

एजेंट ननखताई–बदामी हलवा नं.1/1/2 सुतरफेन गली, मुड़ीया पहाड़ केंटीन 'दुर्गा' में 'प्राप्ति स्वीकार' (अप्रैल), 'मृत्यु सूचना' (जून, जुलाई), 'स्वागतविवाह संस्कार' (जुलाई), 'स्थानीय समाचार' (जून), 'सम्मतियाँ' आदि स्तंभों को भी यदाकदा स्थान दिया गया है। जुलाई अंक में पं. आत्माराम का 'दुर्गा' पर पत्र दिया गया है जो एक प्रकार से पाठक का अभिमत ही है। इसी अंक में लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी 'रसपुंज' का भी चार पृष्ठों का पत्र 'आशीर्वाद' शीर्षक से मिलता है। यह भी 'पाठक का पत्र संपादक के नाम' जैसे स्तंभ का प्रमाण बन सकता है। अंत में इस विस्तृत विवेचन से कुछ निष्कर्ष सामने आते हैं। 'दुर्गा' हस्तलिखित मासिक पत्रिका है। यह युगांतर मॉरिशस के नवयुवक करते हैं और 'दुर्गा' के लगभग चालीस अंक निकाल कर नए युग की रचना का जीवंत प्रमाण देते हैं। मॉरिशस में यह क्रांति हिंदी भाषा से होती है और ऐसे नवयुवकों के द्वारा जिन्होंने लंबे समय तक हिंदी का विधिवत ज्ञान प्राप्त नहीं किया था। उनके हृदय में हिंदू, हिंदी तथा हिंदुस्तानी होने का जो गर्वपूर्ण ताप और स्वाभिमान तथा हिंदू समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन की जो उन्मादकारी बेचैनी थीं, उसने उन्हें अभावों और कष्टों के बावजूद इस राष्ट्रीय जागरण के ऐतिहासिक दायित्व को स्वेच्छा से स्वीकार करा दिया। सूर्यप्रसाद मंगर भगत इस नई युवा–क्रांति के प्रतीक–पुरुष हैं। पं. आत्माराम ने अपने 4 जून, 1935 के पत्र में इसी सत्य का उद्घाटन करते हुए सूर्यप्रसाद मंगर भगत को लिखा था, "आप जैसे तरुणों के हृदय में जागृति के नव विचारों की जो लहरें उछल रही हैं, उसका 'दुर्गा' एक प्रतिबिंब है। 'दुर्गा' का हस्तलिखित, कष्टसाध्य, देशभक्त आदियों के चित्र युक्त तथा गद्य–पद्य में संपादन, एक आधुनिक तपस्या है।" पं. आत्माराम की यह बहुत ही सटीक एवं सार्थक टिप्पणी है। वे देख रहे थे कि सूर्यप्रसाद मंगर भगत मॉरिशस में एक नए युग का प्रवर्तन कर रहे थे। यह नया युग हिंदू जागृति का युग था। इस हिंदू जागृति में संपूर्ण जागृति की चेतना थी– हिंदी भाषा, समाज–सुधार,संस्कृति–उत्थान, राजनीतिक एवं शैक्षणिक उन्नयन तथा आर्थिक उत्थान आदि का सम्मिलित एवं संश्लिष्ट जागरण था। यह भारत के स्वदेशी, एवं संस्कृति, स्व–भाषा, स्वराज्य जैसा ही आंदोलन था, एक अहिंसक आंदोलन, जो शास्त्र से नहीं शब्द से हिंदू जाति में क्रांति करना चाहता था और जो हिंदू समाज में आधुनिक चेतना उत्पन्न करना चाहता था। सूर्यप्रसाद मंगर भगत का वैशिष्ट्य यह है कि उन्होंने अपने युग की आकांक्षा को ही वाणी नहीं दी, बल्कि उसमें नई व्याकुलता, नया उन्मेष, नई तीव्रता और नए सिरे से संपूर्ण क्रांति का शंखनाद किया। यह अपने युग में एक नए युग का प्रवर्तन था। सूर्यप्रसाद मंगर भगत इस प्रकार भारत के भारतेंदु हरिश्चंद्र, पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. गणेश शंकर विद्यार्थी, प्रेमचंद आदि हिंदी संपादकों की भूमिका एक साथ निभा रहे थे। यह आज हमें अकल्पनीय लग सकता है, परंतु मॉरिशस के इतिहास का सच यही है।

अतः मॉरिशस के हिंदी साहित्य के इन आरंभिक दशकों के इतिहास को नए सिरे से देखना आवश्यक है। प्रह्लाद रामशरण ने आदि तथा मध्यकालीन हिंदी की अज्ञात एवं अप्राप्त कविताओं को खोजकर इसी ओर संकेत किया है तथा 'वसंत' पत्रिका डॉ. बीरसेन जागासिंह ने भी 'अभिलेखागार से' स्तंभ आरंभ करके इतिहास में छिपी सामग्री को बाहर निकालने की महत्ता को रेखांकित किया है। मॉरिशस के हिंदी लेखक और शोधार्थी इसके महत्व को जानते हैं। श्रीमती विनोद बाला अरुण की समीक्षात्मक पुस्तक भी इसी प्रवृत्ति की प्रमाण है। अब सामूहिक रूप में व्यवस्थित प्रयास की आवश्यकता है। मॉरिशस की पहली पत्रिका 'हिंदुस्तानी' (1909–1914) से इस कार्य को आरंभ किया जाना चाहिए और विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हिंदी साहित्य का विधानुसार संकलन होना चाहिए। इसके लिए एक खोजी संपादक–मंडल हो जो कम–से–कम इन हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं की सूची ही तैयार कर दे। 'दुर्गा' के 1935 के अंकों के आधार पर मेरा यह मत है कि आरंभिक पत्रिकाओं की साहित्यिक सामग्री का गंभीरतापूर्वक अवलोकन किए बिना मॉरिशस के हिंदी साहित्य का कोई प्रामाणिक इतिहास नहीं लिखा जा सकता। मैंने स्वयं इस लेख से पहले मॉरिशस के हिंदी साहित्य पर जो टिप्पणियाँ की हैं, वे किसी भी नई सामग्री के संदर्भ में परिवर्तन की माँग कर सकती हैं और यदि ऐसा होता है तो मैं सबसे पहले नए निष्कर्षों का स्वागत करूँगा। यदि हमारी शोध–चेष्टा नई सामग्री खोजकर नए निष्कर्ष लाती है तो ज्ञान के विकास के लिए उनका स्वागत होना ही चाहिए। मेरे विचार में सूर्यप्रसाद मंगर भगत के संपूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन होना चाहिए। विनोद बाला अरुण ने अपनी पुस्तक में सही लिखा है कि मॉरिशस के हिंदी साहित्य के निर्माण में भगत ने नींव का काम किया। उनके वास्तविक योगदान का समुचित मूल्यांकन होना अभी शेष है। लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी 'रसपुंज' ने इस वास्तविकता को तभी समझ लिया था जब उन्होंने नेमनारायण गुप्त से 'दुर्गा' का जून, 1935 का अंक देखा था। उन्होंने अपने 'आशीर्वाद' (जुलाई अंक) शीर्षक लंबे लेख में भविष्यवाणी की थी कि सूर्यप्रसाद मंगर भगत जैसे नवयुवक 'प्रवासी हिंदी साहित्य के इतिहास' के 'निर्माण–काल' में 'स्वर्णाक्षर' से सुशोभित होंगे। भगत मॉरिशस में हिंदी, हिंदी एवं हिंदुस्तानी मॉरिशसीयता की नई चेतना के प्रतीक–पुरुष हैं इनके द्वारा वे स्वतंत्रता, आधुनिकता और मॉरिशस के लिए नई महानता की तलाश करते हैं। ऐसे इतिहास–पुरुष को इतिहास में स्वर्णाक्षरों में श्रद्धांजलि देनी ही होगी और अंत में, 'दुर्गा' के समग्र अंकों को उनके मूल रूप में प्रकाशित करने/कराने का सारा श्रेय सम्माननीया विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज को है जिनकी इतिहास एवं पुरातत्व को सुरक्षित करने तथा सर्वसुलभ करने की नीति के कारण यह संभव हो सका और इसके आधार पर 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका का प्रकाशन हो पाएगा 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका लगभग 80–81 वर्ष बाद मुद्रित अवस्था में सबको उपलब्ध हो सकेगी और पाठक महसूस कर सकेंगे कि मॉरिशस जैसे पीड़ित–शोषित प्रवासियों के देश ने हिंदी भाषा–लिपि को सुरक्षित रखा, उस पत्रकारिता एवं साहित्य–रचना का आधार बनाया और अपने देश को जागृति एवं समग्र कल्याण के लिए हिंदी भाषा का उपयोग किया मैं श्रीमती सुषमा स्वराज का कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने स्वप्न को साकार करने की कृपा की और विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर 'दुर्गा' को हिंदी विश्व को एक उपहार के रूप में प्रदान किया। मॉरिशस का विश्व हिंदी सम्मेलन इस कारण भी सदैव याद किया जाता रहेगा।

मॉरिशस के विख्यात हिंदी साहित्यकार, आधी शताब्दी से भी अधिक हिंदी भाषा एवं साहित्य को हिंदी विश्व में स्थापित करने वाले तथा लगभग पचहत्तर हिंदी पुस्तकों के

रचयिता एवं मॉरिशस के प्रेमचंद के रूप में प्रतिष्ठित अभिमन्यु अनत का 4 जून, 2018 को देहांत हो गया। यह अत्यत दुखद समाचार था। माननीया विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज ने विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर अभिमन्यु अनत को विशेष रूप से सम्मानित करने का निर्णय किया था, किंतु यह संभव नहीं हो सका। मैं अपनी ओर से तथा भारत के हिंदी संसार की ओर से अभिमन्यु अनत की दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। मैं हिंदी प्रचारिणी सभा के पूर्व अध्यक्ष अजामिल मतादल को भी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ जो असमय संसार को छोड़कर चले गए। 'दुर्गा' के वर्तमान रूप में प्रकाशित होने का श्रेय उन्हीं को है। उनकी रुचि और सहयोग ने 'दुर्गा' के प्रकाशन की स्थितियाँ निर्मित कर दीं। मैं डॉ. मुनीश्वर लाल चिंतामणि तथा श्रीमति भानुमति नागदान को भी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ जिन्हांने मॉरिशस के हिंदी साहित्य के विकास में महत् योगदान किया।

❑❑❑

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी

रेखा राजवंशी

हिंदी भाषी भारतवंशी विश्व भर में जिस देश में गए अपनी भाषा और संस्कृति अपने साथ लेकर गए। 19वीं शताब्दी की शुरुआत में भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार द्वारा लाए गए अपराधियों के रूप में बहुत कम भारतीय ऑस्ट्रेलिया पहुँचे। अन्य ब्रिटिश प्रजा के साथ मजदूर के रूप में पहुँचे। 1830 के दशक के उत्तरार्ध में, अधिक भारतीय गिरमिटिया मजदूरों के रूप में ऑस्ट्रेलिया लाए गए। भारतीय बाद में गन्ने और कपास की खेती करने के लिए ऑस्ट्रेलिया में आए। उनमें से कुछ भारतीयों ने विश्व युद्धों में भी भाग लिया था, जिनके रिकार्ड्स ऑस्ट्रेलिया में उपलब्ध हैं। परंतु सन् 1947 में भारत के ब्रिटिश से स्वतंत्र होने के बाद ऑस्ट्रेलिया में भारतीयों की स्थिति में परिवर्तन आया। स्वतंत्रता के बाद भारत में पैदा हुए एंग्लो इंडियन और अंग्रेजों को ऑस्ट्रेलिया में स्थाई रूप से रहने की अनुमति मिली। सन् 1970 के दशक में ऑस्ट्रेलिया द्वारा श्वेत नीति को हटाए जाने के बाद भारतीयों का तीव्र गति से यहाँ आगमन हुआ। बहुत से डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक, कंप्यूटर विशेषज्ञ यहाँ आए। पिछले कुछ वर्षों में भारतीय विद्यार्थी बहुतायत से ऑस्ट्रेलिया आए हैं और बस गए हैं।

भारतीयों की संख्या बढ़ने के साथ–साथ यहाँ भारतीय संस्कृति, भाषा, भोजन और उत्सवों को भी मान्यता प्राप्त हुई है। यहाँ बोली जाने वाली करीब तीन सौ भाषाओं में विविध भारतीय भाषाएँ भी हैं। हिंदी के अतिरिक्त पंजाबी, तमिल, गुजराती आदि हैं। ऑस्ट्रेलिया में भी हिंदी भी अन्य भाषाओं की भाँति पुष्पित, पल्लवित हुई। 2021 की जनगणना के नवीनतम आँकड़े इस बात की पुष्टि करते हैं कि नए भारतीय प्रवासी भारत से तेजी से आ रहे हैं। नए आँकड़ों के अनुसार, ऑस्ट्रेलिया में हिंदी भाषी लोगों की संख्या 197,000 से अधिक है, जबकि 2016 में 159,652 थी। जिसका मतलब है कि हिंदी बोलने वालों की संख्या में वृद्धि हो रही है। आँकड़ों के अनुसार न्यू साउथ वेल्स में, हिंदी भाषा बोलने वालों की संख्या 80,000 से अधिक है, उसके बाद विक्टोरिया (66,930) और क्वींसलैंड (21,344) हैं। हिंदू धर्म देश में सबसे तेजी से बढ़ते धर्मों में से एक है।

भारत पिछले कुछ वर्षों में एक आर्थिक शक्ति के रूप में उभरा है। ऑस्ट्रेलिया और भारत के मध्य मधुर संबंध स्थापित हुए हैं। ऐसे में भारतीय संस्कृति, धर्म, वेशभूषा, भोजन, योग और ध्यान भी लोकप्रिय हुए हैं। हिंदी शिक्षण, हिंदी अनुवाद और साहित्य के प्रति भी सरकार का ध्यान आकर्षित हुआ है। ऑस्ट्रेलिया में हिंदी नामक इस लेख के अंतर्गत मैं ऑस्ट्रेलिया में हिंदी की स्थिति और विकास के बारे में विस्तार से चर्चा करूँगी। अपने इस लेख को तीन वर्गों में बाँटते हुए उपलब्ध सूचना के आधार पर हिंदी की स्थिति पर प्रकाश डालने का प्रयास करुँगी। ये तीन मुख्य क्षेत्र हैं–

1. ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षण
2. ऑस्ट्रेलिया में हिंदी साहित्य
3. ऑस्ट्रेलिया में हिंदी अनुवाद और दुभाषिया सेवा

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षण

ऑस्ट्रेलिया के बहुसांस्कृतिक समाज में अनेकों भाषाएँ बोली और पढ़ाई जाती हैं। हिंदी के अतिरिक्त पंजाबी, तमिल, कन्नड़, संस्कृत, बांग्ला आदि अनेक प्रांतीय भाषाओं की भी शिक्षा औपचारिक या अनौपचारिक रूप से दी जा रही है। हिंदी, या आधुनिक मानक हिंदी, भारत की सबसे व्यापक रूप से बोली

जाने वाली आधिकारिक भाषा है। भारत में किसी भी भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त नहीं है, लेकिन हिंदी और अंग्रेजी आधिकारिक भाषाएँ हैं। हिंदी देवनागरी लिपि का प्रयोग करती है, हालाँकि इसका उर्दू से गहरा संबंध है। हिंदी का एक समृद्ध साहित्यिक इतिहास है और यह हिंदू धर्म की भाषा भी है। इसलिए हिंदी बोलना और सीखना समृद्ध सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं के द्वार खोलता है। भारत की तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था के साथ, हिंदी संभावित करियर का लाभ भी प्रदान करती है। 1970 के दौरान हिंदी शिक्षण प्रशिक्षण यहाँ मंदिरों में शुरू हुआ और लोगों ने साहित्य और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी मंदिरों में ही शुरू किया।

औपचारिक रूप से हिंदी की शिक्षा पहली बार 1965 में क्वींसलैंड विश्वविद्यालय ऑस्ट्रेलिया के आधुनिक भाषा संस्थान के प्रौढ़ शिक्षा संस्थान द्वारा तृतीय स्तर पर प्रारंभ की गई थी।

विक्टोरिया में हिंदी शिक्षा के विकास में डॉ. दिनेश श्रीवास्तव का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उनके नेतृत्व में अनेक लोगों के सहयोग से दिनेश श्रीवास्तव ने विक्टोरिया राज्य के शिक्षा विभाग से संपर्क किया। तीन वर्षों के बाद 1986 में विक्टोरिया में मेलबर्न के ब्रिंजविक नगर में प्राथमिक स्तर पर सबसे पहले हिंदी की कक्षाएँ प्रारंभ हुईं। 1993 में 11वीं व 12वीं की कक्षाओं में हिंदी पठन–पाठन को मान्यता मिल गई, जिससे अनेक विद्यार्थियों ने हिंदी पढ़ना प्रारंभ किया। 2011 में ऑस्ट्रेलिया की केंद्रीय सरकार के आदेश पर 'अकारा' यानि 'ऑस्ट्रेलियन करिकुलम एसेसमेंट एंड सर्टिफिकेशन' ने राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के लिए हिंदी का चयन किया।

2012 में, तत्कालीन ऑस्ट्रेलियाई प्रधानमंत्री जूलिया गिलार्ड ने 'ऑस्ट्रेलिया इन द एशियन सेंचुरी' सरकार का श्वेतपत्र जारी किया। उन्होंने घोषणा की कि हिंदी को प्राथमिकता वाली भाषा के रूप में महत्व दिया जाएगा– हर स्कूली बच्चा हिंदी सीखने में सक्षम होगा। आजकल यहाँ हिंदी, विद्यालयी पाठ्यक्रम का हिस्सा है और कक्षा 1 से 12 तक राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी का पाठ्यक्रम भी तैयार किया गया है।

ऑस्ट्रेलिया में प्राथमिक व माध्यमिक स्कूल में हिंदी शिक्षण

माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षा के क्षेत्र में 1993 में एक बड़ा बदलाव आया, जब विक्टोरिया की सरकार ने 11वीं और 12वीं कक्षा में हिंदी भाषा को हाई स्कूल में मान्यता दी। बाद में यह मान्यता ऑस्ट्रेलिया के अन्य प्रदेशों में भी प्रदान की गई। आज विद्यार्थी 12वीं कक्षा की हिंदी परीक्षा में बैठ सकते हैं। ऑस्ट्रेलिया सरकार की भाषा संबंधी नीति के अनुसार कुछ विद्यालयों में हिंदी की शिक्षा का प्रावधान है। कुछ संगठन और व्यक्ति भी निजी रूप से हिंदी की शिक्षा प्रदान करते हैं। यद्यपि उन्हें सरकार के शिक्षा विभाग की तरफ से कुछ सहायता दी जाती है। ऑस्ट्रेलिया के अधिकांश प्रदेशों में हिंदी इसी प्रकार पढ़ाई जा रही है। वर्तमान समय में ऑस्ट्रेलिया में प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में हिंदी की शिक्षा तीन प्रकार से दी जा रही है–

1. सामुदायिक विद्यालयों में–

ये वे विद्यालय हैं जिसे समुदाय के लोगों ने अपने प्रयासों से प्रारंभ किया और फिर इसे सामुदायिक भाषा कार्यक्रम विभाग (डिपॉर्टमेंट ऑफ एजुकेशन्स कम्यूनिटी लैंग्वेजेज़ स्कूल्स प्रोग्राम) से मान्यता प्राप्त हो गई। इन विद्यालयों को सरकार वित्तीय सहायता प्रदान करती है, और इन्हें सप्ताहांत में चलाया जाता है। सिडनी में ऐसे विद्यालयों में मुख्य हैं– बाल भारती इंडो ऑस्ट विद्यालय, साउथ एशियन हिंदी स्कूल कोगरा, एएचएमए स्कूल ऑफ़ लैंगवेजेस, ग्रीन वैली हिंदी स्कूल, लिवरपूल आर्ट्स एंड कल्चर– हिंदी विद्यालय आदि। फ़ीजी के हिंदी विद्यालय भी हिंदी पढ़ाते हैं।

न्यू साउथ वेल्स में ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा में हिंदी शिक्षण आरंभ करने का श्रेय डॉ. जगदीश चावला को जाता है। बाद में इंडो ऑस्ट–बाल भारती हिंदी स्कूल में भी ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा में हिंदी पढ़ाना शुरू किया गया और हिंदी एच एस सी की परीक्षा शुरू हुई।

ऑस्ट्रल में रामकृष्ण हिंदी एंड कल्चरल स्कूल, कैनबरा में संतोष गुप्ता कैनबरा हिंदी विद्यालय चला रहे हैं। निजी व्यक्तियों द्वारा अनेक उपनगरों में हिंदी की शिक्षा प्रदान की जाती है। पर्थ में हिंदी समाज के हिंदी स्कूल हिंदी शिक्षण की सुविधा प्रदान करते हैं। मेलबर्न में हिंदी अध्ययन का कार्यक्रम प्रेप से सेकेंडरी तक है। ब्रिस्बेन की मधु खन्ना द्वारा प्रदत्त सूचना के अनुसार क्वींसलैंड के वेदांत सेंटर में पिछले (2021) एक साल से हिंदी पढ़ाई जा रही है। हिंदू विश्व परिषद क्वींसलैंड का बाल संस्कार क्वींसलैंड चैप्टर तीन केंद्रों पर सनीबैंक स्टेट स्कूल, गोल्ड कोस्ट और स्पॉन्गफील्ड। हिंदी शिक्षण की व्यवस्था करता है, इनके 'विद्या विहार' के अंतर्गत बाल केंद्र व युवा केंद्र में प्रति रविवार दो से पाँच बजे तक हिंदी की कक्षाएँ लगाई जाती हैं। यहाँ लगभग 15 शिक्षक हैं। बाल संस्कार केंद्र में गोल्ड कोस्ट और ब्रिस्बेन में 2010 से हिंदी, संस्कृत व वैदिक श्लोक भी सिखाए जा रहे हैं।

2. सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में–

कुछ सरकारी विद्यालय हिंदी का शिक्षण मुख्य धारा के अंतर्गत करवाते हैं। जैसे न्यू साउथ वेल्स का वेस्ट राइड पब्लिक स्कूल पहला स्कूल है जहाँ पिछले सत्ताईस साल से हिंदी पढ़ाई जा रही है। आजकल न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया, क्वींसलैंड और वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया के कुछ स्कूलों में हिंदी शिक्षण की सुविधा उपलब्ध हो गई है। सिडनी, न्यू साउथ वेल्स में लगभग छह मेनस्ट्रीम पब्लिक स्कूलों में और लगभग पाँच सामुदायिक स्कूलों में हिंदी की पढ़ाई होती है। इंडो ऑस्ट बाल भारती विद्यालय की संस्थापक माला मेहता भी सात केंद्रों में ऑफ्टर स्कूल (विद्यालय के समय के उपरांत) हिंदी की कक्षाएँ लगाती हैं। उन्होंने न्यू साउथ वेल्स में शिक्षण के विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्हें उनके हिंदी कार्यों के लिए भारतीय सरकार ने प्रवासी सम्मान भी प्रदान किया है। 2010 के दशक में हिंदू कॉउन्सिल ने भी आंदोलन चलाया कि न्यू साउथ वेल्स के विद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाए।

इसी तरह मेलबर्न विक्टोरिया में भी विक्टोरियन स्कूल ऑफ़ लैंग्वेजेज के अंतर्गत कई वर्षों से हिंदी शिक्षण करवाया जा रहा है। हिंदी के विकास में डॉ. दिनेश श्रीवास्तव ने बहुत काम किया है। वहाँ भी सप्ताहांत में स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। अब रेंजबैंक पब्लिक स्कूल के अतिरिक्त द ग्रेंज विद्यालय में भी हिंदी शिक्षण किया जा रहा है। अन्य स्कूलों में भी हिंदी मुख्यधारा से जुड़ी है। विक्टोरियन स्कूल ऑफ लैंग्वेज इस साल के अंत तक नई पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित करने का प्रयास कर रहा है। मेलबर्न में हिंदी शिक्षक संघ भी है जिसके अध्यक्ष इस समय सुभाष शर्मा जी हैं। हिंदी समाज ऑफ़ वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया, काउंसलेट जनरल ऑफ़ इंडिया और अन्य भारतीय एवं ऑस्ट्रेलियाई सरकारी मंत्रालयों के साथ कार्य करते हुए हिंदी भाषा को स्कूली पाठयक्रम में शामिल करने का भी कार्य कर रहा है। 2023 से वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया में हिंदी भाषा कक्षा एक से कक्षा बारह तक के पाठ्यक्रम में शामिल हो जाएगी।

3. शनिवार को पढ़ाए जाने वाले विद्यालयों में–

न्यू साउथ वेल्स में यह सुविधा कक्षा सात से बारह तक के विद्यार्थियों के लिए शनिवार के विद्यालय, सेवन हिल्स में प्रदान की जा रही है। यह सेकंडरी कॉलेज ऑफ़ लैंग्वेजेज़ के अंतर्गत आती है। इसके संचालन और खर्च की व्यवस्था यहाँ की सरकार ही करती है। विद्यार्थियों के लिए यह शिक्षा निःशुल्क है।

ऑस्ट्रेलिया के विद्यालयों में हिंदी कैसे पढ़ाई जाए, इसके लिए विक्टोरियन स्कूल ऑफ लैंग्वेजेज़ और ऑस्ट्रेलियन हिंदी शिक्षा संघ जैसी संस्थाओं का प्रयास जारी है। दक्षिण एशिया के बाहर, विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी और उर्दू को विदेशी भाषाओं के तौर पर पढ़ाया जाता है। भाषाविदों और शिक्षाविदों के अनुसार, ऑस्ट्रेलिया के कुछ स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जाती है, लेकिन अभी बहुत कुछ करने की जरूरत है, क्योंकि हिंदी का शिक्षण अन्य देशों की तुलना में अब भी यहाँ कम है। एडिलेड के डॉ. राय कूकणा द्वारा दी गई सूचना के अनुसार गुडवुड प्राइमरी स्कूल में मंगलवार और गुरुवार को हिंदी भाषा की कक्षाएँ 3:30 से 5:30 तक दो घंटे के लिए लगाईं जाती हैं और विश्व हिंदू परिषद सरस्वती कम्युनिटी स्कूल में भी ऑनलाइन हिंदी सिखाई जाती है। एडिलेड हाई स्कूल, पलिम्प्टन इंटरनेशनल कॉलेज और रोमा मिचल कम्युनिटी कॉलेज में भी हिंदी की कक्षाएँ मंगलवार से बुधवार तक स्कूल के उपरांत लगाईं जाती हैं।

सिडनी इंस्टिट्यूट ऑफ़ कम्युनिटी लैंग्वेजेज एजुकेशन (एस आई सी एल ई)

2017 में न्यू साउथ वेल्स में भाषा विकास के लिए एक बड़ी धनराशि निश्चित की गई थी। जिसके फलस्वरूप सन् 2019 में सिडनी विश्वविद्यालय की साझेदारी में सिडनी इंस्टीट्यूट ऑफ़ कम्युनिटी लैंग्वेजेज एजुकेशन की स्थापना की गई। जिसका कार्य शिक्षकों के लिए मार्गदर्शन प्रदान करना, पाठ्यक्रम संसाधनों का विकास और आकलन भी करना है। इसके अंतर्गत हिंदी के संसाधनों का भी विकास किया गया है।

एन एस डब्ल्यू डिपार्टमेंट ऑफ़ एजुकेशन के साथ साझेदारी में, स्कूलों में काम करने वाले शिक्षकों के विकास के लिए कार्यशालाओं और पाठ्यक्रमों की श्रृंखला भी उपलब्ध है। सिकल में हिंदी प्रोजेक्ट अधिकारी वर्षा दैठंकर और स्वाति दोषी हिंदी के संसाधनों को एकत्रित करने, संपादित करने और उसे ओपन लैंग्वेज पोर्टल में उपलब्ध करवाने का कार्य करती हैं।

हिंदी के अतिरिक्त सिडनी में डॉ. मिनाक्षी श्रीनिवासन के संस्कृत विद्यालय चला रहीं हैं, जहाँ अनेक विद्यार्थी संस्कृत सीखने आते हैं।

विक्टोरियन कॉलेज ऑफ़ लैंग्वेजेज़, विक्टोरिया

मेलबर्न की मृदुला कक्कड़ जी द्वारा भेजी गई सूचना के अनुसार 1994 में हिंदी को भी एक विषय के रूप में वी.सी.ई. कक्षाओं में अध्ययन के लिए मान्यता प्राप्त हुई और लगभग वर्ष 2000 में डॉ. श्रीवास्तव और श्रीमती सुधा जोशी के मार्गदर्शन में वी.सी.ई. कक्षाओं हेतु विद्यार्थियों का पाठ्यक्रम तैयार किया गया। पाठ्यक्रम तैयार होने के बाद विद्यालयों में हिंदी पढ़ाने के लिए पाठ्य–पुस्तकों की आवश्यकता अनुभव की गई। सबसे पहले लट्रोब विश्वविद्यालय की रीना टंडन ने ऑस्ट्रेलिया–इंडिया काउंसिल के सहयोग से सीनियर सेकंडरी के विद्यार्थियों के लिए हिंदी की पाठ्य–पुस्तकें (भाग–1 और भाग–2) लिखी थीं। उसके बाद वी.एस.एल. द्वारा प्रदान की गई धनराशि तथा रिचर्ड डिलेसी सहित कुछ अन्य लेखकों के सहयोग से 'हिंदी–नक्षत्र' लिखने की योजना बनाई गई। 'हिंदी नक्षत्र–भाग–1' लिखने का कार्य जब संपूर्ण हुआ तो उस पुस्तक की कंप्यूटर फॉर्मेटिंग करने और प्रूफ रीडिंग का उत्तरदायित्व का कार्य मृदुला जी (आई.टी. में ग्रेड डीप का ज्ञान होने के कारण) को सौंपा गया। 2004 में वी.एस.एल. ने 'हिंदी नक्षत्र–भाग–1' को प्रकाशित किया। चूँकि इस योजना में उपलब्ध धनराशि बहुत कम थी, इसलिए उसे सिर्फ़ लेखकों में ही वितरित किया गया था।

जब 'हिंदी नक्षत्र–भाग–2' लिखने की बात आई तो मृदुला कक्कड़ जी को पूरी पुस्तक लिखने के लिए कहा गया। समयाभाव के कारण 'हिंदी नक्षत्र–भाग–2' के लिए केवल दो अध्याय लिखे और इसे पूरा होने के बाद

इसकी कंप्यूटर फॉर्मेटिंग की। 2005 में वी.एस. एल. के सहयोग से यह पुस्तक प्रकाशित की गई। वर्तमान में, विक्टोरियन विद्यालयों में वी. सी.ई. हिंदी कक्षा के विद्यार्थियों को इन दोनों पुस्तकों की सहायता से अध्ययन करवाया जाता है। कुछ वर्ष पहले वी.एस.एल. ने इन दोनों भागों को संयुक्त कर एकबद्ध कर दिया है।

2017 में अध्यापक अनुश्री जैन ने प्रेप और कक्षा 1 के विद्यार्थियों के लिए व प्राथमिक कक्षा के विद्यार्थियों के लिए हिंदी व्याकरण की 2018 में अनुश्री जैन और एक अन्य अध्यापक गुरुशरण कौर ने कक्षा तीन के विद्यार्थियों के लिए पुस्तकें तैयार की। इन सभी पुस्तकों की एडिटिंग, कंप्यूटर फॉर्मेटिंग और प्रूफ रीडिंग का उत्तरदायित्व मृदुला जी को ही दिया गया और वी.एस.एल. द्वारा इन्हें प्रकाशित किया गया। इस योजना में लेखकों के लिए कुछ धनराशि भी उपलब्ध करवाई गई थी। ये पुस्तकें हिंदी की प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ाई जाती हैं।

2019 में वी.एस.एल. के साथ मेरे और मृदुला कक्कड़ के मार्गदर्शन में 4, 5, 6 और 7 हिंदी कक्षाओं के लिए पाठ्यपुस्तकें लिखने की योजना बनाई गई और पहले की तरह इनकी एडिटिंग, कंप्यूटर फॉर्मेटिंग और प्रूफ रीडिंग की गई और यह सुनिश्चित किया गया है कि पुस्तकें विक्टोरिया की स्टडी डिज़ाइन की गाइडलाइंस के अनुसार तैयार की जा रही हैं। वी.एस.एल. के सहयोग से 2021 में कक्षा चार के लिए गुरुशरण कौर की पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है और विद्यार्थियों के अध्ययन के लिए उपलब्ध है।

2016 में हिंदी की दूरस्थ शिक्षा संभव करवाने के उददेश्य से वी.एस.एल. के सहयोग से हिंदी का दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम तैयार किया गया। इसका अनुबंध डॉ. श्रीवास्तव और वी.एस.एल. के मध्य था। डॉ. श्रीवास्तव की अस्वस्थता के कारण मृदुला जी को ही इसके मार्गदर्शन का कार्यभार सौंपा गया था। यह कार्यक्रम 2018 में तैयार हुआ और वी.सी.ई. के दूरस्थ विद्यार्थियों को हिंदी का अध्ययन करवाने की सुविधा सुलभ करवाई गई। मेलबर्न के अनेक उपनगरों के वी.एस.एल. केंद्रों में हिंदी पढ़ाई जाती है। हिंदी अध्ययन के प्रचार–प्रसार के लिए वी.एस.एल. ने और भी कुछ कार्यक्रम तैयार किए हैं।

विक्टोरियन सर्टिफ़िकेट ऑफ़ एजुकेशन (वी.सी.ई.) ऑस्ट्रेलिया के विक्टोरिया राज्य में 11वीं व 12वीं की परीक्षा सफलतापूर्वक पास करने वाले विद्यार्थियों को यह प्रमाण पत्र दिया जाता है। ऑस्ट्रेलिया भर में सारे धर्मों के उच्च मूल्यों को सिखाने के लिए विश्व हिंदू परिषद् द्वारा हिंदू स्क्रिप्चर एजुकेशन भी पढ़ाई जाती है।

4. ऑस्ट्रेलिया में विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी शिक्षण

ऑस्ट्रेलिया में 1965 में क्वींसलैंड विश्वविद्यालय के आधुनिक भाषा संस्थान के प्रौढ़ शिक्षा संस्थान द्वारा तृतीयक स्तर पर, हिंदी पहली बार पेश की गई थी। वह पाठ्यक्रम, जो अभी भी उपलब्ध है, को विश्वविद्यालय डिग्री कार्यक्रम के एक भाग के रूप में लिया जा सकता है। 1972 से अन्य ऑस्ट्रेलियाई वयस्क शिक्षा केंद्रों और टी एस एफ इ एस ने छिटपुट रूप से हिंदी में पाठ्यक्रमों की पेशकश की है। 1997 में, ऑस्ट्रेलिया में छह विश्वविद्यालय थे जिनमें हिंदी पढ़ाई जाती थी। कैनबरा ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी में पिछले कई वर्षों से हिंदी पढ़ाई जा रही है। हिंदी विभाग के प्रोफेसर रिचर्ड मैकग्रेगर द्वारा यहाँ स्थापित किया गया हिंदी विषय स्नातक अध्ययन के लिए उपलब्ध है। एशियन स्टडीज संकाय के अंतर्गत स्नातक स्तर पर पाठ्यक्रम उपलब्ध है। पहले जिन विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती थी उनमें से सिडनी विश्वविद्यालय और मोनाश, रॉयल मेलबर्न इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में हिंदी की शिक्षा बंद कर दी गई। जबकि आज केवल दो विश्वविद्यालयों ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी कैनबरा और लॉ ट्रोब यूनिवर्सिटी मेलबर्न में ही हिंदी पढ़ाई

जा रही है, हालाँकि दोनों विश्वविद्यालय संसाधन की कमी से जूझ रहे हैं। ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी में डॉ. पीटर फ्रीडलैंडर और लॉ ट्रोब यूनिवर्सिटी में डॉ. इयन वुलफर्ड हिंदी के प्राध्यापक हैं। डॉ. क्रिस्टोफर डायमंड भी ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी में हिंदी पढ़ाते हैं। ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी के सीनियर लेक्चरर डॉ. पीटर फ्रीडलैंडर ने राष्ट्रीय स्तर की दो हिंदी शिक्षण की कार्यशालाएँ भी आयोजित की हैं। सिडनी यूनिवर्सिटी में भी हिंदी शिक्षण होता था पर करीब दस साल पहले बंद हो गया।यूनिवर्सिटी के प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में भी हिंदी उपलब्ध थी जो पिछले पाँच साल से बंद हो गई। चूँकि भारतीय अंग्रेजी बोल लेते हैं तो ऑस्ट्रेलिया के लोगों को हिंदी सीखने की आवश्यकता नहीं लगती। फिर भी बॉलीवुड और भारत में पर्यटन के इच्छुक ऑस्ट्रेलियंस को हिंदी सीखने में रुचि है।

टेफ यानि टेक्निकल एंड फरदर एजुकेशन के कुछ केंद्रों में भी वयस्कों के लिए हिंदी शिक्षा का प्रबंध था। 1980 में विक्टोरियन स्कूल ऑफ लैंग्वेजेज़ की कक्षाओं में वयस्क विद्यार्थी भी प्रवेश ले सकते थे। विक्टोरिया में काउंसिल ऑफ एडल्ट एजुकेशन भी वयस्कों को शिक्षा प्रदान करते हैं। इसी तरह सिडनी, और अन्य राज्यों में भी कुछ संस्थान वयस्कों को हिंदी शिक्षण की सुविधा प्रदान करते हैं। निजी तौर पर भी बहुत से व्यक्ति हिंदी की ऑनलाइन कक्षाएँ लेते हैं।

ब्रिस्बेन की मधु खन्ना द्वारा प्रदत्त सूचना के अनुसार 'द यूनिवर्सिटी ऑफ़ क्वींसलैंड– इंस्टिट्यूट ऑफ़ मॉडर्न लैंग्वेजेज़' हिंदी लेवल 1ए, 1बी की शिक्षा उपलब्ध करवाता है। ब्रिस्बेन की भारतीय कॉन्सलेट श्रीमती अर्चना सिंह जी ने 1988–2018 के दौरान हिंदी पढ़ाई। दिपाली निधि ने 2011–2022 के दौरान से हिंदी भाषा सिखा रही हैं।

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी साहित्य

साहित्य समाज का दर्पण है। ऑस्ट्रेलिया में हिंदी साहित्य का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। लगभग चालीस वर्ष पहले हिंदीभाषी भारतीय यहाँ आए और अगली पीढ़ी को हिंदी सिखाने के लिए भारतीयों ने मंदिरों में हिंदी भाषा की कक्षाएँ लगानी शुरू कीं। उसी के साथ मनोरंजन के लिए कविताओं, कहानियों का वाचन भी शुरू हुआ। ऑस्ट्रेलिया में 2021 की जनगणना के अनुसार भारतीयों की संख्या बढ़ रही है और साथ ही हिंदी बोलने वालों की संख्या भी बढ़ी है।

सिडनी

लगभग तीन दशक पूर्व हिंदी समाज की स्थापना हुई। ऑस्ट्रेलिया को अपना घर बनाने के लिए भारतीयों को न केवल अपने शरीर के लिए बल्कि अपने दिमाग के लिए भी भोजन की आवश्यकता थी। उसी के फलस्वरूप इंडिया लीग (यूआईए), श्री मंदिर, सांस्कृतिक और क्षेत्रीय संगठनों का गठन हुआ। इसी बीच में हिंदी साहित्य और कविता आदि पर जोर देने वाले इच्छुक लोगों की अनौपचारिक साहित्यिक बैठकें हुईं। 1979 में तत्कालीन प्रबंधन समिति के रूप से श्री विजय सिंघल और डॉ. प्रभात सिन्हा की पहल से ऑबर्न मंदिर में हिंदी की कक्षाएँ शुरू हुईं। लखनऊ विश्वविद्यालय के एक दंत चिकित्सक प्रोफेसर चंद्रमोहन श्रीवास्तव के नेतृत्व में जनवरी 1991 में हिंदी समाज के जन्म के साथ शाब्दिक बैठकों को औपचारिक रूप दिया गया। हिंदी समाज द्वारा प्रकाशित पत्रिका चेतना 1992 से 2002 तक चली जिसका संपादन हिंदी समाज की अध्यक्ष डॉ. शैलजा चतुर्वेदी ने किया था। हिंदी समाज ने पद्मश्री गोपाल दास नीरज, प्रो सरोज कुमार, प्रसिद्ध तबला वादक जाकिर हुसैन, पद्मश्री अशोक चक्रधर, हुल्लड़ मुरादाबादी आदि को सिडनी में आमंत्रित किया।

'इंडिया डाउन अंडर' जैसे समाचार पत्र भी उन्हीं दिनों आए जिसकी संपादक नीना बधवार ने बाद में उसमें एक पृष्ठ हिंदी में भी

निकालना शुरू किया। कुछ स्थानीय रेडियो जैसे मोनिका गीत माला, महक, एस बी एस, इंडियन लिंक रेडियो में हिंदी का भी प्रसारण होने लगा, जिसमें साहित्य को भी स्थान मिला।

सन् 2000 के बाद लेखिका, कवयित्री रेखा राजवंशी ने इंडियन लिटरेरी एंड आर्ट सोसाइटी ऑफ़ ऑस्ट्रेलिया (इलासा) स्थापित की। संस्था ने हिंदी के कई कार्यक्रम आयोजित किए। इसमें डॉ. कुँवर बेचैन, अशोक चक्रधर, खुशबीर सिंह शाद के काव्य पाठ के अलावा सिडनी यूनिवर्सिटी में ऑस्ट्रेलिया हिंदी सम्मेलन का आयोजन भी सम्मिलित है। इसी संस्था ने सिडनी के संसद भवन में युवा लोगों को प्रोत्साहित करने के लिए कविता प्रतियोगिता का आयोजन भी किया। भारतीय विद्या भवन ने भी हिंदी के प्रसार के लिए कुछ कार्यक्रम आयोजित किए।

अब तक तीन साझा काव्य संकलन आ चुके हैं। रेखा राजवंशी के संपादन में ऑस्ट्रेलिया के कवियों के दो काव्य संकलन प्रकाशित हुए। पहला काव्य संग्रह 'बूमरैंग –ऑस्ट्रेलिया से कविताएँ' 2010 में रेखा राजवंशी के संपादन और मेलबर्न के सुभाष शर्मा और पर्थ के प्रेम माथुर के सह संपादन में किताबघर से प्रकाशित हुआ। इसके बाद हिंदी और उर्दू के कवियों का दूसरा द्विभाषी काव्य संकलन 'गुलदस्ता' भारतीय विद्या भवन के सौजन्य से प्रकाशित हुआ जिसका संपादन कवि अब्बास रज़ा अल्वी और भारतीय विद्या भवन के अध्यक्ष गंभीर वत्स ने किया। रेखा राजवंशी द्वारा संपादित 'बूमरैंग 2–ऑस्ट्रेलिया से कविताएँ' संकलन में छह शहरों के चालीस कवियों की कविताएँ संकलित हैं।

ऑस्ट्रेलिया का पहला साझा कहानी संकलन, जिसमें बीस लेखकों की बीस कहानियाँ सम्मिलित की गई हैं, भी शीघ्र प्रकाशित होने वाला है। यह संकलन रेखा राजवंशी द्वारा संपादित है, डॉ. राय कूकणा ने इसका सह संपादन किया है। इसे केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा द्वारा प्रकाशन के लिए भी स्वीकृत किया गया है।

सिडनी के अन्य कवियों की पुस्तकें भी प्रकाशित हैं। रेखा राजवंशी की कविताएँ, कहानियाँ, नज़्म, ग़ज़ल संग्रह एवं अनुवाद अनिल वर्मा का कविता संग्रह, विजय कुमार सिंह– उपन्यास, कविता संग्रह, डा शैलजा चतुर्वेदी कविता संग्रह, डॉ. निहाल अगर का कविता संग्रह, श्रीमती विमला लूथरा/कविता संग्रह, भावना कुँवर का दोहा, हाइकु, चौका कविता संग्रह, प्रगीत कुँवर का दोहा संग्रह एवं संजय अग्निहोत्री का उपन्यास मुख्य प्रकाशित रचनाएँ हैं। विवेक आसरी की भी एक पुस्तक प्रकाशित है, जो एक लंबी कहानी है और फिर उसी कहानी पर एक नाटक भी। कुछ अन्य युवा कवि भी अच्छा लेखन कर रहे हैं, जिनमें मृणाल शर्मा, विराट नेहरू, श्वेता शर्मा, आदि मुख्य हैं।

दो हजार के दशक में, रेखा राजवंशी के प्रयास से इंडिया क्लब ने पहली बार हिंदी दिवस का आयोजन किया। बाद में 2010 में बाल भारती हिंदी स्कूल में माला मेहता और नीना बढ़वार के साथ यह कार्यक्रम आज तक चल रहा है। रेखा राजवंशी समय–समय पर अपनी संस्था के माध्यम से कवि सम्मेलनों का और हिंदी दिवस का आयोजन करती रही हैं। यहाँ के साहित्यकार उपन्यास, कहानी संग्रह, कविता, लेख और व्यंग्य आदि की पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं। अनेक पुस्तकों का विमोचन भी संस्था इलासा के मंच से हुआ। कोविड काल में ज़ूम कार्यक्रमों के माध्यम से ऑस्ट्रेलिया के साहित्यकार विश्व के अन्य साहित्यकारों से जुड़े। 'विश्वरंग ऑस्ट्रेलिया' वर्चुअल फेस्टिवल आयोजन में आयोजित रेखा राजवंशी के निर्देशन में ऑस्ट्रेलिया के अनेक साहित्यकार सामने आए।

सबसे पुराना हिंदी अखबार 'हिंदी समाचार पत्रिका' फ़ीजी के परशुराम महाराज ने प्रकाशित किया। कई वर्षों तक यह समाचार पत्रिका' प्रकाशित हुई। उसके बाद 2010 के दौरान एक और हिंदी समाचार पत्र 'हिंदी

गौरव' प्रकाशित होना शुरू हुआ। अब यह समाचारपत्र ऑनलाइन उपलब्ध है। इसके अलावा 2011 में जुगनदीप सिंह के संपादन में कुछ वर्ष पहले यहाँ 'हिंद एक्सप्रेस' नाम से एक अखबार निकला परंतु हिंदी पाठकों की रुचि और वित्तीय सहायता के अभाव में अखबार बंद करना पड़ा। सिडनी के समाचारपत्र 'इंडियन डाउन अंडर' और 'फ़ीजी टाइम्स' भी हिंदी का एक पन्ना प्रकाशित करते रहे। भावना कुँवर गत वर्ष से त्रैमासिक ऑनलाइन ऑस्ट्रेलियांचल का प्रकाशन कर रही हैं।

मेलबर्न

डॉ. सुभाष शर्मा द्वारा प्रदत्त जानकारी के अनुसार मेलबर्न में साहित्य संध्या की पौध राधेश्याम जी और रतन जी ने लगाई, जिसे बाद में सुभाष शर्मा, हरिहर झा, नलिन शारदा आदि कवियों ने सींचा। औपचारिक रूप से साहित्य संध्या का आयोजन पिछले बीस वर्षों से हो रहा है। 2005 में हिंदी दिवस पर बड़ा कार्यक्रम किया गया था। इस कार्यक्रम के लिए बैनर भारत से बनवा कर पोस्ट से मँगाए थे। 2017 से वेस्टर्न सबर्ब में साहित्य संध्या शुरू होने से लोगों में अधिक रुचि पैदा हुई। इसी कारण 'वेरिबी' में सात साल से हर साल एक शायराना कवि सम्मेलन संभव हुआ। प्रतीक कालिया ने साहित्य संध्या की तर्ज पर पंजाबी साहित्यिक संध्या शुरू की।

साहित्य संध्या के सहयोग से तन्वी मोर ने राहत इंदौरी का प्रोग्राम कराया। माहिब खन्ना ने भी एक अच्छा कवि सम्मेलन साहित्य संध्या के सहयोग से आयोजित किया। साथ ही भारतीय कौंसुलावास, मेलबर्न में काउंसिल जनरल के सहयोग से हिंदी दिवस मनाना प्रारंभ हुआ। जाने–माने कवि अशोक चक्रधर तथा कुमार विश्वास के कार्यक्रम भी साहित्य संध्या के सहयोग से संपन्न हुए। अनेक कवियों की पुस्तकों का विमोचन भी साहित्य संध्या के मंच से हुआ। सभी कवियों का सहयोग रहा। मेलबर्न के हिंदी पुरोधा स्वर्गीय दिनेश श्रीवास्तव जी का सहयोग सदा रहा तथा वे नियमित रूप से आते रहे। यद्यपि साहित्य संगीत या नाट्य के जितना रुचिकर नहीं है फिर भी लोगों में साहित्यिक भूख है और लोग जुड़े रहेंगे और साहित्य संध्या ऐसे ही चलती रहेगी यद्यपि यह आज भी रजिस्टर्ड नहीं है।

डॉ. इयान वुल्फोर्ड ने अक्तूबर 2017 में ला ट्रोब यूनिवर्सिटी में हिंदी सम्मलेन आयोजित किया, जिसमें ऑस्ट्रेलिया के हिंदी विद्वानों और साहित्यकारों के अतिरिक्त भारत से भी मृणाल पांडे और अदिति माहेश्वरी आमंत्रित थीं। इसके अतिरिक्त अनेक कवियों और लेखकों की पुस्तकों का प्रकाशन भी हुआ। 'हिंदी–पुष्प' के प्रकाशन का प्रारंभ 2003 में साउथ एशिया टाइम्स के परिशिष्ट के रूप में हुआ था, डॉ. दिनेश श्रीवास्तव जी इसके संपादक थे। सुधा जी और मृदुला इसमें मुख्य भूमिका निभाते थे। डॉ. श्रीवास्तव के देहावसान के पश्चात् पिछले 4 वर्ष से भी अधिक समय से मृदुला कक्कड़ 'हिंदी–पुष्प' के संपादन का कार्य भी संभाल रही हैं। मेलबर्न के अंग्रेजी समाचार पत्र 'साउथ ईस्ट एशिया टाइम्स' में मृदुला कक्कड़ के संपादन में दो पृष्ठ का 'हिंदी पुष्प' बराबर प्रकाशित हो रहा है।

मेलबर्न में हरिहर झा की रचनाएँ अंग्रेजी और हिंदी में प्रकाशित हैं। काव्य संग्रह 'अंग–अंग में अनंग', 'मृत्युंजय' के अलावा संकलनों–'देशांतर', 'गुलदस्ता', बूमरैंग 1 और 2 में भी उनका कार्य प्रकाशित है। डॉ. कौशल श्रीवास्तव की पुस्तकों के अतिरिक्त उनकी कविताएँ, लेख आदि नियमित रूप से प्रकाशित होते रहते हैं। डॉ. सुभाष शर्मा ने बूमरैंग 1 और 2 का सह–संपादन किया है। अनुभूति और अन्य पत्रिकाओं में भी उनकी रचनाएँ प्रकाशित हैं। नए कवियों में संध्या नायर, पूजा व्रत गुप्ता, और युद्धवीर सिंह, सुयश जैसे युवा कवि भी अच्छी कविताएँ रच रहे हैं। अब अंतर्जाल का ज़माना है तो बहुत से लोग सोशल मीडिया के द्वारा अपना साहित्यिक कार्य प्रकाशित कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त 1992 में डॉ. श्रीवास्तव तथा कुछ सहयोगियों ने मिलकर हिंदी–निकेतन प्रारंभ किया था, यह संस्था आज भी सक्रिय है और प्रतिवर्ष हिंदी विषय को लेकर उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों को पुरस्कार प्रदान करती है। लगभग उसी समय 'देवनागरी' पत्रिका का प्रकाशन भी शुरू हुआ था। इसके संपादक सदस्यों में डॉ. श्रीवास्तव, सुधा जोशी और शशि कोछड़ थे। 'देवनागरी' का प्रथम अंक अक्तूबर 1992 में प्रकाशित हुआ था और संभवतया अंतिम अंक 1998 में प्रकाशित हुआ था। सुधा जी उस समय 'देवनागरी' का मुख्य कार्य–भार सँभालते हुए तीन विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्यापन का कार्य भी करती थीं।

पर्थ

कवि, लेखक कुशल कुशलेंद्र जी द्वारा प्रदत्त सूचना के अनुसार पर्थ में 'हिंदी समाज ऑफ वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया' हिंदी साहित्य की दिशा में महत्वपूर्ण काम कर रहा है। 'हिंदी समाज ऑफ़ वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया' पिछले 25 वर्षों से हिंदी भाषा के प्रचार प्रसार के लिए सतत रूप में प्रयासरत है। 'हिंदी समाज ऑफ़ वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया' का मूल कार्य हिंदी भाषा को पढ़ने, लिखने और बात करने या संवाद के उपयोग हेतु बढ़ावा देना है। इस संदर्भ में हिंदी भाषा से जुड़े विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रमों जैसे साहित्य संध्या, इंद्रधनुष, कलम दवात इत्यादि के अलावा बच्चों और वयस्कों दोनों के लिए हिंदी की कक्षाएँ चलाई जा रही हैं।

हिंदी समाज पिछले पच्चीस वर्षों से, 'भारत–भारती' के नाम से वार्षिक पत्रिका भी छापता आ रहा है, जिसमें मुख्यतः स्थानीय लेखकों को बढ़ावा दिया जाता है। हिंदी समाज के रजत जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में 2021 में चौदह स्थानीय कवियों का एक कविता संग्रह 'स्वान नदी के तट से' भी प्रकाशित हुआ है। पर्थ के स्थानीय लेखक और उनकी पुस्तकों की सूची इस प्रकार है:

श्रीमती सावित्री गोस्वामी 'नया दौर' (कहानी संग्रह), श्रीमती लक्ष्मी तिवारी 'पड़ाव' (उपन्यास), श्रीमती रीता कौशल 'रजकुसुम' (कहानी संग्रह) और 'चद्राकांक्षा' (काव्य संग्रह), बाल कहानियाँ, संगीता बंसल और कुशल कुशलेंद्र के काव्य संग्रह मुख्य हैं।

पर्थ के वरिष्ठ कवि प्रेम माथुर जी दिल्ली विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक रहे हैं और हिंदी में कविताएँ और कहानियाँ लिखते हैं। प्रेम माथुर जी बूमरैंग–1 और 2 के सह–संपादक भी रह चुके हैं। बूमरैंग–2 में संगीता बंसल और कुशल कुशलेंद्र की कवितायों ने भी स्थान प्राप्त किया है। हिंदी समाज एक प्लेटफॉर्म प्रदान करता रहा है। ज्योति माथुर, कविता और अन्य अनेक कवि भी लेखन कार्य में संलग्न हैं।

कैनबरा

कैनबरा में साहित्यकार किशोर नंगरानी के प्रयासों के फलस्वरूप कुछ कवि सम्मेलन आयोजित हुए, जिनमें सिडनी और मेलबर्न के कवियों ने भाग लिया। कैनबरा के साहित्यकारों में किशोर नंगरानी, डॉ. अवधेश प्रसाद, अभिजीत देवनाथ मुख्य हैं। किशोर नंगरानी की रचना अनुभूति और बूमरैंग 1–2 में प्रकाशित है। डॉ. अवधेश प्रसाद के तीन कविता संग्रह कलावती प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित हुए हैं– 'खामोशियाँ', 'तन्हाइयाँ' एवं 'चिरागों की कतार'। यहाँ सेमिनार एवं हिंदी गोष्ठियों का आयोजन होता रहता है। मनीष गुप्ता अपने रेडियो के माध्यम से हिंदी का प्रसार कर रहे हैं।

एडिलेड

एडिलेड शहर में कवि डॉ. राय कूकणा साहित्य सृजन कर रहे हैं। डॉ. राय कूकणा की रचना 'अनुभूति' और बूमरैंग 1–2 में प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त प्रशांत श्रीवास्तव व अन्य हिंदी प्रेमी भी हिंदी साहित्य और शिक्षण के क्षेत्र में योगदान दे रहे हैं।

ब्रिस्बेन

ब्रिस्बेन में पाँच साल पहले कवयित्री सोमा नायर ने सनी बैंक हॉल में पहला प्रवासी कवि सम्मेलन करवाया था। आजकल वे 'मेरी हिंदी' के नाम से हिंदी के प्रचार प्रसार के लिए काम कर रही हैं। उन्होंने बाल प्रतिभा

प्रतियोगिता (2021) का आयोजन भी शुरू किया है। कवयित्री सोमा नायर की दो पुस्तकें प्रकाशित हैं– 'ऑफ़ गोड्स एंड ऑड्स' (अंग्रेजी) में, पंखडियाँ, ग़ज़ल और कविता। इससे पहले हरियाणा की पत्रिका 'जनसाहित्य' में भी उनका काम प्रकाशित है। मधु खन्ना की कविताएँ 'बूमरैंग–2' में प्रकाशित हैं। सरबजीत सिंह इंडो ऑज़ पंजाबी साहित्य अकादमी भी चलाते हैं जिसके अंतर्गत वे हिंदी, उर्दू और पंजाबी के कवियों को भी सम्मानित करते हैं। उनकी पंजाबी पुस्तक का हिंदी अनुवाद डॉ. सुरेश नीरव के निर्देशन में हुआ। 'इलासा' की ब्रिस्बेन कोऑर्डिनेटर मंजू जेहु ने डॉ. अशोक चक्रधर कवि सम्मेलन का आयोजन किया। ब्रिस्बेन के अन्य कवियों में रुपिंदर सोज़, कविता खुल्लर, नेत्रपाल सिंह आदि हैं।

2016 से ब्रिस्बेन से ऑस्ट्रेलियन इंडियन रेडियो पर मधु खन्ना का हिंदी भाषा में साप्ताहिक कार्यक्रम आता है उसमें वह भारतीय इतिहास, सांस्कृतिक कार्यक्रम, सभ्यता, महान कवियों व साहित्यकारों व विभिन्न विषयों पर जानकारी देती हैं। मधु खन्ना ने हिंदी भाषा को ऑस्ट्रेलियन विद्यालयों के पाठ्य क्रम में सम्मिलित किए जाने का अभियान व भारतीयों में हिंदी भाषा के प्रति रुचि जागृत करने का प्रयास किया। मधु खन्ना ने 2018 में प्रवासी हिंदी कवि सम्मेलन करवाया व लक्ष्मी नारायण मंदिर में हिंदी की धर्म संबंधी 350 पुस्तकें गीता प्रेस से लेकर लाइब्रेरी हेतु मंदिर में दान की। अनेक पुस्तकों में उनकी स्वरचित कविताएँ छप चुकी हैं।

ऑस्ट्रेलिया भर में सभी धर्मों के उच्च मूल्यों को सिखाने के लिए विश्व हिंदू परिषद द्वारा हिंदू स्क्रिप्चर एजुकेशन भी पढ़ाई जाती है। ऑस्ट्रेलिया के लगभग सभी शहरों में हिंदी रेडियो स्टेशन चल रहे हैं– सिडनी में 'दर्पण रेडियो' हिंदी के साहित्य को काफी प्रसारित करता है इसी तरह कैनबरा में मनीष गुप्ता और किशोर नंगरानी हिंदी रेडियो के माध्यम से हिंदी संबंधित अनेक बातों का प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त ऑस्ट्रेलिया में हिंदी नाटकों का मंचन भी किया जाता रहा है और बहुत से रेडियो स्टेशन हिंदी में कार्यक्रम भी प्रसारित करते रहते हैं।

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी अनुवाद और दुभाषिया सेवा

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी अनुवाद और दुभाषिया सेवा सुविधाएँ भी उपलब्ध हैं। जो लोग इस व्यवसाय में लगे हुए हैं उन्हें यहाँ एक परीक्षा उत्तीर्ण करनी पड़ती है जिसके बाद वे पंजीकृत या अनुमोदित अनुवादक बन सकते हैं। हिंदी से अंग्रेजी या अंग्रेजी से हिंदी दोनों में ही यह सुविधा उपलब्ध है। अंग्रेजी न बोलने वालों के लिए दुभाषिया सेवा भी उपलब्ध करवाई जाती है। आप किसी भी संस्था या चिकित्सालय में जाए और अंग्रेजी समझ न आती हो तो आपके अनुरोध पर आपको हिंदी दुभाषिया प्रदान किया जाता है।

'नाटी' यानि नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ ट्रांसलेटर्स एंड इंटरप्रेटर्स द्वारा अनुवादक और दुभाषिया सेवा की परीक्षा आयोजित की जाती है जिसमें सफल होने के बाद ही आप अनुवादक और दुभाषिया बन सकते हैं। यदि किसी को यह सुविधा चाहिए तो वे NAATI की वेबसाइट पर जाकर अनुवादक और दुभाषिये की तलाश कर सकते हैं। AUSIT संस्था भी एक महत्वपूर्ण संस्था मानी जाती है। समय–समय पर वे इस क्षेत्र में कार्यशालाओं और प्रोफेशनल कोर्स का भी आयोजन करते हैं। इस क्षेत्र में भी यूनियन अथवा फेडरेशन बनी हुई है उनसे भी राय ली जा सकती है।

NAATI की ऑनलाइन डिक्शनरी के अनुसार ऑस्ट्रेलिया में अंग्रेजी से हिंदी का अनुवाद करने वाले पंद्रह अनुवादक उपलब्ध हैं, जबकि हिंदी से अंग्रेजी के अनुमोदित अनुवादकों की संख्या अठारह है। जबकि पचास लोग अनुमोदित दुभाषिये की तरह रजिस्टर्ड हैं। अधिकतर सरकारी वेबसाइटों और समाचारों का अनुवाद हिंदी में किया जाता है, ताकि हिंदीभाषी उसे आसानी से पढ़ सकें। अधिकतर भारतीयों की अंग्रेजी की

समझ होने के कारण हिंदी अनुवादकों और दुभाषियों की संख्या चीनी और अरबी भाषा जितनी नहीं है। रेखा राजवंशी को ऑस्ट्रेलिया की ड्रीम टाइम कहानियों के अनुवाद के लिए 2012 में राष्ट्रीय स्तर पर औसत संस्था द्वारा 'एक्सीलेंस ऑफ़ ट्रांसलेशन' पुरस्कार प्रदान किया गया।

निष्कर्ष

यद्यपि ऑस्ट्रेलिया में पिछले कुछ वर्षों में हिंदी के प्रति प्रेम और जागरूकता बढ़ी है। माइग्रेशन की इस लहर में भारत से आने वाले कुछ युवा अप्रवासी भी अपने साथ हिंदी भाषा और साहित्य का समृद्ध ज्ञान ला रहे हैं। पर चिंता तो इस बात की है कि हिंदी साहित्य का तीस साल बाद क्या भविष्य होगा? न्यूयॉर्क टाइम्स में प्रकाशित लेख के अनुसार इस सदी के अंत तक विश्व में बोली जाने वाली आधी भाषाएँ विलुप्त हो जाएँगी। तो क्या इस सदी के अंत तक हिंदी भी विलुप्ति के कगार पर पहुँच जाएगी? या फिर बॉलीवुड के गाने और संगीत कविता लिखने की प्रेरणा देंगे? या हिंदी फ़िल्में कहानी लिखने के लिए विद्यार्थियों को प्रेरित करेंगी? जब भारतीय अप्रवासियों की भावी पीढ़ी हिंदी लिख, पढ़ ही नहीं पाएगी तो क्या 'स्पीच टू टेक्स्ट' जैसी तकनीक उन्हें हिंदी में लिखना सिखा पाएगी? या हिंदी रोजगार के ऐसे अवसर पैदा करेगी जो युवा पीढ़ी के मन में हिंदी के प्रति उत्साह का संचार करेंगे? जो भी हो यह आवश्यक है कि इस बारे में निरंतर विचार विमर्श किया जाए और अपनी अगली पीढ़ी को बराबर हिंदी से जोड़ने का प्रयास जारी रखा जाए।

❑❑❑

'गिरमिटिया जीवन' और मेरी कविताएँ

दीप्ति अग्रवाल

कविता

कविता वक्तव्य नहीं गवाह है
कभी हमारे सामने
कभी हमसे पहले
कभी हमारे बाद
कोई चाहे तो भी रोक नहीं सकता
भाषा में उसका बयान
जिसका पूरा मतलब है सच्चाई
जिसकी पूरी कोशिश है बेहतर इंसान
उसे कोई हड़बड़ी नहीं
कि वह इश्तहारों की तरह चिपके
जुलूसों की तरह निकले
नारों की तरह लगे
और चुनावों की तरह जीतें
वह आदमी की भाषा में
कहीं किसी तरह जिंदा रहे बस।

कुँवर नारायण[1]

मैंने भी कुँवर नारायण की 'कविता' की भाँति कविता को आदमी की भाषा में जिंदा रखने के लिए ही एक छोटा सा प्रयास किया है और मेरी कविताओं का विषय है 'गिरमिट जीवन'। गिरमिट 'एग्रीमेंट' शब्द का अपभ्रंश रूप है। ये श्रमिक अधिकतर पाँच वर्ष के एग्रीमेंट के तहत भारत से 1835 से 1920 की अवधि में मॉरिशस (1834), गयाना(1838), त्रिनिदाद (1845), दक्षिण अफ्रीका (1860), सूरीनाम (1873) और फ़ीजी (1879) आदि देशों में जाने अनजाने, बहला फुसलाकर ले जाए गए थे।[2] ये श्रमिक गिरमिटिए कहलाए क्योंकि ये श्रमिक अमूमन पाँच वर्ष के अग्रीमेंट के तहत आए थे। अग्रीमेंट शब्द ही का अपभ्रंश 'गिरमिट' कहलाया और श्रमिक 'गिरमिटिए' कहलाए।[3] इन गिरमिटियों (श्रमिकों) के कष्टपूर्ण अनुभवों को संपूर्णता से कविता में ढालना बहुत दुष्कर कार्य है क्योंकि उनके कष्ट, पीड़ा, संवेदना को मैंने जाना है। वहाँ के लोगों के जीवन के बारे में साक्षात्कारों के जरिए, विभिन्न वृत्तचित्रों और सोशल मीडिया की सहायता से समझा है, लेकिन भोगा नहीं है। असली यथार्थ की अभिव्यक्ति तो भुक्तभोगी ही भली–भाँति कर सकता है लेकिन गहन अध्ययन से कुछ हद तक मैं भी उन श्रमिकों की अनुभूतियों से जुड़ पायी हूँ और उनका इतिहास पढ़ते हुए मेरी भी आँखें बहुत बार नम हुई हैं। मेरी अधिकतर कविताएँ सच्ची घटनाओं पर आधारित हैं और एक तरह से 'गिरमिट इतिहास' का दस्तावेजीकरण करती हैं। ये कवितायें भारत के उन शूरवीरों को श्रद्धांजलि हैं जिन्होंने दारुण कष्ट सहकर भी अपना अस्तित्व बनाए रखा और आने वाली पीढ़ियों को बेहतर भविष्य दिया। काल के जिस क्रम से अनुबंधित श्रमिक इन 6 देशों मॉरिशस, गयाना, त्रिनिदाद, दक्षिण अफ्रीका, सूरीनाम और फ़ीजी में ले जाए गए थे, मैंने भी अपनी कविताओं का क्रम उन्हीं देशों के आधार पर रखा है।

मेरी पहली कविता 'अप्रवासी घाट' मॉरिशस के 'अप्रवासी घाट' की तस्वीरों में से एक तस्वीर से प्रेरित है जिसमें एक पाषाणशिला पर श्रमिक के नंगे पैरों के निशान बने हुए हैं जो प्रतीकात्मक रूप में भारत से मॉरिशस आए गिरमिटियों के मॉरिशस में पड़े पहले कदम को दर्शाते हैं।[4] जैसे ही मैंने यह तस्वीर देखी पहला ख्याल दिमाग में यह आया क्या वे श्रमिक नंगे पैर थे? और इस

तरह इस कविता का सृजन हुआ। वर्तमान में मॉरिशस का 'अप्रवासी घाट' पोर्ट लुईस में स्थित एक पर्यटक स्थल है जिसे ब्रिटिश उपनिवेश ने विभिन्न देशों से आने वाले अनुबंधित और ठेके पर आने वाले श्रमिकों के लिए बनवाया था। 1849 से 1923 की अवधि के दौरान तकरीबन आधा मिलियन भारतीय अनुबंधित श्रमिकों ने सबसे पहले यहाँ कदम रखा और उसके बाद उन्हें ब्रिटिश उपनिवेश के विभिन्न बागानों में भेजा गया। आज यह 'अप्रवासी घाट' मॉरिशस के इतिहास और संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।[5]

अप्रवासी घाट

पत्थर पर पड़े
गिरमिटियों के कदमों के निशान
देखते ही पहला ख्याल कौंधा
क्या वे नंगे पैर थे?
जो छप गए उनके पैर
कैसा मंजर रहा होगा ना!
क्या क्या घुमड़ रहा होगा मन में?
अनजान धरती, अनजान देश
अनजान लोग, अनजान हवा
छोटी सी पोटली बगल में
दबा कर आ गए इतनी दूर
राम नाम का गुटखा और लोटा डंडा
क्या कर देंगे बेड़ा पार?
'लेवनीदास' जहाज में चढ़ाया अराकाटी ने
भेजा इतनी दूर
क्या पाँच बरस के गिरमिट के बाद
वापसी भी होगी गाँव में?
कहाँ हैं किसी भी पत्थर के नीचे सोना?
हाँ खून जरूर बन गया पसीना
कर दिया जंगल में मंगल
गोरों ने बटोरें नोटों के बंडल
गिरमिटियों के खून पसीने ने उगाया सोना
वर्तमान पीढ़ी है शुक्रगुजार उनकी
पूजती है उन छपे पैरों को आज भी।
वो महज पत्थर पर छपे पैर नहीं
पहचान है आज बसे भारतवंशियों
के अस्तित्व की,
उनके कठोर श्रम की।

मेरी दूसरी कविता 'गर्भनाल' गयाना की गुयात्रा बहादुर की पुस्तक 'कूली वुमेन द ओडिसी ऑफ इंडेंचर' से प्रेरित है। गयाना में जन्मी और न्यूयार्क में रहने वाली गुयात्रा कैसे भारत से अपने आपको जुड़ा हुआ महसूस करती है, यह इस पुस्तक में वर्णित है।[6] यह उपन्यास अपनी पहचान तलाशने वाली गुयात्रा या उसकी परदादी की कहानी भर नहीं है बल्कि औपनिवेशिक काल में जितने भी लोगों ने इतिहास के कालखंड में प्रवासित होकर भारतीय डायस्पोरा का निर्माण किया और जो अपनी जड़ें तलाश रहे हैं, उन सबकी कहानी है। उनके पिता की दादी सुजारिया कैसे उत्तर भारत से गयाना पहुँची और कैसे गुयात्रा के पिता लाल बहादुर का जीवन गयाना में कटता है और एक दिन वे एक बेहतर जिंदगी की तलाश में अपने बच्चों को लेकर न्यूयॉर्क चले जाते हैं। लेकिन गुयात्रा का रंग रूप, हिंदी फिल्में, गाने, देवी–देवताओं की तस्वीरें, भारत की संस्कृति, अपनी जड़ों की खोज उन्हें भारत खींच लाती है। वे भारत से अपने आपको जुड़ा हुआ महसूस करती हैं।[7] एक साक्षात्कार में भी गुयात्रा बताती है कि जब वे बीस वर्ष की थी तब उनके पिता ने उन्हें गुयात्रा की परदादी के बारे में बताया था कि 1903 में उनकी परदादी ने गर्भावस्था में अकेले कलकत्ता छोड़ा था। उनका कहना है कि शायद उनके पिता ने इतने बरस तक जानबूझकर चुप्पी धारण कर रखी थी। लेकिन उनका सोचना है कि बहुत से मामलों में बहुत से संस्मरण तो वक्त के साथ मिट जाते हैं। उन्होंने यह भी बताया कि इस किताब को लिखने के लिए वे अपनी परदादी का गाँव ढूँढने के लिए बिहार के ग्रामीण हिस्सों में भी

गई थीं।[8] उपन्यास में वर्णित घटनाएँ बताती हैं कि किस तरह 29 जुलाई 1903 को क्लाइड नामक जहाज से गर्भवती सुजारिया गयाना के लिए रवाना होती है और जहाज में ही बच्चे को जन्म देती है। किस तरह गुयात्रा के पिता गयाना से न्यूयॉर्क प्रवासित होते हैं जो उनको जादू के डब्बे में पैर रखने जैसा महसूस होता है। लेखिका इस तथ्य को मानती हैं कि हालाँकि उसके माता–पिता और दादा–दादी कभी भारत नहीं गए थे लेकिन भारत का धर्म और बॉलीवुड उन्हें भारत की ओर खींचता था। जब वे सोलह वर्ष बाद न्यूयॉर्क से अपनी जन्मभूमि गयाना जाती है तब अनुभव करती हैं कि आज भी गयाना के प्रवासी अपने आपको भारतीय मानते हैं। लेखिका अपने आपको अमरीकी मानती है उनका कहना है कि कोई अमेरिका में पैदा हुआ हो और वहीं पर उसकी परवरिश हुई हो तो वह भारतीय नहीं हो जाता है। लेकिन साथ–साथ लेखिका की कद–काठी, रंग–रूप, आस्था–विश्वास उनको भारतीयता का भी एहसास करवाते हैं। वे भावनात्मक रूप से भारतीय है तभी तो वे अपनी पहचान तलाशने भारत आती हैं।[9]

गर्भनाल

दादी का देश भारत
पिता का गुयाना
मेरा अमरीका
मेरे बच्चों का पता नहीं...
क्या पता...
भारत हो जाए ?
पूरा हो जाए वृत्त
सारे देशों की संस्कृति
को कर आत्मसात
बन जाएँ फिर से भारत
ना भी बने तो क्या ?
कुछ न कुछ तो है इस देश में
चुम्बकीय आकर्षण
क्यों आँखें चमक जाती हैं इस नाम से
या गर्भनाल का संबंध
है इतना गहरा इतना अटूट
कौन जानता है ...

मेरी तीसरी कविता 'पोस्टकार्ड के सृजन' की प्रेरणा मुझे एक आलेख को पढ़कर मिली जिसमें त्रिनिदाद में जन्मी रेणुका महाराज ने भारतीय गिरमिट श्रमिक महिलाओं की पोस्टकार्ड पर छपी फोटो को टैक्नीकलर में बदलकर प्रदर्शनी लगाई थी। इससे मुझे पता चला कि औपनिवेशिक व्यवस्था ने भोले–भाले भारतीयों को भरमाने के लिए कितने तरह के प्रपंच रचे थे। इनमें से एक था व्यावसायिक फोटोग्राफर से सोने–चांदी के गहने कपड़ों से लदी–फदी भारतीय औरतों की तस्वीरें खिंचवाकर कर पोस्टकार्ड पर छपवाना। उन पोस्टकार्डों पर 'गिरमिटिए' भारत अपने रिश्तेदारों को पत्र लिखते थे जिससे भारतीयों को लगता था कि दूर त्रिनिदाद में तो बहुत सुख–सुविधा और पैसा है।[10] अध्ययन करने पर पता चला कि उन औरतों को 'कुली बेली' कहा जाता था। असलियत तो यहाँ आने के बाद ही पता चलती थी। लेकिन तब तक वे श्रमिक उनके जाल में फंस चुके होते थे और वापसी का कोई रास्ता नहीं बचता था। हारकर वे उसे ही अपनी नियति मान लेते थे और यह चक्र चलता रहता था। त्रिनिदाद के पोर्ट ऑफ स्पेन में एक फ्रांसीसी फेलिक्स मोरिन का फोटोग्राफी का स्टूडियो (1869–1890) था। जिसमें उन्होंने भारतीय श्रमिक औरतों के विभिन्न आकर्षक फोटो खींचे थे और उस फोटो को पोस्टकार्ड पर छापा था। गया पिलाई ने अपने एक साक्षात्कार में कहा कि गिरमिट–प्रथा में बहुत कुछ ऐसा है जिसे तरजीह नहीं दी गई है और जो आपत्तिजनक है। "यह भारत में रहने वाले लोगों के लिए एक तरह का विज्ञापन था। गुयात्रा बहादुर ने कहा कि ये पोस्टकार्ड एक तरह से उपनिवेश में जनसंपर्क बढ़ाने का काम कर रहे थे।[11]

पोस्टकार्ड

पारबती कहती थी
चीनीदाद भेज दो मुझे भी बापू
रमिया का पोस्टकार्ड आया हैं वहाँ से
खूब गहने कपड़ों से लदी औरतें रहती
हैं वहाँ पर
और यहाँ भारत में?
पेट भर रोटी भी नहीं
जेवर कपड़ा तो दूर की बात
एक दिन भाग गई पारबती
किसी के साथ
सुना किसी पंडित से बतला रही थी
पुलिया के नीचे
उसके बाद कोई खबर नहीं
एक दिन आया वही रंगीन पोस्टकार्ड
लेकिन इबारत आँसुओं से भरी
सब झूठ था बापू
सब झूठ
दिन भर हाड़ तोड़ मेहनत
मार कुटाई अलग
पेट भी नहीं भरता
दुखता है हाड़ गोड़
जहाँ तहाँ हाथ भी लगा देता है
मुँहझौसा सरदरवा
मौका मिले तो गोरा भी नहीं चूकता
मनमानी करने से
बापू सबको कह दे
फाड़ कर फेंक दे ये पोस्टकार्ड
ये तो गोरन की चाल है
भारतीयों को भरमाने की
कोई मत आना चीनीदाद
यहाँ की चीनी में है
हमारी हड्डियों की खाद
हमारे खून से होती हैं
ईख की सिंचाई
कोई मत आना चीनीदाद
बापू रोक ले सबको
मत आने देना चीनीदाद...

मेरी चौथी कविता 'गुलामी' भवानी दयाल संन्यासी की आत्मकथा 'प्रवासी की आत्मकथा' पुस्तक से प्रेरित है। भवानी दयाल के माता–पिता अनुबंधित श्रमिक के तौर पर दक्षिण अफ्रीका आए थे। भवानी बताते हैं कि उनकी माता मोहिनी देवी बाल–विधवा थीं। वे अयोध्या सरयू स्नान के लिए गई थीं और भीड़ में अपने साथियों से बिछड़ गई थीं और एक त्रिपुंडवेशधारी पंडित, जो वास्तव में एक दलाल था उनको बहला फुसला कर डीपो भिजवा देता है। डीपो से वे कलकत्ता की यात्रा करती हैं जहाँ से वे दक्षिण अफ्रीका पहुँच गईं। इसी तरह उनके पिता जयराम भी जमींदार द्वारा अपमानित किए जाने पर गाँव छोड़ देते हैं और अराकाटी के फंदे में फँसकर डीपो पहुँच जाते हैं और दक्षिण अफ्रीका जाते हुए उनकी मुलाकात मोहिनी देवी से होती है और वे दोनों परस्पर एक होना स्वीकार कर लेते हैं। एक गिरमिटिया गुलाम का दाम बीस पाउंड था। उनके माता–पिता के पाँच वर्ष का गिरमिट पूरा हुआ और उन्होंने नेटाल में ही बसने का निश्चय किया। लेकिन नेटाल में भारत की बड़ी बेइज्जती और बदनामी हो रही थी। वह निरा कुली–कबाड़ियों का देश समझा जाता था। भवानी के पिता ने भारत वापस लौटने का फैसला किया। लेकिन भारत में तो सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, परिस्थितियाँ और अधिक भयावह थीं। अंग्रेजों का गुलाम भारत उस समय भयंकर गरीबी, जहालत, शोषण, रूढ़िवादिता के दौर से गुजर रहा था। अतः साढ़े आठ साल बाद भवानी ने गृह–कलह से तंग आकर भारत छोड़ दिया और वापस दक्षिण अफ्रीका आ गए। वहाँ रहकर उन्होंने प्रवासी भारतीयों गिरमिट मजदूरों के हित के लिए कार्य करना आरंभ किया। गांधीजी के 'सत्याग्रह आंदोलन' में साथ देने के अपराध में वे जेल भेजे गए। वहाँ जेल के 'गोरे' अधिकारी और 'काले' कर्मचारी

किस प्रकार भारतीयों पर अत्याचार करते थे, उसका वर्णन इस कविता में किया गया है।[12]

गुलामी

डरबन का सेंट्रल जेल
या मध्ययुग का कसाईखाना
या सभी अंग्रेजों का जेलखाना
शैतान की औलाद गोरे पहरेदार
उनसे क्रूर उनके काले गुलाम
हाँ ये बात और है
खाना भरपेट मिलता था
लात, डंडे, मुक्के खा–खा कर
मुटिया गए थे हम
वैसे भी खाना तो इतना गंधाता
कुत्ता भी सूँघने के बाद ना खाता
ओढ़ने बिछाने को बहुत कुछ था
दुख की चादर ओढ़ो
उसी को बिछा लो
चाहे तकिया बना लो
पहनने के कपड़े इतने सुवासित होते
कि पहनते ही दम घुटने लगता
बहुत सी भाषाएँ सीखी
अंग्रेज़ कहता
ओ 'कुली' कुत्ता मुँह बंद कर (यू कूली डॉग शट अप)
नहीं तो खींच लूँगा जुबान
हबशी सिपाही चिल्लाता
ओ 'मकुला' छेछे (अरे कूली जल्दी कर)
मैंने जवाब दिया
मिनी फिगीले माँझे (मैं तो अभी अभी आया हूँ)
किटकिटाए दाँत काले ने
दबोची मेरी गर्दन
नंगा ही खींचा मुझे बाहर
अत्याचार के खिलाफ
लड़ना भी वहीं सीखा
शिकायत की
पर गवर्नर भी चोर का मौसेरा भाई
गोरा
दिखाया शब्दकोश में कूली शब्द
अर्थ मजदूर अतः कोई अपराध नहीं
फिर शुरू ज़ोर जुल्म की नंगी नुमाइश
पीटा प्रागजी को बूटों से
घसीटा उन्हें कंकरीली धरती पर
दी आधी खुराक
किया सत्याग्राहियों ने अनशन
हुई शिकायतें दूर
यह सच है गुलामी
सिखाती है क्रूरता
पर यह भी सच है
गुलामी कायरता भी सिखाती है
गुलामी अत्याचार से लड़ना भी सिखाती है
गोरों के बदलते ही बदल गए काले भी
बुलाने लगे 'बाबा'
'मकूला' की जगह
फिर खत्म की गई एक दिन 'गिरमिट प्रथा'
नई पीढ़ी को मिली विद्या और धन
विरासत में
और छा गए भारतवंशी
पूरे विश्व में अपनी प्रज्ञा और श्रम के बल पर।

मेरी पाँचवी कविता 'यादों के खंडहर' सूरीनाम के गिरमिटियों को समर्पित है। इस कविता की प्रेरणा मुझे सूरीनाम के सृजनात्मक साहित्य को पढ़कर हुई। चित्रा गयादीन, जीत नाराइन, देवानंद, शिवराज, सूर्यप्रसाद बीरे, हरिदेव सहतू, अमर सिंह राणा आदि के पद्य और गद्य पढ़कर तथा सूरीनाम के गिरमिटियों के दैनिक जीवन में दुख कष्ट से अभिभूत होकर मैंने यह कविता लिखी।[13]

यादों के खंडहर

बैठी हूँ शुगर फ़ैक्टरी के खंडहरों में
चमगादड़ सी फड़फड़ा रही हैं यादें
केतारी के बोझ तले दबे बाबा

या दबे थे अपने दुःखों से.... पता नहीं
चूल्हे पे पकता था भोजन
या आजी के सपने ...पता नहीं
ओखरी में मूसर से धान कूटती माई
या अपनी तकलीफ़ें ...पता नहीं
मचान पर धुलते थे बर्तन
या उनके अरमान ...पता नहीं
हाँ इतना जरूर पता है
उनके खून पसीने से मिट्टी बनी सोना
उनके दूध ने हममें फूँके प्राण
उन्होने हमें बनाया 'कुली' से कुलीन
ना हमें 'कुली' बनने में शर्म थी
ना कुलीन बनने का घमंड
वे अमर हैं, इतिहास में, हममें,
हमारी पीढ़ियों में
जय गिरमिटिया! जय सूरीनाम !
जय भारत!

मेरी छठी कविता 'जड़ें' फ़ीजी के नामचीन और ऑस्ट्रेलिया नेशनल विश्व–विद्यालय के प्रोफेसर ब्रिज वी. लाल की पुस्तक 'फ़ीजी आधी रात से आगे' से प्रेरित है। यह कविता एक तरह से उनके जीवनकाल की कुछ स्मृतियों का संकलन है जो मैंने इस पुस्तक में पढ़ी थी। प्रोफेसर के आजा भारत से अनुबंधित श्रमिक के तौर पर आए थे और वह प्रोफेसर को भारत में अपने गाँव बहराईच में बीते अपने बचपन की बातें बताते थे। प्रोफेसर कई बार सोचते थे कि वह तो भारत से जुड़े हुए हैं लेकिन आगे आने वाली पीढ़ी तो भारत से और भारत की भाषा हिंदी से जुड़ नहीं पाएगी। लेकिन अचानक एक दिन प्रोफेसर का बेटा कहता है,पापा अगर मुझे मौका मिला दूसरी भाषा सीखने का, तो मैं हिंदी सीखना चाहूँगा, अपने बच्चों को एक बार भारत लेकर जाऊँगा।"[14] इन सब बातों से प्रेरित होकर मैंने यह कविता लिखी–

जड़ें

जन्मभूमि फ़ीजी
कर्मभूमि ऑस्ट्रेलिया
फिर भारत क्या?
मानो तो सब कुछ
नहीं तो कुछ भी नहीं
जड़ें तो यहीं थी ना
और जड़ से ही मैं हूँ
बचे हैं बाबा के सुनाए
स्मृतियों के खंडहर
तरसते रहे एक बार गाँव जाने को
अंत समय तक आँखो में था भारत
आज पूरे विश्व में हैं हम भारतवंशी
माना लोहा सबने हमारी जिजीविषा का,
श्रम का और बुद्धि का भी
पर ऐसा क्यों?
हम माइनस से शुरू करके भी
यहाँ तक पहुँच गए
और गाँव वहीं का वहीं
वैसे का वैसा
आज आज़ादी के 70 साल बाद भी?
जैसा बाबा ने छोड़ा था
तभी शायद मेरे बेटे ने कहा
जब आया मेरे साथ बनारस, पिंडदान करने
पापा, अच्छा है बाबा चले गए यहाँ से
तभी आप कुछ बने और हम भी
मैंने तो फिर भी बाबा के साथ जिया है भारत को
पर मेरे बच्चे.... उन्होंने नहीं
जितना मैं जुड़ा हूँ भारत से
वो नहीं
फिर भी नहीं जानता था
जड़ें कहाँ तक जाती हैं
कल बेटा बोला अंग्रेज़ी में
पापा हिंदी सीखनी है

अपने बच्चों को
भारत ले जाना है
मैं आह्लादित... आँखें नम
बाबा की तस्वीर के आगे नत
सचमुच जड़ें कहाँ तक जाती हैं
सचमुच जड़ें कहाँ तक जाएँगी ?
कौन जानता हैं....

मेरी सातवीं कविता 'विक्षिप्त नारायणी' कविता की प्रेरणा मुझे वाणी प्रकाशन से छपी प्रवीण झा की पुस्तक 'कुली लाइंस' के फ़ीजी के ट्पुआ पाठ के एक प्रसंग से मिली। नुसवासाऊ बागान में काम करने वाली एक भारतीय श्रमिक महिला नारायणी ने 16 अगस्त 1910 को एक बच्चे को जन्म दिया जो चार दिन के बाद मर गया। नारायणी तन और मन दोनों से पस्त थी और काम पर जाने की हालत में नहीं थी, लेकिन निर्दयी कोलंबर ब्लाम्फील्ड को नारायणी की हालत से कोई लेना देना नहीं था। वह नारायणी के काम पर ना आने से क्रोधित हो उठा और उसने उसको बालों से पकड़कर घसीटा, उसे पत्थर पर पटका और बेंत से मारा। इस सबसे नारायणी की हालत इतनी खराब हो गई थी कि वह चलने फिरने लायक भी नहीं बची। अतः उसे खाट पर लिटा कर सूवा कोर्ट गवाही के लिए लाया गया। मुकदमा चला लेकिन फिर भी ब्लाम्फील्ड को रिहा कर दिया गया। सत्ता गोरों की थी, अपराधी गोरा था और न्यायाधीश भी गोरा ही था। अतः फैसला भी गोरे के हक में गया। लाचार नारायणी यह सदमा सह नहीं सकी और मानसिक संतुलन खो बैठी।[15]

विक्षिप्त नारायणी
क्या उनका कलेजा
पत्थर का था?
या उनके खून में
जहर मिला था?
जो नहीं पसीजता था उनका
दिल, किसी के दर्द से
नवजात बच्चा मरा
नारायणी का
घर सूना, आँगन सूना
सूना मन और देह
कैसे जाती काम पर
ब्लामफील्ड गोरे राक्षस ने मारा उसे
कमजोर देह
पड़ गई अचेत
सुवा कोर्ट में पेशी
खाट पर लिटाया
कोर्ट पहुँचाया
यहाँ भी कुसट्ट पर गोरा आततायी
छूटा राक्षस निर्दोष बनकर
और नारायणी खो बैठी
मानसिक संतुलन
इतना पाप करके भी
कभी व्यवस्था ने क्यों नहीं खोया
अपना मानसिक संतुलन?
क्यों आखिर क्यों ?
किसी ने सोचा है कभी... ?

मेरी आठवीं कविता सती नारी कुंती सनाढ़य तोताराम की पुस्तक 'फ़ीजी में मेरे इक्कीस वर्ष' से प्रेरित है। भारतीय नारी अपने सतीत्व की रक्षा के लिए जान भी देने से नहीं चूकती है यह बात विश्व प्रसिद्ध है। फ़ीजी में गिरमिट जीवन के कठोर दिनों में भी भारतीय नारी ने कैसे अपनी जान पर खेल कर अपना सतीत्व कायम रखा और वीरता और साहस से गोरों और बागान के सरदारों के काले कारनामे 'भारत मित्र' में छपवा कर कैसे गिरमिट स्त्रियों की दुर्दशा भारतवासियों तक पहुँचाई यह सब इस कविता का मूल है।

सती नारी कुंती
फ़ीजी के इतिहास
के काले पन्नों पर
छपा नाम सोने से
भारत की सती नारी
कुंती का

10 अप्रैल, 1913 का दिन
उम्र बीस वर्ष, गाँव लखुआपुर
चमरी टोला, पोस्ट बेलापुर, जिला गोरखपुर
सीता की तरह वन में
चली आई पति के संग
पेट की खातिर, संग की खातिर
अनजान धरती, अनजान देश
पर यहाँ क्या मिला ?
बंधुआ दास जैसी जिंदगी
हाड़ तोड़ काम, आधा पेट रोटी
हंटर की मार
सब मंजूर था उसे
नहीं मंजूर था बस
अपने शील पर आँच
चाहे जान ही क्यों ना चली जाए
साबूकेरे के खेत में
झपटा जो गोरा और सरदार उस पर
मारा धक्का, किया मुक़ाबला
कूद गई नदी में
जयराम ने बचाया कृष्ण बनकर
नहीं भूली कुंती, वो लंपट आँखें
छपवाए काले कारनामे
'भारतमित्र' में
खूब हुई थू–थू
उन काले दिल वाले, गोरों की
और स्तुति सती कुंती की
फ़ीजी में भी, भारत में भी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नारायण कुँवर, कविता, कुँवर नारायण–कविता कोश

2. लाल, ब्रिज वी– 2006– द एनसाइक्लोपीडिया ऑफ द इंडियन डायस्पोरा, एडिशंज डीडीएर मिलेट, सिंगापुर

3. गंभीर सुरेंद्र, गयाना देश में हिंदी की कहानी पृ. 47. प्रवासी भारतीयों में हिंदी की कहानी (संपा.) सुरेंद्र गंभीर, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली 2017

4. आप्रवासी घाट हाइ रेस स्टॉक इमेजेस शटरस्टॉक

5. आप्रवासी घाट विकिपीडिया

6. बहादुर, गुयात्रा, कूली वुमेन द ओडिसी ऑफ इंर्डेचर–हेकंट बुक पब्लिशिंग इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, गुरुग्राम–इंडिया

7. मुनोस, डेल्फ़ीन – 2019 इंडो सेण्ट्रसीती एंड डासपोरा, राइटिंग बैक तो द न्यू इंडिया इन एम जी वासंजी आ प्लेस विदडंन :रिडिस्कोवेरिंगइंडिया एंड गुयात्रा बहादुर :द ओडिसी ऑफ इंर्डेचर स्पेलशल इशू "इमेजीनरी होमलैंड :साउथ एशियनलिटरेचर इन डास्पोरा" एड क्लोडीन ली ब्लांकएंड निकोलस डीजीन। DESI

8. बैरेक, मैक्स ए कान्वरसेशन विद : औथर गुयात्रा बहादुर– द न्यू यॉर्क टाइन्स नवंबर–21

9. जितेंद्र. कुली वुमेन : द ओडिसी ऑफ इंडेंचर गिरमिटिया सांस्कृतिक पहचान का संघर्ष और मूल के तलाश की एक अनकही कहानी, प्रवासी संसार, जनवरी–जून 2017, दिल्ली

10. प्रसाद सी सूजेन–इंडिया अब्रोड इन न्यू एक्सिबिशन–इंर्डेचरशिप इन टेकनीकलर नवंबर–14, 2020

11. हेना शर्मा– वाइ इंडियन वुमेन बिकेम द फेसेज़ ऑफ दीज़ विक्टोरियन एरा पोस्टकार्ड्स 24, दिसंबर 2020

12. संन्यासी, भवानी दयाल प्रवासी की आत्मकथा, (संपा.) मंगलमूर्ति, अनामिका पब्लिशर्ज एंड डिस्ट्रीब्यूटर्ज़; दिल्ली 2017 पृ. 22, 74–76

13. वर्मा विमलेश कान्ति/भावना सक्सेना, सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा– 2015

14. लाल ब्रिज वी. फ़ीजी यात्रा आधी रात से आगे, (अनु) सत्या श्रीवास्तव. नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया–2005

15. झा, प्रवीण, कुली लाइंस, वाणी प्रकाशन, दिल्ली–2019. पृ 94.

16. सनाढ्य, तोताराम. फ़ीजी में मेरे इक्कीस वर्ष, भारती भवन, फीरोजाबाद (आगरा) 1972

❑❑❑

मॉरिशस संघर्ष की त्रासद अभिव्यक्ति

(संदर्भ लाल पसीना, गांधी जी बोले थे, और पसीना बहता गया–अभिमन्यु अनत)

हरप्रीत कौर

मॉरिशस में हिंदी लेखन की समृद्ध परंपरा रही है, मॉरिशस को हिंद महासागर का मोती कहा जाता है। अलेक्सांद्र जुमा ने अपने उपन्यास जॉर्ज में इस प्रदेश को भारत की पुत्री कहा है। मॉरिशस को समृद्ध करने में भारत के अप्रवासी श्रमिकों ने सालों जुल्म सहे। हिंद महासागर का यह द्वीप अपने इतिहास में लाखों लोगों की दास्तां समेटे हुए है। मॉरिशस में अधिकार जमाने की दृष्टि से समय–समय पर अनेक देशों से लोग आए, आखिरकार अंग्रेजों ने इस पर अधिकार जमा लिया। यहीं से मॉरिशस में मजदूरों का बसाया जाना शुरू होता है। अभिमन्यु अनत अपने उपन्यास 'लाल पसीना' में इसी को रेखांकित करते हैं।

हिंद महासागर से यात्रा करते हुए पुर्तगालियों का आगमन इस द्वीप से हुआ। इसे बसाना जब टेढ़ी खीर प्रतीत हुआ तो वे आगे बढ़ गए उनकी इच्छा भारत जीतने की थी। पुर्तगालियों के बाद और भी आए और गए। भारत पर अधिकार जमाने के लिए फ्रांस और इंग्लैंड के बीच संघर्ष भी हुआ था। उसी समय इस द्वीप को भारत विजय की सुविधा के लिए लक्ष्य में रखा गया था। इसी द्वीप से होकर फ्रांसीसियों ने मद्रास में अंग्रेजों के खिलाफ पहली लडाई लड़ी। इन्हीं लोगों के समय में मॉरिशस में भारतीयों का आगमन शुरू हुआ। इस द्वीप के महत्व को समझकर अंग्रेजों ने भारतीय सेना के साथ फ्रांसीसियों पर आक्रमण किया और द्वीप उनके अधिकार में आ गया। यहीं से मॉरिशस में भारतीयों के प्रवेश की महत्वपूर्ण कहानी शुरू होती है। हम इस आलेख में अभिमन्यु अनत के तीन उपन्यासों 'लाल पसीना', 'गांधी जी बोले थे', और 'पसीना बहता गया' से संदर्भ लेते हुए मॉरिशस में भारतीयों के शोषण की दास्तां, मुक्ति की छटपटाहट और अतंतः अपनी शर्तों पर जीवन जीते हुए मौलिक अधिकारों, मूलभूत सुविधाओं की माँग करते हुए भारतीयों की एक तस्वीर देखने का प्रयास करेंगे।

मध्यकाल का इतिहास ब्रिटिश उपनिवेश के शोषण का इतिहास रहा है। अंग्रेज इतिहासकार ईसाई धर्म की कथित कल्याणकारी धारणा के आलोक में विश्व को बदलने की पहल के रूप में व्याख्यायित करते रहे हैं। यह पश्चिम की पूर्व के प्रति घृणा सूचक दृष्टि के ही कारण था कि उसने अपने शोषण के साम्राज्य को कल्याणकारी योजना का प्रोजेक्ट बनाकर प्रस्तुत किया है। पूँजीवादी विकास की प्रक्रिया में लूट और शोषण तो स्थायी मूल्य की तरह रहे हैं। कथित ब्रिटिश एम्पायर की नींव में कल्याण नहीं शोषण ही शोषण है। अभिमन्यु अनत मॉरिशस के माध्यम से इसी शोषण को रेखांकित करते हैं। गंगाप्रसाद विमल के शब्दों में अभिमन्यु अनत ने डेढ़ सदी के भारतीय संघर्ष में आई तमाम तरह की विपदाओं का चित्रण कर एक संघर्ष की तस्वीर प्रस्तुत की है। संघर्ष का जो नया वातावरण और आधार 'लाल पसीना' में पल्लवित हुआ था, उसका विकास जातीय आत्मसंघर्ष और व्यापक रूप से सामुदायिक एकता के रूप में 'पसीना बहता गया' में दिखाई देते हैं। 'गांधी जी बोले थे' में वह एक वैचारिक उष्मा के रूप में बड़ा आधार बनता है, जिस पर एक नए वर्गनिरपेक्ष, वर्णनिरपेक्ष, धर्मनिरपेक्ष, व्यवस्था के मूल बिंदु राष्ट्रप्रेम, पुनर्निर्माण और संघीय व्यवस्था के लिए उन्हें एकजुट होने की रूपरेखा तैयार करनी होती है।

तीनों उपन्यासों की इस श्रृंखला में अभिमन्यु अनत ने लगभग डेढ़ शताब्दी के

मानव संघर्ष के इतिहास को रेखांकित किया है। 'लाल पसीना' में पिछली शताब्दियों में गुलाम बनाए गए भारतीयों पर हो रहे अत्याचारों का लंबा इतिहास है। भारत में फैली भुखमरी और अकाल से बचने के लिए सुनहरे भविष्य के सपने देखते जहाजों में सवार भारतीयों की करुण गाथा है। यहाँ वे मॉरिशस की धरती पर गोरे लोगों के शोषण और दमन को सहते हुए पीछे छूट गए अपने देश को याद करते हैं। जहाँ के अभाव भी अंग्रेजों द्वारा किए गए अत्याचारों से तो कम ही थे। ये भारतीय बिहार के भोजपुरी लोग हैं। अभिमन्यु अनत उपन्यास के आरंभ में लिखते हैं– "फ्रांस के राजा लुई चौदहवें को जब इतिहास की जरूरत महसूस होती थी उस समय वह आवाज देता था –ले आओ दुनिया के सबसे बड़े झूठ को मेरे सामने। लाल पसीना उस इतिहास का दावा नहीं करता। यह इतिहास भी नहीं, क्योंकि शासक, राजनेता, राज्यपाल और इस तरह की अन्य हस्तियाँ इसमें पात्र नहीं हैं। इसके पात्र वे हैं जो इतिहास की चक्की में पीसकर रह जाते हैं, पर उनका पीसा जाना इतिहास रहा है,यह इस उपन्यास का दावा है।"

इतिहास चाहे किसी भी देश का क्यों ना हो उस पर एक प्रभुत्वशाली वर्ग का वर्चस्व सदैव रहता है। हर सत्ता अपना इतिहास लिखवाती है जिसमें वह स्वयं को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करती है। 'लाल पसीना' मॉरिशस के गिरिमिटिया मजदूरों की कथा का एक विस्तृत आख्यान है। इन तीनों उपन्यासों में लेखक ने इतिहास और साहित्य के भेद को सृजित करने का सफल प्रयास किया है। व्यवस्था मूलक इतिहास लेखन में हर दौर में तथ्यों की व्याख्या हर व्यवस्था अपने अनुसार करवाती है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने इतिहास का गहरा अध्ययन करते हुए उस मेहनतकश वर्ग के दुसाध्य संघर्ष को प्रस्तुत किया है जिसे इतिहास में नकार दिया गया है।

सत्ता का प्रभुत्वशाली वर्ग अपने समय में हुए विकास का ताज अपने सिर पर धारण करने की आकांक्षा में उस मेहनतकश वर्ग को भुला देता है, जिसने तमाम योजनाओं को कार्यरूप में उपस्थित किया। मॉरिशस के निर्माण में भारतीयों का जो योगदान रहा उसका इतिहास में दर्ज होना अभी बाकी है। अभिमन्यु अनत के निम्न उपन्यासों के विषय में कहा जा सकता है कि इनमें भारत की उस श्रमशील मानव जाति जिन सुनहरे सपनों को पूरा करने के लिए जहाजों पर सवार होकर मॉरिशस के लिए निकली है; वे सपने उस धरती पर पैर रखते ही धाराशायी हो जाते हैं। "और एक दिन सिपाही जीवन के दस साल बाद मॉरिशस को जीतने की चाह लिए वह सैकड़ों भारतीय सिपाहियों के साथ जहाज पर सवार हो गया सभी सिपाहियों की तरह उसे भी बताया गया था कि अंग्रेज़ मॉरिशस को फ्रांसीसियों से जीतकर भारतीयों के हवाले कर देंगे। अंग्रेजों के चंद ठेकेदारों ने सभी सिपाहियों को यही सुनाया था कि उनकी वफादारी और वीरता के लिए मॉरिशस उन्हें भेंट कर दिया जाएगा। कुंदन मन ही मन खुश था उस समय कुंदन के भीतर यही एक बहुत बड़ी खुशी थी भारत में तो वे गुलाम थे। "(लाल पसीना)

भारतीयों के मन में उस द्वीप के प्रति सहज आकर्षण था। द्वीप के उस जीवन के प्रति जिसके लिए उन्हें कहा गया था कि वहाँ प्रत्येक पत्थर के नीचे सोना है अकाल, भूखमरी और गोरे लोगों की भारत में गुलामी सहती एक मानवजाति षडयंत्र रचती व्यवस्था का अंग बनने से बचने के लिए उस अनजाने द्वीप के लिए निकल पड़ी थी। 'लाल पसीना' में पिछली शताब्दियों में गुलाम बनाए गए भारतीयों पर हो रहे अत्याचारों का इतिहास है। पूरे उपन्यास में पसीने को खून की तरह बहाते श्रमिकों की कारुणिक गाथा है। भारतीय अनुबंधित कामगारों की इतिहास छवि का चित्रांकन करते हुए लेखक गोरी जाति द्वारा किए गए अत्याचारों का अंकन करता है। शोषण और दमन का इतिहास यहाँ से शुरू होता है, प्रतिरोध का स्वर भी यहीं से सुनाई

देता है। देखा जाए तो तीनों उपन्यासों में पीढ़ियों के अंतर के साथ नायक बदल जाते हैं, प्रतिरोध का स्वर मुखर करने, अपने लोगों को संगठित करने, और जागरूक करने वाले ये नायक गोरी जाति के अत्याचारों का सीधे सामना करते हैं। 'लाल पसीना' में किशन सिंह प्रमुख रूप से प्रतिनिधित्व करता दिखाई देता है। यही वह पात्र है जो अपने लोगों को इकट्ठा करके उन्हें यथास्थिति का विरोध करने के लिए प्रेरित करता है। प्रतिरोध का यह स्वर किस रूप में सामने आए जहाँ प्रभावशाली वर्ग पूरी तरह अमानुषिक है वहाँ अपने मनुष्य होने की दुहाई देना कहाँ तक सटीक है? इन सारे प्रश्नों से जूझता किशन सिंह अपने लोगों को एकत्र करने में सफल हो जाता है कथा नायक किशन सिंह 'लाल पसीना' का ऐसा पात्र है जो पाठक को उस त्रासदी का अनुभव बराबर करवाता है,जो उस द्वीप पर आने के बाद उन्होंने भोगी। किशन सिंह की 18–19 वर्ष की आयु से उसके संघर्ष को कहते–कहते लेखक लाल पसीना से और पसीना बहा गया तक उसकी दो पीढ़ियों के संघर्ष को दर्शाता है। जन समुदाय के लिए खाने और रहने तक का संकट है मालिक दिन–रात खटन की एवज में क्या देता है? 'चावल दाल दूनों में खद–खद पीलवा भरल बा जो चीज कुत्ता भी ना खाई खोजी ओके कैसे पकावल जाए?' मालिक के सामने चावल दाल रखकर पूछे कि ई अनाज आदमी कैसे खाई? कीड़ों भरे चावल, दाल इतनी सड़ी हुई कि उससे बदबू आती है। उस पर कारखाने से मालिक का आदेश कि काम पर जुट जाओ और काम से इंकार करो तो फिर कोड़े खाने की सजा या फिर कुत्तों द्वारा कटवाए जाने का डर। जहाँ अब पार पाना मुश्किल है इस बंजर पड़ी जमीन के मोह में तुम सभी कुत्ते बिल्ली की मौत मरोगे। यहाँ कोई वर्तमान नहीं कोई भविष्य नहीं। कितनी ही बातें थी जिन्हें लोग समझ नहीं पाए थे उन उलझी हुई बातों ने सभी के भीतर जिज्ञासा पैदा कर दी थी। लोगों ने अधिक जानना चाहा था प्रश्न किए थे कहाँ है मारीच? क्या है वहाँ? वह बहुत दूर नहीं वहाँ कोई भूखा नहीं रहता अनाज बेशुमार है। वहाँ रुपया और सोना तो हर पत्थर के नीचे हैं जिन चीजों के लिए तुम लोग यहाँ तड़प रहे हो वहाँ यह तुम लोगों के लिए तड़प रही हैं लोगों की कल्पना ही बावरी हो गई थी। उन्होंने अपने–अपने ख्यालों की गठरिया बाँध ली थी उमंगों के भारी बोझ के साथ जहाज नए क्षितिज को चल रहा था फिर तो मॉरिशस की धरती पर पैर पड़ते ही लोगों के सपने बिखर गए। उमंगें पश्चाताप में बदल गई थीं लोगों ने सामने के अथाह सागर पार तैरकर वापस लौटना चाहा और जब तक उन्हें अपनी स्थिति की जानकारी हुई तब उन्होंने अपने को अनजान धरती पर गुलाम के रूप में पाया था। इस स्थिति से बाहर निकलने के लिए लाल पसीना का नायक किशन सिंह बैठका बनाता है। मजदूरों को एकजुट करने की पहल किशन सिंह करता है परंतु उसे बहुत विरोध सहना पड़ता है मालिक के डर से कोई बैठका में नहीं जाना चाहता। सब जानते हैं गोरे मालिकों का विरोध करने का मतलब है स्वयं को मौत के मुँह में डालना। पर किशन सिंह कहता है "हमें आदमी तभी समझ आ जाएगा जब हम भी जानवर की तरह पेश आएँगे"। (लाल पसीना) अधिक व्यग्रता के कारण उसे अक्सर सुनना पड़ता 'हड़बड़ी में गूलर ना पकेला' उसे उस समय की प्रतीक्षा थी जब खून पसीना बहाकर आबाद किए गए मॉरिशस में मजदूरों की आवाज सुनी जाएगी उन्हें खाने में कीड़े नहीं दिए जाएँगे। उनकी अपनी जमीनें होगी। उनकी मेहनत का पूरा पैसा उन्हें दिया जाएगा और सबसे ज्यादा इस बात की प्रतीक्षा थी कि उन्हें इनसान समझा जाएगा। किशन सिंह सोचता अगर ऐसा हो जाए कि मजदूरों के पसीने की मात्रा चीनी में कुछ अधिक हो जाए और चीनी मीठी ना होकर नमकीन हो जाए। सब जानते थे किशन सिंह के बैठका में जाने का अर्थ है मालिक द्वारा कुत्तों से नुचवाया जाना। इसलिए किशन शुरू में असफल रहता है पर धीरे–धीरे

वह लोगों को एकजुट करने में सफल रहता है। किशन अपने साथियों को समझाता है कि धर्म और विश्वास में बैठकर मनुष्य कभी एकता के सूत्र में नहीं बँध सकते। विरोध धर्म का सहारा लेकर आपसी एकजुटता को तोड़ने का प्रयास कर सकता है। इसलिए विभिन्न धर्मों में विश्वास होने पर भी एकता को बनाए रखना है।

किशन कहता है "हजारों की संख्या में होते हुए भी इस देश को फल–फूल देकर भी अगर हम आज की ही स्थिति में रहना मान लें तो बस वे हाथ हमारे ऊपर ही उठते रहने से कभी नहीं थमेंगे और तब सचमुच ही आने वाले कल के लिए हम कमजोर रह जाएंगे। हमें अपनी ताकत को बहुत सावधानी और होशियारी से बढ़ाना है। इस तरह धीरे–धीरे इस काम को करना है ताकि किसी को कानों–कान इसका पता ना चले भविष्य के लिए सुखद पृष्ठभूमि रचने की किशन की आकांक्षा जल्दी ही पूरी नहीं हो पाती उसे अपना सब कुछ खोना पड़ता है। किशन सिंह छोटी–छोटी लड़ाईयाँ लड़ता हुआ अंत तक अपने लोगों का मार्गदर्शक बनता है।

शोषण अपनी हद पार कर चुका था लड़कियाँ कोठियों में मालिकों की हवस का शिकार हो रही थीं ऐसे में बैठका में लोगों को इकट्ठा करने के लिए किशन सिंह के कुछ साथी मालिकों से जा मिले थे क्योंकि इसकी एवज में उन्हें खाने–रहने को अच्छा पैसा मिल जाता था। पहली बार सात बस्तियों के लोग एकजुट होकर मालिक के सामने अपनी बात रखते हैं। "हमारी पहली माँग है कि हमें आदमी समझा जाए बैल नहीं। हमारी मेहनत के बाद अगर हमारी पीठ नहीं थपथपाई जा सकती हो तो बदले में कोड़ों की बौछार भी हमें नहीं चाहिए इसका आश्वासन हमें बहुत पहले भी दिया गया था। दूसरी माँग यह है कि हम बस्तियों के भीतर कैदियों की तरह नहीं रह सकते हमें उस घिरावट से बाहर आने जाने की स्वतंत्रता और तीसरी बात हम स्वतंत्र रूप से अपनी पंचायत और बैठका लगा सकें पूजा पाठ कर सकें। चौथी बात भी सुन लीजिए हमारी बहनों, बहू–बेटियों का आदर होना चाहिए। पिछले महीने एक बस्ती में चार लड़कियों ने आत्महत्या कर ली थी (लाल पसीना) इन माँगों पर विचार करने की कहकर मालिक अपनी कोठियों में चले गए समय फिर उसी गति से चल पड़ा कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यही उन लोगों का सच था जिसे वे बारी–बारी याद करते भारत.. बिहार..आरा.. छपरा से मॉरिशस की यात्रा में उनका जीवन नष्ट हो गया था। बस्ती के लोग मिलकर अपनी खेती करते हैं। एक टुकड़ा जमीन पर अपने लिए सब्जियाँ उगाते हैं। मालिक वह जमीन भी उनसे लेना चाहता है। किशन सिंह के विरोध करने पर गोली चलती है। किशन सिंह की मृत्यु हो जाती है। किशन सिंह की मृत्यु इतिहास की मृत्यु थी कहकर लेखक इतिहास निर्माण में किशन सिंह की भूमिका को रेखांकित करता है।

अगले कथानक के रूप में मदन सामने आता है किशन सिंह के संघर्षों को उसका बेटा मदन आगे ले जाता है। बैठका में लोगों को जमा करना बच्चों को पढ़ाना लोगों में कोठी मालिक के प्रति विरोध दर्ज करने का साहस उठाने की हिम्मत पैदा करना। किशन सिंह की मृत्यु के बाद सरकार मजदूरों के रक्षक के नाम पर एक व्यक्ति को बस्ती में भेजती है। जो किशन सिंह के समय में भी आता है जिसके जाते ही गिरफ्तारियाँ होने लगती हैं। सरकार द्वारा नियुक्त यह मजदूरों का रक्षक मालिकों का दलाल है वह जानते हैं जिस खेत का रक्षक मालिकों का दलाल है, जिसके खेत को पाने के लिए किशन सिंह को मृत्यु को गले लगाना पड़ा है उसी खेत को मालिकों को देने की बात कहता है। मदन सोचता है गिरमिटिया अब कोई नहीं रहा तो फिर क्या वजह है हम जीवन भर उसी तरह बंधन में रहें क्या हम दास हैं? क्या कारण है हमें मालिक विशेष की कोठी में काम करने को मजबूर किया जाए? हमारा जन्म इसी मिट्टी में हुआ इसके चप्पे–चप्पे पर हमारा अधिकार

होना चाहिए। मदन का संघर्ष यहीं से शुरू होता है। जमीन को बचाने के लिए मदन संघर्ष करता है फिर वकील के बस्ती में आने पर उनकी जमीन उन्हें मिल जाती है। आगे का कथानक, 'गांधी जी बोले थे' उपन्यास से शुरू होता है प्रकाश इस दूसरे उपन्यास का मुख्य पात्र है।" दो महीने में मोरेल तब्लीस्मा लंगड़वा कोठी के सत्रह मजदूरों ने फाँसी लगा ली। शुरू के दो–तीन दिन तेईस हादसों को तो लोगों ने स्वाभाविक मान लिया था लेकिन जब दिन–दहाड़े अच्छे खासे मजदूर इमली बरगद की शाखाओं पर झूले मिले तो सबसे पहले मदन ने ही उन्हें आत्महत्या मानने से इनकार कर दिया। (गांधी जी बोले थे) सबसे ज्यादा शक्तिशाली था कोठियों का अपना कानून किशन सिंह भी कहता था कि कल जेकर लाठी ओकर भैंस, जेकर पैसा ओकर कानून' देवराज ने जब कोठी मालिक से यही वाक्य कहा तो उसे मार दिया गया। सुनसान इलाके में उसका शव पेड़ से झूलते हुए पाया गया। जिन मजदूरों में विद्रोह की चिंगारी नजर आती उन्हें पेड़ से झूला दिया जाता। देवराज ने मरने से पहले दो व्यक्तियों की हत्या कर दी। रघुवा वह जो बस्ती में रहता है उसका बेटा ही लोगों के गले में फाँसी डालता था मालिक के कहने पर। अपने ही लोग लालच में कोठी मालिकों से जा मिले थे। देवराज इसी कारण रघुवर के बेटे को मार डालता है क्योंकि यह पचास लोगों के गले में फाँसी डाल चुका है।

ऐसी कई घटनाओं को दोहराता इस उपन्यास का कथानक तब एकाएक गति पकड़ता है जब गांधी जी का मॉरिशस में आगमन होता है अभिमन्यु अनत ने गांधी जी के मॉरिशस आने की घटना को उसके सही परिदृश्य में देखा उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में एक काले वकील के सपने को सच होते देखा। जो अपने लोगों को एकजुट करने में सफल हो रही थी अपने पुरखों द्वारा सुनाई गई गांधी जी के आगमन की कथा को एक कलाकार कवि कथाकार कैसे देखता है यह चुनौती भरा काम है। गांधी जी का आगमन और उनका मॉरिशस में भारतवासियों को संबोधन करना एक ऐतिहासिक घटना है। इससे मॉरिशसवासी बीसवीं सदी के आरंभ में गांधी के विचारों से परिचित, प्रभावित और प्रेरित होते हैं। लोग गांधी के संबोधन से भी उत्साहित और प्रमुदित होते हैं। पुस्तक की भूमिका में गंगा प्रसाद विमल लिखते हैं 'गांधी जी बोले थे' अभिमन्यु ने मॉरिशसवासियों पर गांधी के विचारों के प्रभाव से वर्ग निरपेक्ष, धर्म निरपेक्ष वर्ण निरपेक्ष व्यवस्था के स्थापन प्रभाव को रेखांकित किया है। (भूमिका गंगा प्रसाद विमल) गांधी जी कहते हैं उनके बच्चों को पढ़ाया जाए जब तक वह अपनी आने वाली पीढ़ी को पढ़ा–लिखाकर राजनीति में प्रवेश नहीं कराएँगे तब तक बदलाव असंभव है। मदन चाहता है प्रकाश पर गांधी के विचारों का प्रभाव पड़े क्योंकि मदन के बाद उसे ही बैठका का सारा काम सँभालना है। गांधी कहते हैं आप सभी से मेरा अनुरोध है राजनीति से दूर रहकर आप अपने अधिकारों को नहीं पा सकते। लोग आपकी इज्जत करना सीखें इसके लिए आप लोगों को सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लेना होगा। आपके प्रतिनिधि को बाहर से नहीं बल्कि विधानसभा के भीतर से अधिकारों का तकाजा करना होगा। गांधी जी को सुनने के बाद मदन और प्रकाश के सामने भविष्य की योजनाएँ स्पष्ट हो जाती हैं। प्रकाश इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर फ्रेंच और अंग्रेजी सीखता है। वह जानता है कोठी के मालिक के सामने उनकी भाषा में बात करनी होगी। गांधी जी नहीं बोले होते तो शायद प्रकाश आज की स्थिति में नहीं होता। मालिकों के विरोध के बावजूद बस्ती में स्कूल खोला जाता है। मालिकों की नई चाल के तहत बस्ती में आधे किलोमीटर के भीतर–भीतर तीन मंदिर बनाए जाते हैं। यह तीन मंदिर एक जाति के लिए नहीं या सभी लोगों के लिए नहीं बनाए जा रहे थे बल्कि अलग–अलग जातियों के लिए बनाए जा रहे थे। मालिक की यह चाल थी कि जो लोग

एकत्र होकर उसे चुनौती देते हैं, उन्हें तीन अलग–अलग खेमों में बाँट दिया जाए। धर्म सांप्रदायिकता का कारण हो सकता है कि वे मदन द्वारा चलाए गए आंदोलन को कमजोर करना चाहते थे। मालिकों और सरकार की इन्हीं नाफरमानिओं के कारण प्रकाश नौकरी छोड़ देता है। क्योंकि उसके सामने अपने लोगों के लिए संघर्ष करने उन्हें एकत्रित करने वालों को कुत्तों से कटवाया जाता है। उनकी आँखें निकाल दी जाती हैं फिर भी वह पीछे नहीं हटता। मदन मीरा से प्रेम करते हुए भी उससे शादी नहीं कर पाता क्योंकि वह जिस काम में लगा है उसके प्रति स्वयं को बार–बार समर्पित पाता है। मीरा की मृत्यु हो जाती है आंदोलन गति पर है यहीं से तीसरा उपन्यास 'और पसीना बहता रहा' शुरू होता है। हड़ताल के बाद अपनी माँगे पूरी होने का स्वप्न देखते लोग वह मजदूर दल की नींव 'गांधी जी बोले थे' में रखता है 'और पसीना बहता गया' में सामुदायिक एकता का प्रतिफलन दिखाई देता है यहाँ यह भी देखा जा सकता है कि किस तरह पूरी जाति अपने संघर्ष के बाद अपने लिए इस देश में स्थान बना पाती है। चुनाव में खड़े होने से लेकर शिक्षा प्राप्त करना नौकरियों में अपने लिए जगह बनाना अपने अधिकारों के प्रति सचेत होकर बंधुआ मजदूरी से इनकार करते हुए अपनी मेहनत का पूरा पैसा प्राप्त करते हैं। और एक सम्मानित मनुष्य की तरह जीवन जीते हैं। यहीं पर इस उपन्यास श्रृंखला का अंत होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

अभिमन्यु अनत (1993) और पसीना बहता रहा, नई दिल्ली, राजकमल।

अभिमन्यु अनत (2008) गांधी जी बोले थे, नई दिल्ली, राजकमल।

अभिमन्यु अनत (2010) लाल पसीना, नई दिल्ली, राजकमल।

❑❑❑

विश्व मंच पर हिंदी का बदलता परिदृष्य

चिट्टि अन्नपूर्णा

भाषा विचार विनिमय का एक साधन है। मन के मूक विचारों का व्यक्त रूप ही भाषा है। विश्व में जितने मानवीय समुदाय हैं, उतनी ही भाषाएँ हैं। 'चार कोसों में पानी और आठ कोसों में बोली' बदलती है – यह उक्ति जन समुदायों में प्रसिद्ध है। यातायात के साधनों के अभाव के कारण में लोग छोटे–छोटे समुदायों में बँटकर जीते थे। इनकी बोलियाँ अलग–अलग थीं और एक सीमा में सिमटकर रहती थी। दुनिया में कितनी भाषाएँ रही होंगी, उनकी संख्या बताना कठिन है। विभिन्न समुदायों की बोलियाँ जब नज़दीक आती हैं, तो इनकी दूरियाँ घटती जाती हैं और वे भाषा का रूप ग्रहण करती हैं। बोली और भाषा के विकास की यह एक प्रक्रिया है। बोलचाल की बोलियाँ जब राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनेगी, तब उसका एक मानक रूप विकसित होता है। वह राजनीति, धर्म और साहित्य का समर्थन पाकर भाषा का रूप धारण करता है। वैश्विक धरातल पर राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिवेश का समर्थन पाकर विश्वभाषा के रूप में अपने आपको स्थापित करती है।

संस्कृत भाषा ने एक समय पर अपनी विश्व व्यापकता को निरूपित किया। वह देश–विदेश की विभिन्न भाषाओं को आत्मसात् करती हुई आगे बढ़ी और कई भाषाओं को प्रभावित भी किया। संस्कृत भाषा, साहित्य और ज्ञान–विज्ञान की भाषा रही है। वेद–विज्ञान के द्वारा संस्कृत ने भाषा और साहित्यिक दुनिया को अपनी विशिष्टता का परिचय दिया। ज्ञान–विज्ञान के कई ग्रंथों का अनुवाद भी विदेशी भाषाओं में हुआ था। धार्मिक और दार्शनिक मत–मतांतरों की अभिव्यक्ति की प्रतिनिधि भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त की थी। उससे भारत और अन्य देशों की भाषाएँ प्रभावित हुई थी। धर्म, संस्कृति और भाषा का अटूट संबंध है। धर्म और संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं। इन दोनों को भाषा से पहचान मिलती है। भारत की प्राचीन भाषाएँ संस्कृत, पाली, प्राकृत, मध्यकाल की अपभ्रंश और विभिन्न बोलियों ने अपने सुसमृद्ध धार्मिक–दार्शनिक विचार और रचनाओं के द्वारा देश–विदेशों में भारत को विश्वगुरु का स्थान दिलाया है। भारत ने 'वसुधैव कुटुम्बकम' का प्रचार कर विश्व देशों के सामने आदर्श प्रस्तुत किया।

सुमात्रा, जावा, इंडोनेशिया और सुदूर देशों में रामायण जैसे महानकाव्यों का प्रभाव आज भी देखा जाता है। संस्कृत भाषा विश्व की भाषाओं के अध्ययन का प्रेरणा स्रोत रही। भारत और यूरोप की भाषाओं के संबंधों का अध्ययन करने का आधार संस्कृत भाषा ही रही। इससे विश्वभाषाएँ अंग्रेजी, फारसी, ग्रीक, अवेस्ता, जर्मनी, रूसी आदि भाषाओं के संबंध स्पष्ट हुए हैं। संस्कृत, प्राकृत भाषाओं और कई बोलियों और भारत के इतिहास के मध्यकाल में भारत पर शासन करनेवाले मुस्लिम शासकों की अरबी, फ़ारसी, तुर्की भाषाओं के मिश्रित भाषा के रूप में हिंदी ने अपनी अलग पहचान पाई है। मुसलमानों के बाद भारत में आए डच, पुर्तगाली, फ्रेंच, अंग्रेजों की भाषाओं को भी आत्मसात् करते हुए अपने अलग रूप में हिंदी का विश्व मंच पर अपना स्थान कई सदियों पहले ही कायम हुआ है।

आधुनिक युग में हिंदी भारत की सभी भाषाओं की एक प्रतिनिधि भाषा और संपर्क भाषा के रूप में उभरकर आई है। भारत के कई प्रदेशों में हिंदी मातृभाषा के रूप में व्यवहृत है। चंद प्रदेशों में वह बोलियों के मिश्रित रूप में बोली जा रही है, तो दक्षिण भारत में संस्कृत भाषा से प्रभाव ग्रहण कर तेलुगु, कन्नड और मलयालम प्रयुक्त हो रही है, जो शब्द आज हिंदी में प्रयुक्त हो रहे हैं। तमिल भाषा भी प्राचीन और मध्यकाल में वैदिक, जैन, बौद्ध संप्रदायों की धार्मिक भाषाएँ जैसे संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं से प्रभावित हुई थी। इनके तत्सम और तत्भव रूप आज भी बोलचाल और साहित्यिक भाषा में देखे जा सकते हैं। सामासिकता, जो संपूर्ण भारत की प्रमुख विशेषता रही, वह केवल संस्कृति में ही नहीं परिलक्षित होती है, अपितु भाषा के संदर्भ में भी देखी जाती है।

विश्व में जिस तरह संस्कृत भाषा ने अपना प्रभाव छोड़ा था, ऐसा ही प्रभाव अब हिंदी का विश्व भाषाओं और संस्कृति पर पड़ रहा है। स्वतंत्रता आंदोलन से विश्व में हिंदी का विकास आरंभ हुआ। दक्षिण भारत में, ईस्वी की प्रथम शती से ही विदेशों से व्यापारिक संबंध होते हुए पाए गए हैं। केरल राज्य के सुगंध द्रव्य एशिया और यूरोप में बिकते थे। यूरोप और एशिया के व्यापारिक संबंध के कारण यहाँ के शब्द विदेश भी पहुँचे थे। अंग्रेजी भारत पर अपना अधिकार पाने के बाद हमारे देशवासी उच्चशिक्षा के लिए विदेश के लिए प्रवासित होते थे और चंद लोग अंग्रेजों के द्वारा गिरमिटियों के रूप में भी प्रवासित हुए थे। मॉरिशस, फ़ीजी, दक्षिण अफ्रीका, सूरीनाम आदि प्रदेशों में रह रहे प्रवासी भारतीयों ने अपनी मातृभाषा का प्रयोग करते हुए हिंदी की बोलियों को सुरक्षित रखा। इन देशों में हिंदी का एक अलग रूप पनप रहा है। उदाहरण के लिए गिरमिटियों के रूप में फ़ीजी गए लोगों में अधिकांश अवध प्रदेश के अवधी बोलनेवाले रहे थे। लगभग एक सौ पचास साल में उनकी अवधि अपना रूप बदलती हुई आगे बढ़ रही है। भाषा की तो यही प्रकृति होती है कि अल्पसंख्यक लोगों की भाषा, बहुसंख्यक लोगों की भाषा से प्रभावित होकर, अपने रूप को बदलती जाती है और मूल भाषा के रूप में परिवर्तन आते रहते हैं। फ़ीजी में रह रहे भारत के प्रवासी फ़ीजी भाषा को भी आत्मसात् करते हुए अपने एक अलग रूप को लेकर आगे बढ़ रहे हैं। इसी प्रकार अन्य देशों में रह रहे प्रवासियों की हिंदी का स्वरूप भले ही बदल रहा हो, लेकिन अन्य भाषा शब्दों को लेकर समृद्ध होती जा रही है। आज हिंदी भी अंग्रेजी के प्रभाव में आकर अपनी प्रकृति को और संरचना को बदलती जा रही है। उसकी एक अलग शैली विकसित होती जा रही है।

विश्व में अब अंग्रेजी भाषा का राज्य चल रहा है। इसका मूल कारण प्रधानतया आजकल विकसित हो रही तकनीकी, सूचना और प्रौद्योगिकी कह सकते हैं। बदलते वैश्विक आर्थिक परिवेश का प्रभाव हिंदी पर भी हावी हो रहा है। आर्थिक भूमंडलीकरण से नए–नए व्यवसायों का विकास होने के कारण अधिकांश युवा आर्थिक अवसरों की खोज़ में ऐच्छिक रूप से विभिन्न देशों में जा रहे हैं। जहाँ–जहाँ भारतीय प्रवास हो रहे हैं, वहाँ–वहाँ उनके आपस की संपर्क भाषा हिंदी हो रही है। इससे विदेशों में हिंदी बोलनेवाले भारतीयों की भी संख्या में वृद्धि हुई। हिंदी में बोलते हुए इन सब में एक देशवासी और एकात्मभाव का भाव विकसित हो रहा है।

विदेश में स्थिर हुए प्रवासी भारतीय हिंदी के विकास के लिए अपना योगदान दे रहे हैं। हिंदी संस्थाओं की स्थापना करना, हिंदी पत्र–पत्रिकाओं को चलाना, उन्हें विश्वव्यापी बनाना आदि कार्य उनके द्वारा संपन्न हो रहे हैं। हाल के कोविड के चलते सूचना–प्रौद्योगिकी के विकास से दुनिया नज़दीक आई है। सामाजिक माध्यम, ई पत्र–पत्रिकाओं के कारण हिंदी का वैश्विक रूप और स्पष्ट

जाहिर हुआ है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों द्वारा सम्मेलनों और संगोष्ठियों के आयोजन के द्वारा विश्व में भिन्न–भिन्न देशों में रह रहे भारतीयों को एक मंच पर लाया गया है। यह प्रयास अब भी जारी है और भविष्य में भी इस प्रकार के कार्य साधनाओं के द्वारा हिंदी विश्व में अपनी अस्मिता को स्थिर करने में कामयाब होगी।

बोलनेवालों की संख्या, उसके साहित्य की विपुलता, राजनीतिक समर्थता, आर्थिक अवसरों की पूर्ति करने की क्षमता और जीवन शैली को निर्मित करनेवाली धार्मिक और सांस्कृतिक वैचारिक संपत्ति आदि विशेषताएँ जिन भाषाओं में होती हैं, वे भाषाएँ विश्वमंच पर अपना स्थान निरूपित करने में सक्षम हाती हैं। कई सदियों से अंग्रेजी के विश्वव्यापी प्रभाव के कारण अन्य भाषाएँ विश्वमंच पर अपने वर्चस्व को स्थापित नहीं कर पाई हैं। लेकिन, आज विश्व में हर देश अपनी संस्कृति और अपनी भाषा के संरक्षण को महत्व देने लगा है। यह बात सच है कि संयुक्त राष्ट्र महासभा में अब तक अंग्रेजी के अलावा और पाँच भाषाएँ चीन की मंदारिन, स्पैनिश, रूसी, फ्रेंच, अरबी भाषाएँ पहचान बना पाई हैं। लेकिन, इन देशों को इन भाषाओं के प्रचार–प्रसार का उद्देश्य उतना नहीं दिखता, जितना हिंदी का। भारत हिंदी को विश्व मंच पर स्थापित करने के प्रयास लगातार करता आ रहा है। इसी के तहत 10 जून, 2022 को हिंदी को भी मान्यता देते हुए संयुक्त राष्ट्र महासभा में भारत के प्रस्ताव को पारित किया गया है। संयुक्त राष्ट्र संगठन की एक माध्यम भाषा के रूप में हिंदी विश्व मंच पर दर्ज हो गई है। इससे संयुक्त राष्ट्र संगठन के अंतरजाल में हिंदी भी अब दिखाई देगी। हिंदी में सारे विवरण देखें और पढ़े जा सकते हैं। इस दृष्टि से देखें तो हिंदी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपने वर्चस्व को मजबूत करने में कामयाब हो गई है। अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप भी वह अपनी अस्मिता को स्थापित करने में सक्षम हुई है।

संयुक्त राष्ट्र के द्वारा हिंदी की पहचान के बाद हमारी जिम्मेदारी और भी बढ़ गई है। अब हमें हिंदी के विकास के लिए और भी कदम उठाने चाहिए। अब दुनिया युवाओं की है। युवाओं पर भविष्य निर्भर है। वे भविष्य के निर्माता हैं। इसलिए स्कूली स्तर से ही हिंदी भाषा का शिक्षण और साहित्य में रुचि पैदा करना आवश्यक है। तकनीकी और प्रौद्योगिकी के सही इस्तेमाल के तरीकों से और उसके लाभों से उन्हें अवगत कराकर हमारी संस्कृति और भाषा के प्रति निष्ठा जागृत करना भी आवश्यक है, जिससे प्रवास होकर भारतीयता कायम रखने में समर्थ हो पाएँगें। भले ही वे विदेशों में रह रहे हों, तो भी अपनी मातृभाषा, संस्कृति को जीवित रखने में सक्षम हो पाएँगें।

जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं हैं, उन्हें भी हिंदी की पढ़ाई करने के लिए प्रेरित करना आवश्यक है। स्तरीय शिक्षा देनेवाली स्तरीय संस्थाओं की स्थापना, या जो पहले से मौजूद संस्थाएँ हैं, उनकी स्तरीयता का समय–समय पर निरीक्षण– पर्यवेक्षण करते हुए स्तरीय हिंदी शिक्षण का इंतजाम करना परम आवश्यक है। समय–समय पर निरीक्षण नहीं होने के कारण पुरानी संस्था को अपनी स्तरीयता खोने का ख़तरा है। भारत में ऐसी संस्थाओं के प्रक्षालन की आवश्यकता है। सेवा भाव से काम करनेवाले शिक्षक, प्रशासन की अब आवश्यकता है। स्वतंत्रता पूर्व हिंदी प्रचार–प्रसार के लिए स्थापित ऐसी संस्थाओं को पहचानना चाहिए, जो अधिक अर्थोपार्जन में लगी रही हैं। महात्मा गांधी जी जैसे महान मनीषियों के द्वारा महान उद्देश्य से स्थापित चंद हिंदी संस्थाएँ अर्थ कमाने की मानसिकता में हिंदी शिक्षण की स्तरीयता की उपेक्षा कर रही हैं। दक्षिण भारत में तमिलनाडु में रह रहे माता–पिता हिंदी के प्रति अपनी रुचि दिखा रहें हैं। अब वे यह अफ़सोस जता रहे हैं कि चंद राजनीतिक कारणों से वे हिंदी सीखने से वंचित रह गए हैं। वे अब यह इच्छा जता रहे हैं कि उनके जैसे उनके बच्चों का भविष्य

नष्ट नहीं होना चाहिए। अपने बच्चों को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कामयाबी दिलाने के लिए भले ही स्कूली स्तर पर हिंदी को बंद किया गया हो, फिर भी हिंदी पढ़ने के अतिरिक्त बोझ से भी न कतराकर हिंदी शिक्षण की संस्थाओं में हिंदी की पढ़ाई करा रहे हैं। ऐसे में उनकी उम्मीदों की रक्षा करना हर शिक्षक, संस्था और सरकार का प्राथमिक कर्तव्य बनता है। छात्र–छात्राएँ भी हिंदी सीखने में अधिक उत्सुक हैं। सातवीं कक्षा तक आते–आते अर्थात् 12–13 वर्ष की आयु में ही हिंदी की सभी परीक्षाओं को पास कर रहे हैं, तो हम यह समझ सकते हैं कि हिंदी भाषा के प्रति दक्षिण भारत विशेषतया तमिलनाडु की आज की पीढ़ी कितनी उत्सुक है। इसलिए, प्रथमतः भारत की नई पीढ़ी को हिंदी स्तरीय शिक्षण के अवसर प्रदान करना अत्यंत आवश्यक है।

21वीं सदी में विश्व का पटल बदल रहा है। विज्ञान, तकनीकी और प्रौद्योगिकी विश्व के देशों को नज़दीक ले आई है। आर्थिक क्षेत्र में बहुत बड़ा बदलाव आया है। लोगों के जीवन आदर्श और जीवन शैली में बहुत बड़ा बदलाव आया है। आज का युवा तकनीकी के साथ दौड़ रहा है। नित्य नई–नई वस्तुओं का आविष्कार होता जा रहा है। उनकी दिनचर्या बदल गई है। उनकी रुचि, उनके सपने अपनी पूर्व पीढ़ी से भिन्न हो गए हैं। वे बदलती परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको तब्दील कर सुख–सुविधाओं को भोगने की ओर झुकी हैं। ऐसे में अधिकांशतः युवा तकनीकी और प्रौद्योगिकी की भाषा अंग्रेजी का अधिक प्रयोग करने में तत्पर हो गए है। ऐसे में जितनी भी सुविधाएँ अंग्रेजी माध्यम में मिल रही हैं, उतनी ही सुविधाएँ हिंदी में तैयार करना, उन्हें प्रयोग में लाना चाहिए। आज पुरानी पीढ़ी और कम पढ़े लोग भी सेलफ़ोन और इंटरनेट का उपयोग कर रहे हैं। उनकी समझ में आनेवाली भाषा को तकनीकी में लाना आवश्यक है। ताकि भारत की पुरानी पीढ़ी भी हिंदी में मोबाइल और इंटरनेट की सुविधाओं को बिना घबरहाट के प्रयोग करने में सक्षम हो पाएँ।

जो लोग विदेशों में बसे हैं, उन्हें हिंदी भाषा और साहित्य शिक्षण संस्थान खोलने की प्रेरणा देना यदि ज़रूरत हो, तो आर्थिक सहायता भी देकर प्रोत्साहन देना चाहिए। अब कई प्रवासियों द्वारा स्थापित संस्थाएँ हिंदी के प्रचार–प्रसार में अपना महत्वपूर्ण योगदान अदा कर रही हैं। इसमें और भी बढ़ोत्तरी की जा सकती है। अंतरराष्ट्रीय ई–पत्रिकाओं को प्रोत्साहन देना भी विश्वमंच पर हिंदी को स्थापित करने के लिए एक ज़रूरी और महत्वपूर्ण कदम होगा। कई सालों से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कई पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। ऑनलाइन पत्र–पत्रिकाएँ भी अब उपलब्ध हैं।

भारतीय सरकार को प्रवासी साहित्य को भी प्रोत्साहित करना चाहिए। विदेशों में रह कर हिंदी साहित्य और पत्र–पत्रिकाओं में आलेखों के द्वारा भी आज विदेशों में हिंदी आगे बढ़ाई जा रही है। इस संदर्भ में कमल किशोर गोयनका के ये विचार महत्व रखते हैं कि– "छोटे–छोटे देशों के अंदर भी लोग हिंदी में लिखने लगे हैं। हिंदी में चाहे वो स्तरीय रचना नहीं है, लेकिन कोशिश तो कर रहे हैं ना। उस कोशिश का परिणाम यह हुआ कि विदेशों में जहाँ–जहाँ हमारे भारतीय लोग हैं हाँ उनके आलेख के प्रकाशित भी हो रहे हैं। एक तरह से धीरे–धीरे मूवमेंट हो गया। आज ऑस्ट्रेलिया में लिखा जा रहा है, अमरीका में लिखा जा रहा है, जापान में लिखा जा रहा। अब कोई ऐसा देश नहीं है, जहाँ भारतीय लोग न हों, हिंदीभाषी न हों और हिंदी में नहीं लिखा जा रहा हो।"[1]

कमल किशोर गोयनका के उक्त कथन से यह साबित होता है कि विश्वमंच पर हिंदी का परिदृश्य कितना बदला है और बदलते परिदृश्य में हिंदी कितना विकास हम कर सकते हैं। हिंदी विश्व में बदलते परिदृश्य को आत्मसात् करते हुए, बदले वातावरण और

परिस्थितियों को समेटकर एक परिष्कृत रूप के साथ विकसित होने की अपनी ताकत को प्रमाणित करने में सक्षम रही है। भविष्य में वैश्विक परिदृश्य चाहे कैसे भी हों, लेकिन हिंदी अपने वर्चस्व को बनाए रखने में सक्षम है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. छोटे–छोटे देशों के अंदर भी लोग हिंदी में लिखने लगे हैं, राजभाषा भारती, पृष्ठ संख्या 30, अप्रैल–जून 2018

❑❑❑

शतशाखी होता वटवृक्ष हिंदी का

राधेश्याम भारतीय

किसी भी देश के राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान और राष्ट्रमुद्रा आदि की भाँति राष्ट्रभाषा भी राष्ट्र के गौरव एवं अस्मिता की प्रतीक होती है। न केवल गौरव और अस्मिता बल्कि 'स्वात्म' से जुड़े हर विषय, हर प्रतिमान– हमारी मातृभूमि, महापुरुष, प्राचीन ज्ञानसंपदा, प्राचीन दुर्ग, धरोहर एवं ग्रंथादि का स्मरण मात्र हमारे स्पंदित हृदय को छूता, सहलाता प्रतीत होता है। स्वभाषा को सीधे दिल में उतर जाने वाली 'दिल की भाषा' की संज्ञा देते हुए नेल्सन मंडेला ने कहा था, "यदि आप किसी व्यक्ति से उस भाषा में बात करें जो वह समझता है तो वह बात उसके सिर में जाती है लेकिन यदि आप उससे उसकी भाषा में बात करें तो बात सीधे उसके दिल में उतर जाती है।" जन–जन के हृदय की भाषा हिंदी के बारे में यह कथन सर्वथा सटीक बैठता है। राजर्षि बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन ने तो हिंदी भाषा को भारत के लिए आबोहवा के मानिंद बताया, "हर मुल्क और हर सभ्यता का उसकी भाषा से उतना ही गहरा ताल्लुक है जितना उसकी आबोहवा से। भाषा की खुराक ही वह आबोहवा है जिससे देश के हर व्यक्ति की वैचारिक शक्ति परवरिश पाती है।" सन् 1875 में ही महान स्वतंत्रता सेनानी आचार्य केशवचंद्र सेन ने हिंदी को हिंदुस्तानियों की आत्मा में बसी भाषा कहते हुए 'सुलभ समाचार' में लिखा था, "अपनी बात को देश के आखिरी व्यक्ति तक पहुँचाने का सरलतम मार्ग है– हिंदी, क्योंकि हिंदी भारत के जनसामान्य की आत्मा में बसती है।" विडंबना ही कहेंगे कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी सहज, सरल, बोधगम्य, शब्द संपन्न (अंग्रेजी भाषा के मात्र दस हजार मूल शब्दों के मुकाबले ढाई लाख से भी ज्यादा मूल शब्दों का विपुल जखीरा समेटे) और सक्षम मानक जनभाषा होने के बावजूद भी हिंदी भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची के अनुसार मान्य बाइस राष्ट्रभाषाओं में से ही एक राष्ट्रभाषा है।

स्वतंत्रता के पश्चात् हमारे देश में राष्ट्रीय भावना का ह्रास होता गया, एकता का स्थान विभाजक स्वार्थलोलुप प्रवृतियाँ लेने लगीं और हमारा राष्ट्रीय जीवन प्रादेशीय और फिर क्षेत्रीय संकीर्ण विद्रूपताओं की भेंट चढ़ता चला गया जिससे हिंदी की स्थिति राजभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में और भी जटिल होती गई। यद्यपि तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने उन दिनों यही कहा था कि राष्ट्र–भाषा के रूप में हिंदी ही हमारे देश की एकता में सबसे अधिक सहायक सिद्ध होगी। लेकिन 1956 में राजभाषा आयोग के गठन के पश्चात् जब विद्वानों द्वारा हिंदी के क्रमिक प्रयोग को बढ़ावा देने की सिफारिश की गई तो हिंदी के विरोध में दक्षिण भारत और बंगाल सहित अन्यान्य हिंदीतरभाषी प्रदेश आंदोलन करने लगे। परिणामतः हिदीं को यथास्थिति पर ही संतोष करना पड़ा। ऐसी असमंजसपूर्ण किंमकर्तव्यविमूढ़ विकट घड़ी मे कवींद्र रवींद्रनाथ भी इतना ही कह पाए, "भारत की सब प्रांतीय बोलियाँ अपने घर में रानी बन कर रहें और आधुनिक भाषाओं के हार की मध्यमणि हिंदी भारत भारती होकर विराजित रहे।"

कैसी विंडबना है कि देश की अखंडता और विविधता में एकता के नाम पर क्षेत्रीय राजनीतिक तुष्टिकरण अथवा अन्यान्य विवशताओं के कारण नेहरूजी को यह कहने के लिए बाध्य होना पड़ा था कि हिंदी को हिंदीतरभाषी लोगों पर जबरन नहीं थोपा

जाएगा एवं वैकल्पिक भाषा के तौर पर अंग्रेजी को कब तक जारी रखा जाना है, यह अधिकार भी हिंदीतरभाषी लोगों के पास ही रहेगा, हिंदीभाषियों के पास नहीं। परिणामतः हिंदी के नियमानुकूल अपेक्षित प्रयोग के विचार तक उपेक्षा के शिकार होते रहे हैं। भाषा का सर्वविचारणीय अनुत्तरित प्रश्न आज भी हम सबके सम्मुख मुँहबाए ही खड़ा है और एकमत से नहीं बल्कि 'एक मत' (एक वोट) से संवैधानिक रूप से राजभाषा का दर्जा पाकर भी व्यावहारिक रूप से हिंदी आज भी संघर्षावस्था में ही है। कदम–कदम पर निरंतर मिलती रही आपदाओं–विपदाओं, विसंगतियों और प्रतिकूलताओं के बावजूद भी आधुनिक हिंदी अपनी विकास यात्रा में विभिन्न आयाम और आकार लेती रही है। लेखक और पाठक की दृष्टि से आज का हिंदी साहित्य कुछ खास वर्गों तक ही सीमित नहीं रहा है। अनेक देखे अनदेखे मुकामों से गुजरती हुई हिंदी की विकासोन्मुखी पुण्य सलिला धारा में शनैः शनैः स्त्री, दलित, आदिवासी सहित अन्यान्य वर्ग निरंतर जुड़ते ही चले जा रहे हैं। जुड़ते–बदलते ये विभिन्न परिप्रेक्ष्य हिंदी को तदनुरूप विविध धरातलीय रचनात्मक वाणी विस्तार, सर्वसमर्थ सबलता और ऊर्जा प्रदान करने लगे हैं। पल–पल पल्लवित हिंदी का यह संसार भौगोलिक रूप से भारत को आज जहाँ एक ओर कश्मीर से कन्याकुमारी व गंगासागर से द्वारिकापुरी तक जोड़ता है तो दूसरी ओर ज्ञान–विज्ञान के अनेकानेक आयामों के साथ–साथ पत्रकारिता, समाज, विज्ञान, चिकित्सा, कंप्यूटर, तकनीकी, मार्केटिंग, अंतरिक्ष, पर्यावरण, अर्थविज्ञान, मनोरंजन, कला, फिल्म आदि अनेक क्षेत्रों को भी अपने आपमे समेटे हुए पल्लवित पुष्पित हो रहा है। हर्ष का विषय है कि इन सारी विपरीत स्थितियों के बावजूद भी हिंदी का वटवृक्ष शतशाखी हो चहुँदिशा में अपनी शुभमंगल बाहें पसार रहा है।

शैक्षणिक बुनियाद की मजबूत ईंट है हिंदी। शिक्षा की बुनियाद यदि अपनी भाषा में रखी जाती है तो यह उस नींव से कहीं ज्यादा मजबूत होती है जो अंग्रेजी में रखी गई हो। अबोध बच्चा बताए या पढ़ाए जाने वाले तथ्य के संपूर्ण परिवेश को हिंदी अथवा अपनी मातृभाषा में अधिक आत्मीयता, सुगमता और सहजता से ग्रहण कर पाता है। दूसरी भाषा में समझाने के लिए उसे पेचदार मानसिक प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। मानसिक संघर्ष की यह स्थिति क्रमशः उच्चतर कक्षाओं में बढ़ती ही जाती है। अंग्रेजी भाषा के तथ्य को मन में अनुवाद कर उसे उसी भाषा में ग्रहण करना अधिक दुरूहतर होता है, बजाय सीधे–सीधे अपनी भाषा में समझने के। और इसका खामियाजा तो अंततः देश को ही उठाना पड़ता है, संभावनाओं से लवरेज नई पौध को कुंठित करके। एक ओर जहाँ इसी भारत वसुंधरा पर हिंदी के विरोध में दक्षिणी भारत और बंगाल सहित अन्यान्य अहिंदी भाषी प्रदेश उठ खड़े हुए थे वहीं दूसरी ओर हिंदी के आज के वर्तमान स्वरूप के निर्माण और संवर्धन में सिद्धों, योगियों, साधुओं, और भक्तों के साथ–साथ अमीर खुसरो एवं अन्य भारतीय पारसी और इस्लाम धर्मावलंबी अभारतीय विद्वानों, लेखकों, कवियों आदि तक का निरंतर योगदान मिलता रहा है। हिंदी की निर्माण प्रक्रिया भारतीय संस्कृति और संस्कार, रीति–रिवाज एवं माटी की माँग के अनुरूप ही चली तथा पूरी हुई। इसलिए भले ही 'हिंदी' शब्द मूलतः फारसी भाषा का हो, किंतु 'हिंदी' भाषा शत–प्रतिशत भारतीय है। हिंदी आज देश की सीमाओं को पार करते हुए रूस, अमरीका, ऑस्ट्रेलिया, इंग्लैंड, जर्मन बेल्जियम, फ्रांस, युगोस्लोविकया, फ़ीजी, सूरीनाम, मॉरिशस, ट्रिनिडाड, टुबैगो, गुवाना, चेकोस्लोवाकिया, इटली, रूमानिया, चीन, जापान, वर्मा (म्यामांर), नेपाल, स्वीडन, हंगरी, दक्षिण अफ्रीका, पोलैंड, हालैंड, कनाडा, डेनमार्क, नार्वे, साइप्रस, बुल्गारिया, कोरिया, जमैका एवं यूरोप एशिया के अनेक देशों में बोली और समझी जाती है। विदेशों के लगभग 160 विश्वविद्यालयों में

हिंदी बड़े सम्मान के साथ पढ़ी और समझी जाती है।

रोजगार संवाहिनी हिंदी– इस नैसर्गिक किंतु सर्वश्रुत ज्ञातव्य मूल नियम (थम्ब रूल) से आप भी सहमत होंगे कि किसी भी भाषा अथवा कार्य प्रगति के लिए मुख्यतः दो बातें अत्यावश्यक होती हैं (1) भाषा या कार्य करने हेतु प्रशासकीय दबाव या बाध्यता (2) भाषा या कार्य का रोटी से जुड़ाव या संबद्धता। आजादी के पश्चात् इन दोनों ही कारणों से भी हिंदी के विकास में वांछित प्रगति हुई है।

आजादी के बाद शासकीय व्यवस्थाओं को सुचारू रूप से चलाने के लिए अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद की अतीव व्यग्रता से जरूरत महसूस की गई। परिणामतः भारत सरकार द्वारा राज भाषा विभाग की स्थापना की गई एवं अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद, राजभाषा नीतियों के कार्यान्वयन व हिंदी के प्रचार–प्रसार, हिंदीतरभाषी अधिकारियों व कर्मचारियों के लिए हिंदी प्रशिक्षण संबंधी व्यवस्थाएँ की गईं एवं अन्यान्य संवैधानिक नियमावलियाँ बनाई गई। 'वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग' भी इस दिशा में सक्रिय रूप से कार्यरत रहते हुए हिंदी और अन्य मुख्य भारतीय भाषाओं में तकनीकी शब्दावली, शब्दार्थिकाओं, पारिभाषिक शब्दकोशों और ऐसे विश्वकोशों का निर्माण करने में संलग्न है जिनमें सामाजिक, मानविकी, प्रशासनिक सभी विषयों और विज्ञानों से संबधित लेखन और शब्दावली को सम्मिलित किया जा सके। हिंदी को आधुनिक अकादमिक विमर्श और ज्ञान–मीमांसा के नए क्षेत्र के हिसाब से सक्षम करने के लिए हिंदी में लाखों नए शब्द अनवरत निर्मित किए जा रहे हैं। इस बात का विशेष ध्यान रखा जा रहा है कि सभी सरकारी पत्राचारों आदि में प्रयुक्त होने वाली हिंदी में एकरूपता होनी चाहिए। यह जरूरी भी है कि आयोग द्वारा निर्मित एवं सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावलियों को ही काम में लिया जाना चाहिए वरना दफ्तरों में भाषिक–अराजकता फैल सकती है।

कार्यालय के कुल स्टाफ की कार्य–औचित्य के अनुसार हिंदी–पदों के सृजन व हिंदी–पदों की रिक्तयाँ घोषित करने व नियुक्तियों का प्रावधान किया गया। फलतः रोजगार अभिलाषी हिंदी पढ़े–लिखे एवं डिग्रीधारी लोगों के लिए पर्याप्त मात्रा में नियुक्तियों के द्वार भी खुल गए। साथ ही सरकारी कार्यालयों के अतिरिक्त विज्ञापन, मार्केटिंग, अखबार, पत्र–पत्रिकाओं, दुकानों, शोरूम्स, प्रेस, निजी कार्यालयों, कंपनियों और अन्यान्य संस्थाओं हेतु हिंदी में लेखन–पठन कार्य, टंकण, प्रेस, प्रूफ रीडर आदि सहित अनेकानेक क्षेत्रों के लिए भी स्वतंत्र रूप से कार्य करने वाले हिंदीकर्मियों की सख्त आवश्यकता महसूस की गई जिससे हिंदी पढ़े लिखे लोगों के लिए स्वतंत्र रोजगार के अनेक मार्ग भी खुलते चले गए।

विदेशों में आवश्यकता : तेजी से बढ़ते वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद और बाजारवाद के इस दौर में आज किसी व्यक्ति का बहुभाषी होना उसकी एक अतिरिक्त योग्यता मानी जाती है। प्रायः सभी विदेशी दूतावासों के लिए एक से अधिक भाषा के जानकार व्यक्ति, दुभाषियों व बहुभाषियों की विशेष माँग और महत्व में अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी होती जा रही है। तद्नुसार विदेशी दूतावासों, विज्ञापन एवं मार्केटिंग से संबधित प्रायः सभी संस्थाओं में हिंदी के सक्षम अधिकारियों और कर्मचारियों को विपुल मात्रा में रोजगार मुहैया होने लगे हैं। बढ़ते भूमंडलीकरण के कारण आज हर देश परस्पर वैचारिक सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखने के साथ–साथ व्यापारिक संबंध एवं आदान–प्रदान बढ़ाने हेतु खुद की राष्ट्रभाषा के अतिरिक्त पड़ोसी या व्यापारिक रूप से समृद्ध अन्य देशों की भाषाएँ सीखने एवं उनके यथोचित प्रयोग करने की क्षमता संवर्धन के महत्व को बहुत गहरे से महसूस करने लगा है। यही कारण है कि प्रायः हर देश

अपने विश्वविद्यालयों में हिंदी सहित अन्य विकासशील समृद्ध देशों की भाषाओं के पठन–पाठन को भी वरीयता देने लगा है। फलतः वहाँ के विश्वविद्यालयों में हिंदी के व्याख्याता, प्रशासनिक अधिकारी एवं कर्मचारियों के पदों पर पर्याप्त संख्या में नियुक्तियाँ होने लगी हैं। हमारे लिए यह गौरव की बात है कि आज विदेशों के अधिकांश विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। जिनमें अनेक विश्वविद्यालयों में तो हिंदी पठन–पाठन की विशेष पीठ है। एक अरब से भी अधिक हिंदी बोलने वालों की निरंतर बढ़ती संख्या के साथ आज हिंदी विश्व में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली तीसरी भाषा है। भले वर्तमान में प्रथम स्थान पर अंग्रेजी, दूसरे पर चीन की मंदारिन हो। मंदारिन बोलने वालों की संख्या जिस तेजी से घट रही है एवं भूमंडलीकरण और बाजारवाद के चलते जिस तेजी से हिंदी दिन–दूनी, रात–चौगुनी तरक्की कर रही है उसे देखते हुए इसमें कोई दो राय नहीं कि बहुत जल्द ही हिंदी दूसरे स्थान को पार करते हुए विश्व में पहले स्थान पर प्रतिष्ठित हो जाएगी।

स्थिति यह है कि आज अमरीका के राष्ट्रपति का अपने देश के नवयुवकों को मजबूरन यह आह्वान करना पड़ रहा है कि वे एशियाई भाषाएँ विशेष रूप से भारत की हिंदी भाषा को सीखें। अन्यथा एक दिन उन्हें निश्चित रूप से रोजगार से वंचित होना पड़ सकता है।

प्रशासनिक सेवाओं में बढ़ता हिंदी का ग्राफः उपनिवेशवाद से मुक्ति मिलते ही अधिकांश देशों ने (भारत को छोड़कर) सरकारी, गैर सरकारी या निजी कंपनियों तक के सभी कार्यों में अपनी मूल भाषा के उपयोग को ही अनिवार्यता से लागू कर दिया था। परिणामतः आज क्यूबा, जापान, फ्रांस, जर्मनी, वियतनाम, पोलैंड आदि किसी भी देश में अंग्रेजी या अन्य औपनिवेशिक भाषा में कामकाज नहीं होता है। औपनिवेशिक, राजनयिक व भौगोलिक दासता से मुक्ति पाने के तुरंत बाद ही तुर्की के मुस्तफा कमाल पाशा ने तो मानसिक व वैचारिक दासता से भी मुक्ति पाने के लिए पूरे देश में तुर्की भाषा को व्यवहार में लाने का फरमान ही जारी कर दिया था। हाल ही में जून 2015 साहस और आत्मविश्वास से लबरेज आस्ट्रेलिया की महिला प्रधानमंत्री जूलिया गिलार्ड की चेतावनी हर देशभक्त राजनयिक के लिए आत्मावलोकन का अनुकरणीय विषय है

साहित्य को निश्चित रूप से समाज को दृष्टि देने वाला व समझने वाले भारत के ख्यातनाम वैज्ञानिक, शिक्षाविद् और नीति नियंता डॉ. दौलतसिंह कोठारी ने तो अंग्रेज़ियत के पक्षधर प्रशासकों, शिक्षा व्यवस्थापकों और नौकरशाहों को आड़े हाथों लेते हुए यहाँ तक कह दिया था कि जिन नौकरशाहों को इस देश की भाषाएँ नहीं आती, साहित्य और संस्कृति का ज्ञान नहीं है उन्हें भारत सरकार में शामिल होने का कोई हक नहीं है। उनके निर्देशन में ही भारत सरकार द्वारा शिक्षा के संबंध में गठित 'कोठारी समिति' की सिफारिशों पर वर्ष 1979 में सभी प्रशासनिक सेवाओं में पहली बार अपनी भाषाओं में लिखने की छूट मिली थी। इस अद्भुत निर्णय की बदौलत ही परीक्षार्थियों की संख्या यकायक दस गुणा बढ़ गई। सुपरिणाम यह रहे कि आदिवासी, अनुसूचित जाति एवं जनजाति सहित निचले और गरीब तबकों के मेधावी बच्चे जो प्रशासनिक इमारतों की निचली सीढ़ियों तक भी नहीं पहुँच पाते थे, भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में चयनित होने लगे। वर्ष 2013 में जब इस पद्धति को बदलने की मुहिम चलाई गई तो अपनी भाषा को वरीयता देने वाले इन बच्चों के दिलों में डर छा गया था। लेकिन संसद में हुई विस्तृत चर्चा के पश्चात् जब सिविल सेवाओं में भारतीय भाषाओं को परीक्षा का माध्यम बनाए रखे जाने की पद्धति को पूर्ववत् जारी रखने का

राहतकारी निर्णय लिया गया तब प्रतियोगियों की जान में जान आई।

तकनीकीकरण की सहयोगी–साथी है हिंदी: चहुँदिश फैलते वैश्विक बाजारवाद की मार्केटिंग–मजबूरी ने हिंदी को 'विवशता की विश्वभाषा' बनाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ रखी है। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया, मल्टी मीडिया व ई–दुनिया के जरिए विश्वस्तर पर सूचनाओं का विस्फोट हो रहा है। हिंदी की भी अनेक वेबसाइटस हैं। इंटरनेट पर भाषा, साहित्य, संस्कृति और कला का विशाल बाजार फैलता जा रहा है। पावरप्वाइंट प्रस्तुतियाँ अधिक कारगर सिद्ध हो रही हैं।

इस बात को स्वीकार करने में कोई गुरेज नहीं है कि ब्रिटेन, अमरीका, कनाडा, दक्षिणअफ्रीका, न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया आदि समृद्ध देशों में अंग्रेजी बोली जाती है संभवतः इसलिए लोग कंप्यूटर के लिए अंग्रेजी को ही सर्वाधिक उपयुक्त और कंप्यूटर की मित्र–भाषा समझते रहे हों। अंग्रेजी भाषा को हम भले एक अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में अनिवार्यता से सीखें लेकिन इसे समृद्ध देश की समृद्ध भाषा के रूप में सीखने की जरूरत कतई नहीं होनी चाहिए। अंग्रेजी ही एक मात्र समृद्ध भाषा है, यह सत्य नहीं है। वस्तुतः कंप्यूटर की अपनी कोई भाषा नहीं होती। यह तो उसे डॉट (.) के रूपों में स्क्रीन पर मात्र प्रदर्शित करता है जिसे बाद में भाषाई रूप में परिणित किया जाता है। यह भाषा कोई भी हो सकती है। कंप्यूटर के मसीहा बिल गेट्स ने आधिकारिक तौर पर यह स्वीकारा है कि, "देवनागरी लिपि और इस भाषा में लिखी जाने वाली संस्कृत एवं हिंदी भाषाएँ तार्किकता और तथ्यपरकता के आधार पर कंप्यूटर के लिए सर्वाधिक उपयुक्त वैज्ञाानिक भाषाएँ हैं।"

प्रगति की इसी शृंखला में वर्तमान में कंप्यूटरों में हिंदी टाइपिंग के लिए प्रयुक्त होने वाले यूनीकोड के प्रचार–प्रसार ने तो हिंदी में टाइपराइटिंग की सहजता व सुगमता में चार चाँद ही लगा दिए। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा हाल ही में भारत का अपना यू.आर.एल. (वेबसाइट पता) लांच किया जाना इसकी तकनीकी साध्यता ही है। सर्च इंजन गूगल के जरिए हिंदी प्रयोग के इतने सारे झरोखे एक साथ खुलते जा रहे हैं कि वह दिन दूर नहीं जब हमारी आगामी पीढ़ी इतनी सरलता से हिंदी को अपनाने लगेगी कि हिंदी की कठिनता की कहानियाँ अतीत की कंदराओं में दफन होकर रह जाएँगी। लेकिन स्मरण रहे कि हमारे समक्ष साहित्यिक एवं तकनीकी शब्दावली व शब्दकोशों का निर्माण, फेसबुक, साइट–मानचित्र, वेबसाइट के डोमेन नाम, वेबसाइट में प्रवेश (लॉग इन) के पृष्ठादि, उपयोगकर्त्ता (यूजर) का नाम एवं कूटसंख्या (पासवर्ड) आदि द्विभाषी अथवा देवनागरी लिपि में करने सरीखे बहुत से कामों को चुनौती के रूप में पूरा करना आज भी शेष है।

सुशासन, स्वशासन का आधार स्तंभ है हिंदी : हमारा देश भारत अधिकांशतः गाँवों में बसता है। ग्रामीण अंचलों के विकास से जुड़े मुद्दों, भूमि–सुधार, स्वच्छ पेयजल, आवास समस्या, वन कटाई, रोजगार, बिजली, सड़क, संचार, शिक्षा, न्यूनतम मजदूरी एवं लोगों के स्वास्थ्य आदि के बारे में जन सामान्य निरंतर जागरूक रहना चाहता है। सरकार एवं जनता के प्रशासनिक सभी मसलों के बाबत सबसे सशक्त सरल माध्यम–पत्राचार की पल–पल जरूरत पड़ती है। इसके लिए जनसंपर्क भाषा राजभाषा हिंदी ही सबसे अधिक उपयुक्त है। अनेक बार सरकार या प्रशासन के समक्ष विचाराधीन कोई कार्ययोजना अथवा संवेदनशील तथ्य अथवा भीषण प्राकृतिक आपदा, दुर्घटना, दुर्भिक्ष, प्रलंयकारी बाढ़ में अपार जन–धन हानि आदि के मुद्दों की अस्पष्ट व दोषपूर्ण प्रस्तुति हो जाती है। ऐसी विकट स्थिति में सरकार द्वारा जनता के साथ सीधे–सीधे अपनी मातृभाषा या हार्द–भाषा हिंदी में संवाद स्थापित करना मानो बुझते दीपक में स्नेहिल स्निग्ध तेल पूरने का

सा काम करता है। केंद्र या राज्य सरकारें यदि रेडियो, टी.वी, टेलीफोन (एस.एम.एस), पत्र–पत्रिकाओं या अन्य किसी भी माध्यम से वस्तुस्थिति के बारे में जो कुछ भी बात, सूचना, स्पष्टीकरण अथवा आदेश दूरदराज स्थित क्षेत्रों के अनपढ़ या कम पढ़े–लिखे लोगों तक पहुँचाना चाहे तो इसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त हार्द–भाषा केवल और केवल हमारी प्रिय जनभाषा यानी हमारी हिंदी ही हो सकती है, अन्य कोई भी नहीं–कदापि नहीं। हिंदी भाषा के माध्यम से यह प्रक्रिया सरकार और जनता के बीच में व्याप्त दूरियों, भय, शंकाओं को नेस्तनाबूद करते हुए शासन से सुशासन और सुशासन से स्वशासन की राह में बढ़ते–बढ़ते रामराज्य का राजपथ प्रशस्त करने मे भी सहायक सिद्ध हो सकती है।

राष्ट्रीय एकता की अस्थिमज्जा है हिंदी : महर्षि दयानंद सरस्वती के अनुसार, "हिंदी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।" किसी भी देश (इस लेख के परिप्रेक्ष्य में भारत) की जमीं पर जन्मे अदने व्यक्ति से लेकर देश का कोई भी महानतम व्यक्ति,अध्यापक, खिलाड़ी, राजनयिक, प्रशासक, वैज्ञानिक, इंजीनियर, डॉक्टर, वास्तुविद्, कंप्यूटर, विशेषज्ञ, मनोरंजनकर्मी सोचता तो अपनी ही मातृभाषा में है या कहें कि चिंतन अपनी मातृभाषा में ही कर सकता है। भले ही वह बाह्य या प्रत्यक्ष रूप में उस सोचे गए तथ्य के बारे में भावों का प्रकटीकरण अन्य भाषा में क्यों न करे। इसी वैचारिक तथ्य की पुष्टि हिंदी में वैज्ञानिक उपन्यास लिखकर चर्चित हुए भारत के विख्यात वैज्ञानिक व आविष्कारक डॉ.जयंत नार्लिकर ने भी की है। उनसे यह पूछे जाने पर कि वैज्ञानिक लेखन करते वक्त जब उन्हें मौलिक चिंतन करने की आवश्यकता महसूस होती है तब क्या वे उस तथ्य को अंग्रेजी भाषा में ही सोचते हैं? उन्होंने एक क्षण का भी विलंब किए बिना तपाक से प्रत्युत्तर दिया, "यह कदापि संभव ही नहीं है। उस समय मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य कोई भी भाषा न तो चिंतन में मदद कर सकती है और न ही आज तक किसी अन्य भाषा ने मेरी मदद ही की है।"

भारत–भ्रमण के पश्चात् स्वयं लार्ड मैकॉले द्वारा 02 फरवरी, 1835 को ब्रिटिश संसद में तत्कालीन भारत के साहित्य, शिक्षा पद्धति और सुघड़ अद्वितीय संस्कृति की सुसंघट्यता, समृद्धि और स्वाभिमान की प्रशंसा को समाहित करता हुआ भाषण हर प्रबुद्ध भारतीय नागरिक के लिए पुनः–पुनः सगर्व विचारणीय विषय है, "पूरे भारतवर्ष में मैंने एक भी आदमी ऐसा नहीं देखा जो चोर हो। मैंने उस देश में ऐसी समृद्धि और प्रतिभाएँ देखी हैं, ऐसे श्रेष्ठ नैतिक मूल्य वाले अद्भुत लोग देखे हैं कि मुझे नहीं लगता है कि उनके सांस्कृतिक एवं नैतिक मेरुदंड को तोड़े बगैर हम उन्हें पराजित कर सकेंगे। इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि भारत की प्राचीन शिक्षा–पद्धति और संस्कृति के स्थान पर उनमें अंग्रेजियत भर दी जाए ताकि भारतवासियों के दिलोदिमाग में यह सोच घर कर जाए कि जो कुछ भी विदेशी और अंग्रेजी है वही बेहतर और श्रेयस्कर है। ऐसा होने से वे अपना स्वाभिमान एवं अपनी संस्कृति भूल जाएँगे और जैसा कि हम चाहते हैं, वे एक पराधीन कौम बन जाएँगे।''

एक मान्यता यह भी है कि किसी देश या कौम को खत्म करना हो तो उसकी भाषा को खत्म कर दें। इसी वैचारिक पृष्ठभूमि पर ब्रिटिश सरकार ने शिक्षा–पद्धति में आमूलचूल बदलाव करते हुए भारत में 'बाँटो और राज करो' की नीति अपनाई और इसका सबसे पहली शिकार हुई शिक्षा–पद्धति सहित हिंदी भाषा। इससे शनैः शनैः हिंदुस्तानियों में राष्ट्रीय तत्व कमजोर होता चला गया।

अनुवाद की डगर पर निस्संदेह हिंदी अनुवाद को राष्ट्रीय कार्य जैसी ही महत्ता देते हुए कार्य को निरंतर गतिशीलता से किया जाना अतीव प्रशंसनीय कार्य है। इस कार्य में

दक्ष हिंदीकर्मी भले अनुवाद विद्या में कितने ही पारंगत क्यों न हो और किसी भी भाषा के

हूबहू शाब्दिक अनुवाद कर सकने की सक्षमता को कितनी भी दृढ़ता से स्वीकारते हों लेकिन यह ध्रुव सत्य है कि कहने सुनने में बहुत आसान से लगने वाले शब्द 'अनुवाद' की व्यावहारिक डगर इतनी सीधी सादी नहीं होती है। अनेकानेक कठिनाइयों से दो चार होना ही पड़ता है। केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो बड़े स्तर पर हर क्षेत्र से संबंधित मानक शब्दावलियाँ तैयार करती रही है।

यद्यपि विश्व की लगभग 6326 ज्ञातव्य भाषाओं (कैम्ब्रिज इन्साइक्लोपीडिया ऑफ लैंग्वेज के अनुसार) को जानना समझना किसी भी एक व्यक्ति के बूते के बाहर की बात है किंतु यदि अनुवादकों ने साहस करके अनुवाद करने के कमाल नहीं किए होते तो रूस में रामचरितमानस, फ्रांस में पंजाबी कवि वारिस शाह या 'पिंजर' की अद्भुत लेखिका अमृता प्रीतम को वहाँ के लोग कैसे जान पाते? 'गीतांजलि' और 'सांग आफरिंग' के रचयिता रवींद्रनाथ टैगोर नोबॅल पुरस्कार तक एवं विख्यात लेखिका अरुंधति राय बुकर पुरस्कार तक कैसे पहुँच पातीं?

भाषिक एवं सांस्कृतिक आदान–प्रदान करने में अनुवाद सेतु का काम करता है। जेट गति से बढ़ते भूमंडलीय बाजारीकरण के साथ तारतम्य बैठाते हुए हमें यदि हिंदी भाषा की द्रुत प्रगति चाहिए तो हिंदी एवं हिंदी के अनुवाद में शाब्दिक बनावटीपन (जैसे ट्रेन के लिए लौहपथगामिनी या ट्रैफिक सिग्नल के लिए यातायात संकेतक जैसे दुष्कर शब्दों के प्रयोग) को तो तिलांजलि देनी ही होगी। लेकिन यदि लोग चाहे तो उपयोग की बारम्बारता से प्रगाढ़ परिचय बढ़ा चुके सहज और आसान प्रतीत होने वाले शब्दों के प्रयोग करने में परहेज नहीं करना चाहिए। जैसे 'रिपोर्ट' के लिए महाराष्ट्र में 'अहवाल' शब्द लोकप्रिय है लेकिन उत्तर प्रदेश में 'आख्या' का प्रयोग होता है। बिहार में 'प्रतिवेदन' का तो कई स्थानों पर देवनागरी में 'रिपोर्ट' ही लिखी जाती है। उर्दू में पर्यायवाची शब्द है 'रपट'। शब्दों का निरंतर प्रयोग इन्हें हमारे लिए सरल बना देता है।

इस स्थिति में हमें विख्यात हिंदी साहित्यकार कमलेश्वर द्वारा कहे इन शब्दों का स्मरण अवश्य रखना होगा, "हिंदी तब तक विकसित नहीं हो सकती जब तक कि अन्य भारतीय भाषाओं के साथ उसका गहरा संबंध नहीं बने। यदि हिंदी को बचाना है तो हमें निश्चित रूप से क्षेत्रीय भाषाओं के साथ तालमेल विकसित करना ही होगा।"

युवा सोच में हिंदीः यह कितनी दिलचस्प और विरोधाभासी बात है कि एक ओर तो युवाओं पर आक्षेप लगाया जाता है कि वे हिंदी में पर्याप्त रुचि नहीं लेते हैं जबकि बॉलीवुड फिल्मी उद्योग के आँकड़े कुछ और ही बयान करते हैं। संभवतः आपको पता होगा कि एक ओर जहाँ हॉलीवुड फिल्मी उद्योग की मार्केट कमाई की दृष्टि से लगभग पूरी तरह से संतृप्त हो चुकी है वहीं दूसरी ओर भारत के युवाओं की लगभग 500 मिलियन आबादी के कारण ही बॉलीवुड फिल्मी उद्योग तेजी से पनप रहा है।

भले साहित्यिक एवं उम्रदराज लोगों को तकनीकी या अन्य कारणों से मोबाइल पर देवनागरी में हिंदी या रोमन में हिंदी टाइप करना अच्छा नहीं लगे लेकिन आज के युवाओं को मोबाइल पर टाइप करते वक्त रोमन लिपि में हिंदी लिखना सरल लगता है और सुहाता भी खूब है। मैं इस बात से पूर्णतया सहमत हूँ कि महज इस बात से कि रोमन में लिखना सरल होता है, रोमन लिपि की तरफदारी नहीं की जा सकती। वैसे भी यह तथ्य वस्तुपरक (सब्जेक्टिव) है जो व्यक्ति की उम्र योग्यता, परिवेश, संस्कार और कौशल आदि कई गुणों पर निर्भर करता है। जो काम किसी एक व्यक्ति के लिए आसान हो सकता है वही दूसरे के लिए कठिन और दुरूह भी हो सकता है। वैसे भी आजकल एंड्रॉयड फोन और

कंप्यूटरों पर देवनागरी की वर्णमाला स्क्रीन पर एक क्लिक पर डिस्पले हो जाती है। आप हर चौखाने को उँगली से छूते जाएँ, टेक्स्ट अपने आप टाइप होता जाएगा। अनेक संगोष्ठियों में आज के युवा अपने एड्रॉइड फोन पर इस सुविधा को सभी के समक्ष प्रदर्शित करते हुए देवनागरी लिपि की पैरवी करते देखे जा सकते हैं।

विदेशों में हिंदी : हम भारतीयों के लिए यह अत्यंत गौरव की बात है कि हमारे मन, भाव और आकांक्षा की हृद्य–भाषा हिंदी का पर्व 'हिंदी दिवस' 14 सितंबर को संपूर्ण भारत देश में एवं 'विश्व हिंदी दिवस' 10 जनवरी को संपूर्ण विश्व में प्रतिवर्ष मनाया जाता है।

भारत के अतिरिक्त कामकाजी भाषा के रूप में हिंदी का भी प्रयोग मॉरिशस, फ़ीजी, सूरीनाम, त्रिनिडाड, गुयाना, नेपाल आदि अनेक देशों में भी मान्य है। विश्व के अनेकानेक देशों में जहाँ ऐसी औपचारिक मान्यता नहीं है वहाँ भी व्यवसाय, शिक्षा या सांस्कृतिक सरोकारों में हिंदी का प्रयोग आंशिक रूप में किया जाता है। भारत से बाहर रहने वाले भारतीयों, जो वस्तुत 'भारतीय भाषाओं के राजदूत' माने जाते हैं, के प्रायः चार वर्ग माने जाते हैं– 1. जो 2500 साल पहले धर्म प्रचारकों के रूप में गए थे। 2. जो गिरमिटियों (एग्रीमेंट या शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत) के रूप में मॉरिशस, फ़ीजी, सूरीनाम, त्रिनिडाड, गुयाना, ग्वाटेमाला, दक्षिण अफ्रीका, मार्टिनी, जमैका आदि देशों में गए थे। 3. जो रोटी–रोजी कमाने अमरीका, इंग्लैंड, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों में जा बसे। 4. शिक्षा प्रसार, प्रशिक्षण, भारतीय राजकीय–सेवा या विदेशी उपक्रमों में सेवा हेतु जाते हैं। कुछ विदेशी राष्ट्रों में हिंदी है पर वे अपेक्षाकृत कम जाने जाते हैं जैसे– रोड्रिग्स, रेयुनियम, सेंट किट्स, ग्वाटुलुप और बारबोडास आदि। हिंदी जैसी विश्वव्यापी स्थिति अनेक अर्थो में किसी अन्य भाषा की नहीं हैं जिसके पढ़ने–पढ़ाने, उपयोग करने का कोई विश्वस्तरीय शासकीय दबाव न होने के बावजूद भी यह अमरबेल की तरह दिन–रात बढ़ती जाती है।

विदेशों में हिंदी वालों के लिए रोजगार के अनेक अवसर उपलब्ध होते हैं। बैंकिंग, बीमा, प्रकाशन, अभिनय, एअरक्राफ्ट सेवा आदि में रोजगार की विपुल सँभावनाएँ है। सैलानियों के देश स्विटजरलैंड में भी हिंदी भारी माँग में है। माउँट टिटलस पर्वत के हिमशिखर पर स्थित प्राकृतिक गुफा को देखने भारी संख्या में पर्यटक जाते हैं। पर्वतीय मार्ग पर वहाँ हिंदी में लिखी तख्तियाँ जो स्वागतार्थ लिखी हैं, किसी भी भारतीय को भावुक और चकित कर देती हैं। आपको यह जानकर अच्छा लगेगा कि जापान, चीन, नॉर्वे, इंग्लैंड, अमरीका से हिंदी पत्रिकाएँ निरंतर प्रकाशित होती हैं।

इसके अतिरिक्त भारत के बाहर भारतीयों की और उनमें भी युवाओं की एक बहुत बड़ी जमात है जो रहती तो विदेश में है लेकिन उनका दिल धड़कता है भारत के लिए। वे भारत की वस्तुतः एक बड़ी पूँजी और बड़ी ताकत के रूप में दिखाई देते हैं जिसे स्वयं भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी जाना, पहचाना और माना है।

हिंदी–शिक्षण कार्य के अलावा भी विदेशों में रहते हुए भारतीय मूल के अनेक साहित्यकारों के लेख, कविता, कहानी, स्क्रिप्ट आदि वहाँ की पत्र–पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित होते रहते हैं। विदेशों में रहते हुए भी लोग अपने पदों के दायित्व को प्राणपण से निभाते हुए अपने राष्ट्र भारत व राजभाषा हिंदी के प्रति आत्मीयता भरे लगाव को कभी विस्मृत नहीं करते हैं। बताया जाता है कि जब ऑस्ट्रेलिया में यह विचार–विमर्श चल रहा था कि "ऑस्ट्रेलिया में हिंदी क्यों नहीं पढ़ाई जानी चाहिए या उसे क्यों बढ़ावा दिया जाना चाहिए?" तब इस संबंध में परामर्श आदि भी आमंत्रित किए गए थे। मेलबोर्न में ऑस्ट्रेलिया सरकार के विदेश एवं व्यापार विभाग ने

हिंदीप्रेमियों के दृष्टिकोण को स्वीकारते हुए

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षण के लिए अधिक धनराशि उपलब्ध करवाने पर गंभीरता से विचार किया। इस प्रकार भारतीयों ने अपनी तत्परता और सजगता से ऑस्ट्रेलिया में हिंदी की जंग को जीत लिया ऐसे ही अनेकानेक उदाहरणों से गजगामिनी हिंदी शनैः शनैः अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होती जाती है।

विज्ञापन और व्यवसाय जगत की निष्ठावान संगिनीः कटु सत्य है कि विज्ञापन और व्यवसाय संवर्धन की मजबूरी में संसार के प्रायः सभी देशों को हिंदी की शरण में आना पड़ा है। भले व्यवसाय और विज्ञापन का सीधे–सीधे तौर पर हिंदी की प्रगति से कोई लेना देना न हो लेकिन यह आह्लादकारी सच है कि बढ़ती भोगवादिता और बाजारीकरण के कारण प्रयोजनमूलक हिंदी भाषा का प्रगति–चक्र विस्मयातीत तेजी से गतिमान हो उठा है। आज दुनिया व्यावहारिक ही नहीं बल्कि घोर व्यावसायिक हो गई है। 127 करोड़ से भी अधिक की आबादी वाले विकासोन्मुखी हमारे देश भारत को न केवल चीन बल्कि पूरा संसार समृद्ध और भोले–भाले लोगों (जो आँख के अंधे और गाँठ के पूरे) का बाजार मानते हुए ललचाई नजर से देखता है।

आज बाजार, मीडिया और हिंदी परस्पर अन्योन्याश्रित हो उठे हैं। सच कहें तो बाजारीकरण जैसे कठिन मसले में हिंदी को अब पहली बार अपनी शक्ति परीक्षण करने का मौका मिला है। आज समग्र विश्व की बहुराष्ट्रीय कंपनियों में होड़ मची है, भारत के विशाल बाजार को सबसे पहले अपने कब्जे में लेने की, उसे हथियाने की। जाहिर सी बात है कि जब उन्हें हिंदुस्तानियों और हिंदुस्तानी बाजार को प्रभावित करना है तो कंपनियों और ग्राहकों के बीच सेतु का काम करने वाले विज्ञापनों की भाषा अधिकांशतः तो हिंदी ही रखनी होगी। परिणामतः मार्केटिंग कंपनियाँ हिंदी को अपना माध्यम बना रही हैं। गढ़े हुए बाजारी मुहावरे–शेयर बाजार गिरा धड़ाम, सोना उछला, चाँदी चमकी, कब तक रुलाएगा प्याज, पेट्रोल भड़का, अच्छा तो हम चलते हैं, सुपर स्टार का सफर, वॉशिंग पाउडर निरमा, कुछ मीठा हो जाए जैसे शीर्षक मूल समाचार पर भी भारी पड़ते हैं एवं बाजार को अपनी मुट्ठी में कैद कर लेते हैं। यह करिश्मा एक ही झलक में सबकी सहज समझ में आने वाले हिंदी–विज्ञापनों के कारण है। ये भी हिंदी में विज्ञापन का ही करिश्मा है कि आज भी गाँव में लोग वाशिंग पाउडर नहीं, निरमा माँगते हैं। अर्थात् बाजारीकरण ने हिंदी की पहुँच सुदूर गाँव, देहात और ढाणियों तक पहुँचा दी है। डॉ. दामोदर खडसे ने सही ही कहा है, "इस देश में उत्पादों को लोकप्रिय बनाने में हिंदी का महत्वपूर्ण योगदान है।''आज हिंदी विज्ञापन क्षेत्र एक ऐसा उद्योग बन गया है जिससे रोजगार में अप्रत्याशित अभिवृद्धि हुई है। हिंदी में विज्ञापन, लेखन, अनुवाद, निर्माण एवं साज–सज्जा के कार्य करने वालों के लिए पर्याप्त मात्रा में रोजगार के अवसर उपलब्ध हैं।

आज विज्ञापनों के मामले में हिंदी अखबार भी अंग्रेजी अखबार से काफी आगे हैं। मीडिया और मनोरंजन में छाई है हिंदी – भले आज व्यक्ति को अपने कार्यालय में हिंदी लिखने–पढ़ने में कमतरी या शर्म महसूस होती हो, 'हिंदी में टाइप करना नहीं आता' कहकर जल्दी से जल्दी पीछा छुड़ा लेने में बहुत होशियारी दिखाता हो, लेकिन वह बड़े चाव और मजे से हिंदी के गाने, गीत, गज़ल सुनने, फिल्में या टी.वी. धारावाहिक देखने में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेता है और बाजार में मोलभाव करते समय भी हिंदी से बिल्कुल परहेज नहीं करता। इसमें कोई संदेह नहीं है कि हिंदी के विकास में बंबईया फिल्मों, रेडियो –दूरदर्शन, न्यूज चैनल्स, समाचारपत्र, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया (टी. वी.), हिंदी पत्रकारिता आदि का यथेष्ट योगदान रहा है जिसके कारण भी हिंदी समझने

व बोलने वालों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है।

यूँ भी अखबारों में लिखना विशिष्ट कौशल की अपेक्षा रखता है। यह लेखन की कसौटी ही है। खासकर उपयुक्त और आकर्षक शीर्षक, सटीक और ऐसी प्रभावशाली शब्दावली लिखना जो स्टॉल के सामने तनकर खड़े पाठक को कमर झुकाकर अनेक अखबारों में से कोई विशिष्ट खबर वाले अखबार को उठाने पर मजबूर कर दे।

फिल्मों के द्वारा प्रसारः आपको जानकर आश्चर्य होगा कि हॉलीवुड सिनेमा उद्योग में प्रतिवर्ष बनने वाली 500 फिल्मों के मुकाबले भारतीय बॉलीवुड सिनेमा उद्योग में लगभग 1000 फिल्में अधिकांशतः हिंदी में ही बनती हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो यह विश्वस्तरीय जीत वस्तुतः राष्ट्र भाषा की असली हकदार हमारी राज भाषा हिंदी की ही है। भले आज भी सारे संसार में हॉलीवुड सिनेमा की धाक हो लेकिन हिंदी फिल्में वैश्विक स्तर पर शनैः शनैः छाती जा रही हैं। हिंदी की लोकप्रियता का ही परिणाम है कि वर्ष 2004 से दर्शकानुपात के मामले में तो भारतीय बॉलीवुड सिनेमा उद्योग, हॉलीवुड सिनेमा उद्योग में निरंतर अपनी बढ़त बनाए हुए है।

हिंदी वटवृक्ष की शतशाखाएँ जिस मजबूती और तेजी के साथ अपना वर्चस्व बढ़ा रही हैं उससे उसके निश्चित और सुनहरे भविष्य की कल्पना भी की जा सकती है। परंतु इसके साथ कुछ डर, कुछ चेतावनियाँ और सावधानियाँ भी जुड़ी हैं।

कहीं हिंदी को लील न जाए बाजारीकरण की सुनामी? जब–जब सामाजिक भावबोध बदलता है तो साहित्य नवीन परिमार्जन और परिष्कृत भाषा की ओर उन्मुख होता है। कबीर की सटीक उक्ति– "भाखा बहता नीर" के अनुसार ही कालखंड के अनेकानेक पड़ावों से गुजरती हुई सतत गतिशील हिंदी भाषा में भी प्रारंभिक हिंदी से लेकर आज तक बोली और लिखी जाने वाली हिंदी में उसके शब्दों, मुहावरों, वाक्यविन्यासों और प्रतिमानों में बहुत बदलाव आया है।

संप्रति बाजार और रोजगार के सहारे देवनागरी का पुनः रोमनीकरण होने लगा है। अनेकानेक प्रबुद्ध लोगों का मानना है कि एस. एम.एस., कंप्यूटर, इंटरनेट, नाटक एवं फिल्मों की स्क्रिप्ट, नेताओं के भाषण, सरकारी कार्यालयों में उच्चाधिकारियों के संबोधन, अभिभाषण या वक्तव्य आदि में रोमन लिपि के सहारे हिंदी लिखने अथवा देवनागरी को अंग्रेजी टाइप करने में आसानी होती है। लेकिन महज इसी बात से कि मोबाइल पर टाइप करते वक्त हमें रोमन लिपि में लिखना सरल लगता है रोमन लिपि की तरफदारी नहीं की जा सकती। इतिहास, समाज, और भाषाई संस्कृति के पहलुओं के महत्वपूर्ण तथ्यों पर विचार करते हुए हमें लिपि के महत्व को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। हमें देवनागरी का स्वरूप सुरक्षित रखने में बहुत सचेत रहना होगा कि कहीं उदारीकरण की आड़ में रोमन लिपि में हिंदी का लिखा जाना हमारे लिए जरूरी चलन न बन जाए और आगे चलकर कहीं हिंदी के अंकों की तरह हिंदी के मूल स्वरूप का ही लोप न हो जाए।

विकासशील राष्ट्र आज वस्तुतः बहुत बड़े बाजार हैं। आर्थिक उदारीकरण एवं मुक्त व्यापार प्रणाली एक तरह की आर्थिक गुलामी ही तो है जो वस्तुतः परतंत्रता की पहली सीढ़ी है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी पहले यहाँ व्यापार ही शुरू किया था। आज ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की जगह बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हैं। हमें यह बात अपने जहन में बहुत गहरे से उतार लेनी होगी कि केवल शब्द बदल गया है वरना स्थितियाँ....? अब एक बार फिर वक्त आ गया है कि हम परमावश्यक रूप से चौकन्ने हो जाए। कहीं हम पुनः आर्थिक परतंत्रता से आर्थिक अवलंबन फिर आर्थिक परवशता और

अंततः आर्थिक गुलामी के रास्ते चलते–चलते कहीं असली गुलामी की ओर न बढ़ जाएँ!!!

हमें सचेत रहना होगा कि सदियों से गुलाम रहे भारतीयों की मानसिकता में पैठी गुलामी की जड़ें कहीं विस्तार न पा जाएँ। इसी आशय की काव्य पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"बीबी की डिलीवरी मैंने
विलायत में होने दी
ताकि मेरा बेटा
पैदाइश से अंग्रेजी बोले।

कुञजुण्णि मास्टर (मलयालम के प्रसिद्ध कवि)

धरती से आकाश तक हिंदी! हिंदी!! हिंदी!!! राज भाषा हिंदी की स्वर्णजयंती पर यह नारा "धरती से आकाश तक हिंदी! हिंदी!! हिंदी!!!' एयर इंडिया ने दिया था। और उसे चरितार्थ किया था लंदन विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लेने जा रहे साहित्यकारों के दल ने। डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी की अध्यक्षता में उड़ते हुए विमान में एक कवि सम्मेलन संपन्न हुआ था।

कितने गौरव और हर्ष की बात है कि भाषा शोध रिपोर्ट 2015 के अनुसार हमारी राज भाषा हिंदी को यूनेस्को की सात प्रमुख भाषाओं में शामिल किया जाना लगभग तय हो चुका है। इस परिप्रेक्ष्य में उक्त रिपोर्ट, 2015 के सकारात्मक आँकड़ों पर एक तुलनात्मक दृष्टि डालें–

विश्व एवं भारत की कुल जनसंख्या एवं उसमें हिंदी जानने वालों की संख्या एवं उनकी प्रतिशतता–

क्र.स.	संख्यात्मक स्थिति	विश्व	भारत
1.	कुल जनसंख्या	7,22,06,00000	1,27,41,90992
2.	हिंदी जानने वालों की संख्या	1,29,86,17995	1,01,21,31433
3.	प्रतिशतता	18 प्रतिशत	79.43 प्रतिशत

'स्वयंमेव मृगेंद्रता' की तर्ज पर बनाना होगा हिंदी को स्वयमेव समर्थ– आधिपत्य अथवा सर्वोत्तम स्थिति कभी किसी भी युग, देश या काल में याचना का विषय नहीं रही है। यदि कभी–कभार किसी ने इसे स्पर्धा, संघर्ष या चालाकी से अल्पकाल के लिए हासिल कर भी लिया हो तो भी यह बिना पौरुष के ज्यादा देर कभी टिकती नहीं है। जबकि स्वयं में सर्वोत्कृष्टता पनपा लेने के बाद 'स्वयंमेव मृगेंद्रता' की भाँति समग्र साम्राज्य स्वयं ही हस्तगत हो जाता है। इसलिए यदि हम चाहते हैं कि संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को 'अंतरराष्ट्रीय भाषा' या 'विश्व भाषा' का दर्जा मिले, हमारे व्यक्तिगत और शासकीय क्षेत्र में हर ओर हिंदी ही लहलहाए, हिंदी के ही फूल खिलें, हिंदी ही महके, हम महके और हमारे साथ–साथ समूचा भारत महके, समूचा विश्व महके तो राजनीतिज्ञों, शिक्षा अध्यव्यवसायियों एवं सभी प्रबुद्धजनों का एकमेव अपरिहार्य परमावश्यक कर्तव्य है कि वे परस्पर की गुरुता–स्पर्धा, छिद्रान्वेषण की प्रवृति और संकीर्ण स्वार्थपरताओं को भुलाकर सर्वविध सक्षम हमारी हार्द–भाषा हिंदी को कुलंभर, परिवारंभर और निज ऐषणांभर बनाने का मोह त्याग कर इसे विश्वंभर बनाने के लिए आज ही नहीं बल्कि अभी से रचनात्मक व प्रयोगात्मक मानसिकता विकसित करने के लिए कृत संकल्पित हों। अपने मन आँगन में हिंदी के बीज बोएँ। तभी हिंदी के विद्वत्गण हिंदी भाषा या राजभाषा के लिए कुछ कर पाएँगे और तभी हिंदी सही मायने में राजभाषा बन पाएगी।

स्वामी विवेकानन्द की यह सर्वकालीन सार्वभौमिक सीख भी अधिक कारगर है–

"सबल बनो समर्थ बनो। यदि रोते रहोगे तो सदा अकेले ही रोना पड़ेगा। ठहाके लगावो आत्मविश्वास से लबरेज होकर, तभी दुनियावाले तुम्हारे साथ होंगे।"

निष्कर्षतः हम सबको यह प्रखरता से स्मरण रखना चाहिए कि जब तक संवेदनग्राही मानव मन मस्तिष्क और भाव उर्वरा मनोभूमि में हिंदी भाषा की प्रगति के विचार–बीज चाहे वे सुप्तावस्था में ही विद्यमान क्यों न हों, वपित होते रहेंगे तब तक तमाम प्रतिकूलताओं के दरम्यान भी हिंदी विकास का यह सिलसिला निरंतर निर्बाध गति से चलता ही रहेगा। द्रुत से द्रुततर नए आयाम, नवीन से नवीनतम स्वर्ण शिखरों की बुलंदियों को छूता हुआ। हमारी हार्द–भाषा हिंदी की यह नन्हीं किंतु निष्कंप प्रखर दीप–शिखा एक दिन प्रचंड भास्कर बनकर अग जग को दैदीप्यमान करने लगेगी–

हाथों में सूरज का दिया बाँध प्रभंजन पाँवों में।

काँधे पर आकाश उठाए निकल पड़े हम राहों में।।

❑❑❑

प्रागैतिहासिक श्रीलंका और राम रावण चरित्र

अमिला दमयन्ति, श्रीलंका

भारतीय साहित्य में लंका के नाम का प्रथम उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है। कौटिल्य राजा चंद्रगुप्त का प्रमुख अमात्य था। उनका समय ई. पू. 316 माना गया है। अर्थशास्त्र में 'पारसमुद्रकः सिंहलद्वीप' आदि का उल्लेख है। इसका एक अर्थ द्वीप है। यह समुद्र के भीतर बसा है और इसका नाम सिंहलद्वीप है। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय में उत्तर भारत के निवासी वर्तमान को सिंहलद्वीप नाम से अभिहित करते थे।

ज्योतिषशास्त्रज्ञ भाष्कर की रचनाओं में लंका को पृथ्वी के मध्य की एक भूमि माना गया है। रामायण के स्थापत्य के भौगोलिक निरीक्षण के पश्चात् डॉ. टी. परमशिव अय्यर ने कहा है कि लंका एक जगह है जो दो नदियों के बीच बसा हुआ है। वहाँ संगम के पानी को भी समुद्र का नाम दिया गया है। पंडित सिल्वन लेबी के अनुसार भारत की गोदावरी नदी के मुँह के पास 'लंका' नामक एक द्वीप है। हैकैन की उत्तरी सीमा में ठहरने वाले गोन्ड के गोत्र के लोग पहाड़ की चोटी और गोदावरी नदी के अर्थों के लिए लंका शब्द का प्रयोग करते रहे हैं उनके पास राजा रावण से संबंधित विभिन्न कहानियाँ भी हैं तथा उनका एक विश्वास है कि हम रावण के कुल के हैं। डॉ. अय्यर के अनुसार प्राचीन भारतीय ज्योतिष– शास्त्रज्ञों ने उसको लंका नाम से अभिहित किया है तथा जावा द्वीप को भी 'लंकापुर' नाम गया है। कई विदेशी लोगों ने वर्तमान लंका को सेरन्डिब, रेसन्दिब आदि नाम दिया था। एक अरबी जाति अबुरिहान ने भी वर्तमान लंका को सिरनदिब नाम से और अल्बेरुनी लोगों ने लंका को सेरन्डिब दिन के नाम से अभिहित किया है। ये नाम संस्कृत के सिंहलद्वीप शब्द से भिन्न हैं। इस प्रकार के विभिन्न मतों से स्पष्ट होता है कि वर्तमान लंका को अतीत में कई नामों से अभिहित किया गया और रामायण की लंका वर्तमान लंका हो सकती है या नहीं। यह विषय शोधपरक है।

'महावंश' एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें लंका के इतिहास की पूरी पृष्ठभूमि का परिचय मिलता है। इसका समय 460–478 ई. पू. है। लंका के आर्यावतरण के लगभग एक हजार वर्ष के बाद महावंश की रचना हुई है। इससे पहले लिखा हुआ 'दीपवंश' ग्रंथ भी है। इसका प्रभाव भी महावंश पर देखने को मिलता है। महावंश में श्रीलंका के ऐतिहासिक विवरण का विस्तृत रूप देखने को मिलता है। किसी ऐतिहासिक विवरण में महावंश में श्रीलंका के आर्यावतरण का वर्णन हुआ है।

रावण का युग एवं विषय अत्यंत विवादास्पद है। वास्तव में रावण या राम–रावण युद्ध के संबंध लिखित साक्ष्य बहुत कम हैं। विद्वानों का प्रबल मत है कि आर्यो के आगमन के पहले लंका में कई जातियाँ थीं। वे कृषक थे तथा समकोटीय संस्कृति भी उनके पास थी। आर्यागमन के समय भी वही लोग रहे होंगे और उनका रावण से संबंध रहा होगा। तीसरी शताब्दी के भारतीय ग्रंथ 'दिव्यावदान' के अनुसार सिंहली नामक एक वनिज व्यक्ति भारत में लंका से आकर यहाँ रहे। वह सभी राक्षसों को मारकर चला गया था। इस प्रकार इस लंका में आर्यावतरण से पहले से ही यक्ष, नाग तथा देव नामक तीन प्रकार के निवासी रह रहे थे। वे समृद्ध, प्रौढ़ और शूर थे। इनकी उपलब्धियाँ बौद्ध साहित्य में वर्णित हैं। भगवान बुद्ध तीन बार लंका आए हैं, उस समय यक्ष, नाग और देव जातियों ने प्रवचन

दिए। इसलिए विद्वानों के अनुसार लंका की सभ्यता आर्यो के आगमन के बाद की नहीं है बल्कि यह सभ्यता रावण युग से भी पुरानी है।

महावंश के अनुसार आर्यावतरण के पहले कई बार आर्य लंका आए। महावंश के अनुसार महावंश के अनुसार आर्य पहले पहल एक राजकुमार तथा अपने सात सौ भारतीय मित्रों सहित लाट देश से नौका से यहाँ आए। उसने लंका की एक कुवेणी नामक यक्ष तरुणी के साथ शादी की। महावंश के जरिए श्रीलंका के इतिहास के विकास का वर्णन करें तो इससे पहले का सभ्य इतिहास श्रीलंका में मिलता है। इसके विवरण जनश्रृति, अनुश्रृति बौद्ध साहित्य तथा देशज वैद्य कर्म कुमारतंत्र, अर्थप्रकाश, नाडिप्रकाश, उडीतंत्र आदि रावण से संबंधित ग्रंथों में मिलते हैं। राजकुमार विजय का प्रथम आगमन महावंश के अनुसार लंका के उत्तर पश्चिम क्षेत्र में ताम्ब्रपन्नी नामक समुद्र के किनारे हुआ। महावंश के अनुसार उस दिन यक्ष लोगों की शादी के उत्सव का वर्णन मिलता है। यह वर्णन महाकालसेन नामक यक्ष नायक की पुत्री 'पोलमिता' की है। इस अवसर पर वे ढोल एवं काहल नामक वाद्य बजाते थे। पोल्मिता की शादी लंकापुर के एक यक्षाधिपति के साथ हो रही थी। विवाह उत्सव का परिचय बौद्ध भिक्षु वज्रबोधि ने (ई. 689) भी दिया था। पूरे छह महीने तक वह अभयगिरि स्थान में रहकर श्रीपाद पहाड़ तक गए। उसी रास्ते में उस यक्षाधिपति का नगर लंकापुर बसा था। लेकिन उस लेखन में लंकापुर का परिचय नहीं मिलता है। लोक कथाओं के अनुसार राजा रावण का मंदिर उस श्रीपाद पहाड़ के आसपास था तथा राजकुमार विजय की पत्नी कुवेणी एक यक्ष तरुणी विजय से पहली बार मिली थी। वह रूई से अपने वस्त्र बना रही थी। इस प्रकार की उपलब्धियों से अनुमान लगाया जा सकता है कि, लंका में आर्यावतरण से पहले से ही लोग निवास करते थे, जो सुसंस्कृत थे तथा सभ्य थे। ऐसा अनुमान और भी है कि लंका एक पुर है। यह सिंहल द्वीप में बसा हुआ है। जनश्रृति के अनुसार लंकापुर रावण का निवास स्थान है। रावण अनार्य और यक्ष गोत्र के हैं। विद्वानों के मतानुसार भारतीय आर्य तथा लंका के यक्ष, देव तथा नाग नामक अनार्यों की घटनाएँ प्रागैतिहासिक युगों से हो रही थी। इस घटनाओं का चित्रण वाल्मीकि रामायण में मिलता है।

पुराकथाओं के अनुसार यक्षों के मन में भारतीय आर्यों को स्वीकार करने की इच्छा नहीं थी। यक्ष वर्ग एक रणशूर गोत्र है। रावण से संबंधित जनश्रुति में यक्ष गोत्र के यंत्र, मंत्र, तंत्र की शक्ति तथा वैद्य कर्म, अलौकिक तथा मानसिक शक्ति के विषय सुनाई देते हैं। श्रीलंका के प्रागैतिहासिक युगों में यक्ष गण के अलावा और दो जातियाँ थीं, वे हैं राक्षस और नाग। विद्वानों के मतानुसार राक्षस नामक जाति नहीं थी; वह यक्षों का ही एक बलवान रूप है तथा यक्षों की सेना में एक दल के रूप में थे। नाग भी एक जाति है। वे प्रागैतिहासिक लंका के निम्नभूमि में रहते थे। वे सूर्य के उपासक भी थे। वर्तमान में भी भारत में नाग नामक एक जाति है। वे भी सूर्य की पूजा करते हैं। हरिवंशपुराण में भी नाग के एक वर्ग का वर्णन मिलता है। इसमें धूमवर्ग नामक एक नाग राजा और उसकी राजधानी रत्नदीप का भी उल्लेख है। रत्नदीप एक ऐसी जगह है जहाँ गुप्त बल होता था। इस बल से सागर जाने वाली नौकाओं का विनाश हो जाता था। रत्नदीप का निर्माण लोहे के पाषाण से युक्त है। नाग वर्ग देश की धन–संपत्ति के संरक्षक भी थे। वे निचले इलाकों में रहने वाले थे तथा नौका चलाने में चतुर भी थे। वे सागर के नाविक लोगों के लिए अपनी– अपनी जगह ध्वज और पताकाएँ दिखाया करते थे। वर्तमान श्रीलंका में भी नाग वर्ग को भूगर्भ देव का रूप मानकर उनकी पूजा की जाती है परंतु विद्वानों का मत यह है कि यक्ष, नाग तथा देव गोत्रों का आचरण आर्यों के आगमन तथा

बौद्ध धर्म के प्रभाव के फलस्वरूप रूपांतरित हुआ है।

ऊपरलिखित विचारों से माना जा सकता है कि अनार्य जन भारतीय आर्यों से लगातार लड़ते रहे होंगे। लंका और रामायण की संबंधता उसी घटना की तरफ संकेत करती है। यह सामाजिक कथा असुर–संहार से संबंधित है। अर्थात् रामायण आर्यों की प्रशंसा के लिए की गई रचना है। रामायण के अनुसार यक्षों का रूप भयंकर प्रतीत होता है। मुँह के बाहर आनेवाले दो दाँत और रोम से भरे हुए शरीर वाले यक्ष–राक्षस और नाग का रूप धारण किया करते थे। रामायण में लंका के अनार्य वर्ग को अमनुष्य के रूप में दिखाया गया है। महावंश एवं दीपवंश यद्यपि श्रीलंका की ऐतिहासिक पुस्तकें हैं किंतु इनमें रावण का एक अंशमात्र भी उल्लेख नहीं है। रावण की पूरी प्रवृत्ति का परिचय महाकवि वाल्मीकि ने दिया है। तत्पश्चात भारतीय ग्रंथकारों ने रावण के अंतःविरोधी व्यक्तित्व को भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों से अंकित किया है।

भारतीय साहित्य में आदिकाव्य रामायण केवल महाकाव्य ही नहीं यह भारतीय सांस्कृतिक जीवन का आधारस्तंभ भी है। भारतीय जीवन आदर्श में रामायण और महाभारत का प्रभाव सर्वस्वीकार्य है। इसका प्रचलन केवल भारत तक ही सीमित नहीं है बल्कि एशिया तथा यूरोप महाद्वीप तक भी है। लेकिन इसे ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में स्वीकृति नहीं मिली है। इसके बावजूद इसके अंतर्गत निहित कथाएँ और स्थापत्य के और राम–रावण की घटना के अभिनय रूपी प्रस्तुतीकरण से श्रीलंका और भारत के अटूट संबंधों का पता चलता है। पंडित वेबर के अनुसार रामायण, जो एक महान कृति है, इसमें आर्यों की संस्कृति के फैलाने को विजय गीत के समान गाया गया है। इसके अनुसार रामायण नामक महाकाव्य की विषयवस्तु बहुत पुरानी प्रतीत होती है।

बहुत सारे लेखकों ने बताया है कि चार रामायण में वर्णित लंका श्री लंका नहीं है। ई. पू. 4 में रचित रामायण में उल्लेखित कई स्थान वर्तमान श्रीलंका में देखने को मिलते हैं। उन्हीं घटनाओं को जनकथाओं के रूप में सुनाया जाता है। इसके अलावा 'Ravanage Varigapurvikava', नामक अमुद्रित ग्रंथ तथा रावण अनुश्रुति से संबंधित स्थानों और राम–रावण युद्ध की घटनाओं तथा पुराकथाओं के आधार पर माना जा सकता है कि वाल्मीकि रामायण की लंका वर्तमान श्रीलंका ही है। श्रीलंका के पहाड़ी क्षेत्र को रावण के यक्ष गोत्रों की राजधानी माना जाता है, जिसको लंकापुर कहा गया है। रामायण में युद्ध खंड की घटनाओं से संबंधित कहानियाँ श्रीलंका के अधिकतर उत्तर, उत्तर–पूर्व, दक्षिणऔर पश्चिम–उत्तर आदि प्रदेशों में प्रचलित हैं। पुरातत्व–साक्ष्यों और रामायण से संबंधित घटनाओं का श्रीलंका की लोक– कथाओं के साथ एक घनिष्ठ संबध देखा जा सकता है। वाल्मीकि के रामायण में रावण को शक्तिशाली शक्ति के रूप में चित्रित किया गया जो देवताओं को परेशान करता था। आज भी वह भारत में एक दुर्दांत राजा के रूप में जाना जाता है। वास्तव में विष्णु ने राम का रूप धारण करके पृथ्वी पर आकर रावण का वध किया, विष्णुसुर में ऐसा ही मिलता है। सुर का संकेत आर्य जनता के लिए संकेत है। सतयुग पार करके त्रेता युग तक जाने के समय इस युग के बीच में राम–रावण संग्राम हो गया। रामायण में ऐसी गाथा का वर्णन है कि कैसे सनातन धर्म की मर्यादा स्थापित करने के लिए तथा दुष्ट रावण के अत्याचार से पीड़ित पृथ्वी को सुखी करने के लिए राम ही अभिराम बनकर विश्व के उद्धारक बन बनाए जाते हैं।

श्रीलंका में 'राम' एक शब्द नहीं। एक कथा ही नहीं बल्कि यह एक ऐतिहासिक विचार है। भारत में राम, भारतीय इतिहास के रूप में, एक कथा के रूप में, एक दर्शन के रूप में, संस्कार एवं संस्कृति के रूप में, व्यक्ति

के रूप में तथा गाथा के रूप में प्राचीन से आधुनिक समय में अर्थात् आज भी विद्यमान है। राम हिंदू धर्म के प्रमुख देव माने गए हैं किंतु रावण को ऐसा स्थान नहीं मिला है।

फिर भी रावण के प्रति गौरव श्रीलंका के जन के मन में है। विस्मय की बात यह है कि श्रीलंका में राम और रावण दोनों प्रतिष्ठित रूप में स्वीकृत है। यहाँ केवल राम–रावण की घटना अत्यन्त रसपूर्ण कथा थी। परंतु वर्तमान में रामायण से प्रभावित कई टी.वी. धारावाहिक और स्टेज ड्रामा प्रचारित व प्रसारित किए जा रहे थे। तत्पश्चात् समाज में रावण के प्रति नए विचार बनने लगे। रावण अपनी बहन की व्यथा देखकर कुपित होने लगे और उन्होंने ईश्वर से मिले वरदान का अपने दुश्मनों के प्रति दुरुपयोग किया, जिससे महान रावण का नाश हुआ और रावण के वध का कारण विभीषण बने। पराजित राजा रावण आज भी देश प्रेमी के रूप से माने जाते हैं। लंका की अनुश्रुति के अनुसार रावण सीताजी को अपनी माँ के समान इज्जत देते थे। उन्होंने सीताजी को स्पर्श तक भी नहीं किया था। उतना प्रेम राम के मन में अपनी पत्नी सीता के प्रति नहीं था। प्रेम था लेकिन वह प्रजा और धर्म के सामने विवश हो गए। इन विचारों का अर्थ यह है कि देशप्रेमी एक राजा की श्रेष्ठता को आगे बढ़ावा देता है। लोगों ने उसे त्यागशील योगी, प्रकृति प्रेमी, तेजस्वी, देशप्रेमी और शिव का उपासक माना है तथा कश्यप बुद्ध का उपासक भी।

श्रीलंका और रामायण की परस्पर संबंधता दिखाने के लिए दो प्रकार के विषयों पर ध्यान दिया जा सकता है। एक रामायण के अंतर्गत श्रीलंका का परिचय तथा श्रीलंका की अनुश्रुति के अंतर्गत रामायण के संबंधित पात्र, घटना और स्थापत्य को पुरातत्व का साक्ष्य नहीं माना जा सकता। परंतु रामायण की कथावस्तु के समान नहीं होते हुए भी इसके कई पात्र, कई घटनाएँ तथा स्थान लंका में वर्तमान तक प्रचलित है। परंतु राम के समय तथा रावण के समय का विषय विवादस्पद है। रावण से संबंधित मत 'राजावली' नामक एक सिंहली ग्रंथ में प्राप्त होता है। इसके अनुसार रावण का समय गौतम बुद्ध की उत्पत्ति के समय (सन् 1744) के पहले रहा होगा। परंतु 'लंकावतार' नामक धर्म सूत्र में रावण का दूसरा युग कहलाता है। इसमें 'कोणागम' नामक ग्रंथ में बुद्ध के समय को रावण का युग बताया था। ऐसे ही हिंदू काल गणना के अनुसार श्रीराम का अविर्भाव त्रेता युग के अंतिम चरण में माना गया है। अतः इसके अनुसार द्वापर युग के तीन लाख चौंसठ हजार वर्ष कलियुग के पाँच सौ बीस वर्ष, रामराज्य के ग्यारह हजार वर्ष अर्थात् कुल सात लाख सत्तर हजार दो सौ चार वर्ष पूर्व दशरथ पुत्र राम की उत्पत्ति सिद्ध होती हैं। अतः इसके निर्माण का समय भी लगभग पौने नौ लाख वर्ष पूर्व ठहरता है। ऐतिहासिक युग एवं प्रागैतिहासिक काल की संपूर्ण अवधि आधुनिक विद्वानों ने मात्र छह हजार वर्ष के भीतर ही मानी है।

संसार के वर्षो की गिनती देव, शास्त्र, ऋषि, व्यक्ति की उत्पत्ति के रूप में होती है। त्रेता युग, कलियुग, शकवर्ष, बुद्ध वर्ष, हिजरी वर्ष आदि के निर्माण उसके अनुसार होता है। उस प्रकार विद्वान विलियम जोंस ने राजा रावण का जन्म ई. पू. दो लाख अड़सठ हजार एक सौ दो में बताया है। इसके अनुसार उसका जीवन काल ई. पू. बीस लाख इक्हत्तर हजार तीन सौ अठत्तर वर्ष तक था। विलियम जोंस के अनुसार उस काल के साधारण मनुष्य की आयु लगभग 20,000 वर्ष होती थी। अनुश्रुति में भी राजा रावण को चक्रवर्ती नाम से पुकारा गया है। श्रीलंका के आदि मानव 'बलंगोडेन्सिस' उस काल से संबंधित है। माना गया है कि राजा रावण भी उस काल के हैं। प्राचीन 'मत' के अनुसार रावण को 'दासिस्' नाम से पुकारा जाता था। इसका अर्थ यह है कि रावण दस सिर (सिरवाले) से युक्त था। कई लोग राम और रावण का जन्मकाल एक

ही काल में मानते हैं। परंतु उन कालों के घटनाक्रम की जानकारी ऐतिहासिक तत्वों से मिलना कठिन कार्य है। इसकी मुख्य कठिनाई ऐतिहासिक युगों के साक्ष्यों की परस्परता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बट्ट नारायण मिश्र, भगवान श्रीराम का स्वरूप एवं उनकी भगवत्ताः मानस संगम मैगजीन, 2004।

2. इंद्रचंद्र नारंग, पद्मावत् का अनुशीलन, 2014।

3. सं त्रिगुणायत गोविंद, मोहम्मद जायसी का पद्मावत्, 1981।

4. लाल शर्मा किसन, रावण संहिता, 2014

5. सं. गोविंदराम हासानंद, भगवद्त्त, भारतीय संस्कृति का इतिहास, 2011।

6. द्विवेदी मनीष कुमार, भारतीय साहित्य एवं कला में दशावतार, 2001।

7. राजप्रकाश अग्रवाल, वाल्मीकि और तुलसी साहित्य मूल्यांकन, 2003।

❑❑❑

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी के समक्ष चुनौतियाँ

राजेंद्र सहगल

इस तथ्य से भला कौन असहमत हो सकता है कि भाषा मात्र ज्ञान अर्जन के लिए नहीं बल्कि किसी भी देश की प्रगति व उसकी अस्मिता का मानक बिंदु होती है। इसके साथ ही यह भी मानना होगा कि जिस तरह आर्थिक संदर्भ में बाजार और राजनीतिक संदर्भ में राष्ट्र–राज्य के सामने संकट बढ़ता गया है ठीक उसी तरह सांस्कृतिक संदर्भ में भी राष्ट्रों की भाषाओं व संस्कृतियों के समक्ष भी संकट उत्पन्न हुआ है। ऐसे में इस सच्चाई से भी मुँह नहीं मोड़ा जा सकता कि विभिन्न क्षेत्रों में यह संकट अलग–अलग चुनौतियों का कारण बन रहा है जिसके लिए अलग–अलग रणनीतियों की आवश्यकता भी अनुभव की जाती रही है। ऐसी स्थिति में वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी एक बार फिर अपनी सहज संप्रेषणीयता और समन्वयात्मकता के बावजूद एक नए संक्रमण की चुनौती से गुजर रही है।

वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण जैसी अवधारणाएँ इतनी नई नहीं है जैसी इन शब्दों से व्यक्त या ध्वनित होती है। हिंदी और हिंदीभाषी समाज पर पड़ने वाले दबाव उस वैश्वीकरण के स्वरूप से भिन्न हैं जो उपनिवेशीकरण के रूप में विकसित हुआ था। वस्तुतः भाषा किसी समाज की छवि मात्र ही नहीं होती बल्कि उसकी नियति भी होती है जो समाज के चरित्र, उसकी संरचना व परिस्थितियों को गहरे प्रभावित भी करती है और अन्ततः भाषा के वेगवान भविष्य की दिशा निर्धारित करने में अपनी कारगर भूमिका का निर्वाह करती है। पूंजीनिवेश की मरीचिका, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश, कृषि के मशीनीकरण से उपजी विषमताओं, बेरोजगारी जैसी गंभीर पहले से मौजूद सामाजिक चुनौतियाँ इस भूमंडलीकरण के दौर में और अधिक तेजी से उभरकर सामने आने लगी। इस दुष्चक्र में साहित्य–पत्रकारिता की आधुनिक हिंदी के निर्माण में भूमिका क्षत–विक्षत होने लगी। चूँकि हिंदी संघर्ष की भाषा रही है इसलिए उपनिवेशवाद और पूँजीवादी साम्राज्यवाद के विरुद्ध लोकचेतना की राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में भी आधुनिक हिंदी की शीर्ष रचनाओं ने जन्म लिया। बेशक वैश्वीकरण के दौर में अंग्रेजी जैसी प्रभुत्वशाली भाषाओं की परिधि और लोभ–लालच बढ़ा है। उच्च शिक्षा और ज्ञान विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों से हिंदी के निष्कासन से शब्दनिर्माण प्रक्रिया और अर्थ–विस्तार अवरुद्ध हुआ है। इतना ही नहीं सर्जनात्मक साहित्य व पत्रकारिता पर भी इसका गहन प्रभाव हुआ है। इंटरनेट की तेज रफ्तार, कंप्यूटर के बढ़ते इस्तेमाल से सूचना को ही ज्ञान मानने की जिद से अध्यवसाय, स्मृति व संवाद क्षमताओं को अनुपयोगी व पिछड़ापन मानना सामूहिक चेतना का संकुचन व सांस्कृतिक बिखराव का रूप लेने को आमादा प्रतीत हो रहा है।

चूँकि वैश्वीकरण एक सर्वव्यापी घटना है इसलिए प्रत्येक स्तर पर रूपांतरण अवश्यंभावी है। वैश्वीकरण की प्रकृति को समग्रता में समझते हुए उसकी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को लक्षित करते हुए उसे हिंदी के संदर्भ में इस व्यापक दृष्टि से विश्लेषित करने की आवश्यकता है कि यह विमर्श हिंदी बनाम अंग्रेजी के द्वंद्व तक सीमित न रहकर व्यापक फलक पर विवेचित किया जाए। कमोबेश यह स्वीकार किया जाने लगता है कि आज का दौर सूचना क्रांति के साथ साथ मनोरंजन क्रांति का भी है। राजनीति अर्थव्यवस्था की घनीभूत अभिव्यक्ति है तो इंटरनेट समाज के सांस्कृतिक जीवन को

सर्वाधिक प्रभावित कर रहा है। इसी उथलपुथल के भाषागत निहितार्थ को समझने की भी आवश्यकता है।

वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी के समक्ष चुनौतियों के बीच हिंदी की प्रकृति और संभावनाओं को पहचानना अत्यंत समीचीन है। हिंदी सहज रूप से समस्त उत्तर भारत ही नहीं अपितु पूरे देश में स्वीकार्य होते हुए विकसित हुई जिसे अहिंदी भाषा के विद्वानों ने भी समृद्ध किया। उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल के केशवचंद्र सेन और गुजरात के दयानंद सरस्वती ने हिंदी की हिमायत की। राष्ट्रीय आंदोलन के भाषागत आधार के रूप में स्वीकार्य और इस देश के सर्वाधिक लोकप्रिय नेताओं महात्मा गांधी और सुभाषचंद्र बोस ने हिंदी को सरोकार व संप्रेषण की भाषा बनाकर स्थापित किया। लेकिन जैसे ही हिंदी साहित्य–संस्कृति के साथ राजनीति की वाहक बनी तभी उसमें संकीर्णताओं और विखंडनवादिता को प्रश्रय मिलने लगा। यहीं से भाषा राजनीति का उपकरण बनने लगी और भाषा ही नहीं राजनीति भी विकृत होने लगी। जैसे ही बहुभाषी आजाद देश की एक सर्वस्वीकृत भाषा का प्रश्न उठा; जिसमें भारतीय अस्मिता अभिव्यक्त हो सके तो सांस्कृतिक के बजाय आर्थिक राजनीतिक कारणों से हिंदी औपनिवेशिकता का प्रतीक बना दी गई और उत्तर–दक्षिण के बीच विभाजक रेखा खींच दी गई। वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी के समक्ष कई चुनौतियों के बीच उसमें आशावादिता का आधार है हिंदी की अन्तर्निहित शक्ति और क्षमता।

आज वैश्वीकरण के दौर में साहित्येतर क्षेत्र में हिंदीभाषी क्षेत्र की उत्कृष्ट प्रतिभाओं को मौलिक सृजन हिंदी में ही करना होगा। उत्कृष्ट अनुवाद मानव समाज को एक करने में कारगर उपकरण साबित हो सकता है। साहित्य संस्कृति के प्रचार–प्रसार व सकारात्मक भूमिका के निर्वाह के लिए जागरूक रहना होगा। सिनेमा–टेलीविजन में प्रचलित व लोकप्रिय हिंदी के इस्तेमाल से जनमानस को भाषागत सतर्कता के जरिए कृत्रिम गुणवत्ता से बचाया जा सकता है। हिंदी भाषा शिक्षण–प्रशिक्षण, ज्ञान–विज्ञान, कला संस्कृति व सृजनशीलता चिंतन मनन से जन–जन में स्वीकार्य हो सकती है और यही चुनौतियाँ उसके लिए अवसर का निर्माण करेंगी। वैश्वीकरण से भारतीय प्रवासियों की संख्या और क्षमता बढ़ी है जिससे सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से हिंदी एक जीवंत व सशक्त कड़ी के रूप में उभरी है। हिंदी पत्रकारिता के साथ–साथ साहित्य भी इंटरनेट के माध्यम से विश्व में प्रसारित प्रचारित होने लगा है। हिंदी को भारत की अन्य भाषाओं तथा अंग्रेजी को बिना प्रतिद्वंदी मानते हुए अपनी सामर्थ्य व संभावनाओं को पहचानकर निरंतर अध्ययन–चिंतन–मनन सृजन से आधुनिकता बोध से जोड़कर भारत में वास्तविक जनतंत्र की स्थापना के लिए जनभाषा की शक्ति अर्जित करनी होगी।

चूँकि इंटरनेट के लिए भौगोलिक सीमाओं का कोई अर्थ नहीं है, इसी कारण भाषा के प्रसार और उत्कर्ष के साथ उसके पतन के कारण भी उसी में निहित हैं। भाषा और शब्दों के संक्षिप्तीकरण का सारा दोष रेडियो, टेलीविजन व इंटरनेट का नहीं बल्कि यह प्रक्रिया औद्योगिकीरण के साथ ही आरंभ हो गई थी जिसका विस्तार अब हुआ है। ऐसे में वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण के इस दौर में हिंदी का मूल संसार शायद और सिमटे और उस पर हमले बढ़े लेकिन बाजार की बड़ी संभावनाओं के रूप में उभर रही हिंदी भाषा के नष्ट होने का संकट न के बराबर है। ऐसी स्थिति में अन्य विश्वभाषाओं से शब्द लेना उसकी विवशता भी हो सकती है। वैश्वीकरण की ताकतें, भाषाओं पर हमले व समाज और उसकी मानसिकता को प्रभावित करने का खेल कितना भी खेले लेकिन हिंदी भाषा ओर उसे बोलने वालों की अदम्य जिजीविषा उसे मरने नहीं देगी। अलबत्ता इसके लिए अपनी ढुलमुल मानसिकता, दुविधा, संशय व अस्पष्ट चिंतन से मुक्ति पानी होगी। हिंदी भाषा को

अपनी अस्मिता के लिए अपनी बोलियों अर्थात् अपनी जड़ों की ओर लौटना होगा ताकि अपने मौलिक, देशी लेकिन अधुनातन सोच से वैश्वीकरण की नई चुनौतियों का सामना कर सके।

वैश्वीकरण को समाजविज्ञानी की दृष्टि से देखें तो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया, मध्यम वर्ग, बाजारीकरण, संचार व सूचना क्रांति, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के फैलाव, आप्रवासन के चलते राष्ट्रीयता व राष्ट्रनिरपेक्षता तथा भाषा निरपेक्षता जैसी अवधारणाएँ राष्ट्रीय अस्मिता व भाषाई अस्मिता की नई परिभाषाएँ गढ़ रही हैं।

राजभाषा होने के बावजूद साहित्य के अलावा ज्ञान–विज्ञान के अन्य विषयों में हिंदी की उपस्थिति का न होना सबसे बड़ा अवरोध रहा है जिसने ज्ञान के विस्तार के रोकने में सबसे बड़ी भूमिका निभाई है। विज्ञान और तकनीकी को छोड़ दें तो राजनीति, समाजशास्त्र, वाणिज्य, अर्थशास्त्र जैसे विषयों में मौलिक लेखन का हिंदी मे नितांत अभाव है। बेशक श्यामाचरण दुबे और पूरनचंद्र जोशी जैसे समाज विज्ञानियों ने हिंदी में भी लेखन किया है तथा मनोविज्ञान पर सुधीर कक्कड़ ने भी कुछ किताबें लिखी हैं लेकिन यह भी कम बड़ी विडंबना नहीं है कि सामाजिक परिवर्तन के हिमायती वामपंथी भी हिंदी से दूरी बनाए रखते है और शासक तथा शोषक वर्ग की भाषा के प्रति अपना रूझान प्रकट करते हैं। ज्ञान का माहौल बनाने के लिए केवल बुद्धिजीवियों, लेखकों, समाज विज्ञानियों या वैज्ञानिकों का ही दायित्व पर्याप्त नहीं बल्कि पूरे समाज के हर वर्ग की सक्रियता जरूरी है।

हिंदी के प्रति उच्च वर्ग ही नहीं बल्कि मध्यवर्ग की उदासीनता दुर्भाग्यपूर्ण है। तो क्या यह मानना निर्मल है कि हिंदी का भविष्य उन पिछड़े लोगों से जुड़ गया है जिन्हें पढ़ने लिखने का अवसर नहीं मिला और उसे ज्ञान तथा प्रकारांतर से सत्ता के केंद्रों से वंचित रखना है। इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि सरकारी जड़ता, विकृत राजनीति और सरकारी संस्थाओं की गैरजिम्मेदारी से भी क्षति हुई है। अनुवादकों की यांत्रिक व नकली भाषा ने भी भाषा की जीवंतता व लचीलेपन को नुकसान पुहँचाकर उसे प्राणहीन कर दिया है।

इन सभी चिंताओं के बीच वेब आधारित तकनीक हमारे सामाजिक संप्रेषण व्यवस्था का अभिन्न अंग बन रही है। इस माध्यम से सूचना का प्रसार समाज में आम आदमी के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में अपेक्षित परिवर्तन ला सकता है। इंटरनेट तकनीक की मदद से आम आदमी को क्षेत्रीय भाषा में भी आवश्यक जानकारी उपलब्ध करवाई जा सकती है। इस तकनीकी का सही उपयोग पूरे देश के कृषि परिदृश्य को बदल सकता है बल्कि अंतरराष्ट्रीय बाजार में स्थान भी बनाया जा सकता है। कंप्यूटर साधित अनुवाद का विकास व्यवहार क्षेत्रवार ही संभव है। यह भी याद रखना होगा कि सूचना तकनीक की क्रांति के बावजूद मशीन द्वारा तैयार अनुवाद सिस्टम अनुवाद का स्थान नहीं ले सकेगा बल्कि वह अनुवादक के लिए महज सहायक उपकरण ही सिद्ध होगा।

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि विश्वबाजार के सांस्कृतिक पहलुओं को भारतीय समाज की आंतरिकता में प्रवेश करवाने में हिंदी की विशिष्ट भूमिका है। यह भाषा स्वाभाविक तौर पर बाजार शक्तियों के इस्तेमाल के लिए स्वाभाविक उपकरण बन जाती है। आक्रामक बाजार अपनी रणनीति के अनुसार रेडियो, टेलीविजन, प्रचार होर्डिंग, समाचारपत्रों के विज्ञापन, हैण्डबिल, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से प्रचारराशि का बड़ा हिस्सा हिंदी व भारतीय भाषाओं पर व्यय करता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ उत्पाद के साथ दी जाने वाली प्रचार–सामग्री हिंदी में प्रकाशित करवाती है। इस सबके बावजूद यह बाजार की शक्तियों द्वारा हिंदी भाषा की सामाजिक संप्रेषण की क्षमताओं का अपने ढंग से अनुकूलन करता है। तकनीकी सुविधाओं के हिंदी में उपलब्ध हो जाने के बाद भी जब तक

कारोबार की संस्कृति और सोच की दिशा में बुनियादी परिर्वतन नहीं आता तब तक प्रगति का कोई अर्थ नहीं। भाषा का विकास उसके बोलने वालों की विविध आवश्यकताओं के अनुरूप होता है। इस भाषा को बोलने वालों की व्यापक आकांक्षाओं को हमारे यहाँ शक्ति केंद्रों ने ही दबाया है। यह भाषा केवल साहित्य, पत्रकारिता व मनोरंजन तक सिमट कर रह गई। इसे विज्ञान, कला, प्रशासन, वाणिज्य, चिकित्सा, विधि, प्रबंध, विज्ञान प्रौद्योगिकी आदि में हिंदी माध्यम से उच्च स्तर की कोई व्यवस्था नहीं हुई और न ही इसे दैनंदिन कामकाज से जोड़ा गया। नई विकसित खिचड़ी भाषा में खाए पीए अघाय नवधनाढ्य वर्ग की भोगविलास, स्वार्थ, बर्बरता, स्पर्धा व आत्मकेंद्रितता तो झलकती है लेकिन शोषित वंचित जनता के सरोकार व्यक्त नहीं होते।

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी के महत्व को दर्शाने वाले बिंदुओं में हिंदी के विज्ञापनी रूप के विकास, हिंदी की संप्रेषणमूलकता में वृद्धि, हिंदी की नई संरचना का उभार, हिंदी के हिंगलिंश रूप का विस्तार भी लक्षित होता है। इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि राजभाषा के रूप में हिंदी भले ही उपेक्षित रही हो लेकिन जनभाषा के रूप में उसका महत्व निर्विवाद है।

निस्संदेह भूमंडलीकरण हमारी वैश्विक चेतना की उपज है। विभिन्न संस्कृतियों में समन्वय, मानवीय ज्ञान विज्ञान और उत्पादों की सर्वसाधारण को उपलब्धता, विभिन्न भाषिक इकाइयों व धार्मिक समुदायों का एकीकरण जैसी विशिष्टताएँ व आदर्शात्मक अवधारणाएँ इसी भूमंडलीकरण का ही परिणाम है। मौजूदा दौर में हिंदी लगभग 150 देशों तक पहुँच गई है। जिसमें पड़ोसी देशों नेपाल, म्यांमार, तिब्बत, भूटान, लंका, मालदीव, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बांग्लादेश आदि हैं तो भारतवंशी बहुल राष्ट्रों जैसे मारीशस, फिजी, सूरीनाम, ब्रिटिश गुयाना, त्रिनिदाद–टुबैको और दक्षिण अफ्रीका के कुछ देश भी गण्यमान हैं। आप्रवासी बहुल राष्ट्रों जैसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा, इंगलैंड, नार्वे, स्वीडन, इटली, जर्मनी, जापान, सिंगापुर, मलेशिया, इण्डोनेशिया, बर्मा आदि देशों में कई स्तरीय रचनाकार, पत्रिकाएँ व संस्थाएँ सक्रिय हैं।

यह उपलब्धि है कि पिछले दशकों में विश्वस्तर पर हिंदी ने सात रूप विकसित किए है : मारीशस की क्रियोली, फिजीयन हिंदी, जिनी हिंदी, सूरीनाम हालैंड और गुयाना की 'सरनामी' हिंदी, दक्षिण अफ्रीका की नेटाली हिंदी, उजबेकिस्तान की ताजिकी हिंदी तथा यूरोप की रोमा जनजाति की रोमा हिंदी। इन सबके चलते हिंदी की बहुसंख्यकता एक अरब के आसपास पहुँच गई है और हिंदी ने लगभग डेढ़ हजार वर्षों की अवधि पूर्ण कर ली है।

वैश्वीकरण मात्र एक शब्द नहीं बल्कि एक संकल्पना है जिसमें भाषा की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। संपूर्ण विश्व के व्यापारिक रूप से जुड़ने में भाषा ही संप्रेषण का कारगर माध्यम होती है। वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी की सार्थक भूमिका के लिए और इसके प्रयोग की व्याप्ति के लिए केंद्रीय हिंदी निदेशालय हिंदी भाषा ओर देवनागरी लिपि का मानकीकरण भी किया है।

पश्चिमी यूरोप में हिंदी का पठन–पाठन उत्तरी अमेरिका से भिन्न है। यूरोप में हिंदी पठन–पाठन अलग अलग दिशाओं में है। भारतीय ज्ञान–विज्ञान में रूचि रखने वाले अपनी तरह से हिंदी पढ़ रहे हैं। उत्तरी अमेरिका की तरह हिंदी को मीडियम भाषा के रूप में पढ़ा जा रहा है और प्रवासी भारतीयों की दूसरी, तीसरी पीढ़ी अपनी जड़ों से जुड़ने के लिए हिंदी की पढ़ाई कर रही है। हंगरी, पौलेंड और चेक गणराज्य में हिंदी का अध्ययन व्यावसायिक दबावों के चलते एक सीमा तक राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं से दूर विशुद्ध अकादमिक स्तर पर है। यहाँ हिंदी पढ़ने वालों की संख्या कम होने के बावजूद उनमें हिंदी के प्रति आस्था है।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हिंदी अभी भी सांस्कृतिक प्रतीकों व विशेष मध्यवर्गीय जीवन

विश्वासों व संकीर्ण अंधविश्वासों से मुक्त नहीं हो पाई है। हिंदी को तत्परता, सतर्कता, सामर्थ्य और वेगवान बनाने की चुनौतियाँ हैं ताकि उसे जनभाषा के आसन से उठाकर राष्ट्रभाषा के प्रतिष्ठित सिंहासन पर बिठाने के लिए जीवन संघर्षों, संवादों के आदान–प्रदान से व्यावहारिक जामा पहनाया जा सके। हिंदी को वैश्विक बनाने की प्रक्रिया में अंतरप्रांतीय बनाने की पहल करते हुए तमिल, मलयालम, कन्नड़, तेलुगु, कोंकणी, मणिपुरी या राजस्थानी, गुजराती, कुमाऊँनी के साथ हिंदी के संबंधों की पहचान व सघनता के लिए कार्य योजनाएँ तैयार करने की आवश्यकता है। हिंदी को जमीनी सवालों से गैर सरकारी स्तरों पर निपटने की योजनाओं के साथ प्रादेशिक अस्मिताओं व सांस्कृतिक अवधारणाओं से सघन संवाद करना होगा।

कजाकिस्तान में हिंदी विभागों के समस्त छात्रों का आदर्श वाक्य है ''जो बोलूँ हिंदी में बोलूँ, जो सोचूँ हिंदी में सोचूँ''। कई वर्षों से विदेशों में अनेक स्थलों पर विधिवत रूप से हिंदी पढ़ाई जा रही है। इन विधिवत शिक्षा केंद्रों में एक बुलगेरिया का सोफिया विश्वविद्यालय भी है जहाँ हिंदी का अध्ययन–अध्यापन स्नातक स्तर पर होता है। बुलगेरिया भारतीय विधा विभाग के विद्यार्थी हिंदी रचनाओं को बुलगेरियन भाषा में और बुलगेरियन साहित्य का हिंदी में अनुवाद करने के लिए तत्पर रहते हैं। चीन में अकेले बीजिंग में तीन विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। इसके अलावा यूनान और गुआंगडोंग सहित कई प्रांतों के शीयान, कुनमिंग, शंघाई आदि शहरों के विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। दक्षिण अमेरिका के उत्तर पूर्वी क्षेत्र में स्थित सूरीनाम में डच अधिकारिक भाषा है जहाँ भारतवंशियों को अनुबंधित श्रमिकों के रूप में लाया गया और सूरीनाम में हिंदी का उदय इन्हीं गिरमिटिया मजदूरों के माध्यम से हुआ। आस्ट्रेलिया में भारतीय मूल के लोग कई देशों जैसे फीजी, दक्षिण अफ्रीका, मारीशस, इंग्लैंड आदि से आए हैं। आस्ट्रेलिया के विभिन्न शहरों में हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रचार–प्रसार के लिए कई संस्थाएँ स्थापित हुई। न्यूजीलैंड के आप्रवासी भारतीयों में ज्यादातर फीजी, भारत, यूके, दक्षिण अफ्रीका, कीनिया, तंजानिया है। न्यूजीलैंड में हिंदी के विकास में प्रवासी भारतीय माता–पिता, हिंदी विद्यालय, सामाजिक व धार्मिक संस्थाओं तथा भारतीय दूतावास की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। नीदरलैंड में हिंदी भाषा और संस्कृति के लिए प्रवासी हिंदुस्तानियों का महती योगदान है। हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था नीदरलैंड के हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था नीदरलैंड के छह हिंदी स्कूलों में है जिसमें पाँच स्कूल सनातन धर्म हिंदू परिषद द्वारा चलाए जाते हैं जिनमें भाषा और भारतीय संस्कृति पढ़ाई जाती है।

हिंदी के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में उसका उचित स्थान दिलाने व उस पर खुला विमर्श करने में विश्व हिंदी सम्मेलनों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के तत्वावधान में 1975 में 10–14 जनवरी तक पहला विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर में आयोजित किया गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने इसका उद्घाटन किया और मॉरिशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिव सागर राम गुलाम मुख्य अतिथि थे। सम्मेलन में 30 देशों के 122 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। दूसरा विश्व हिंदी सम्मेलन डॉ. कर्णसिंह की अध्यक्षता में 28–30 अगस्त 1976 में मॉरिशस की राजधानी पोर्टलुई में विश्व के 17 देशों के 181 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। भारत की राजधानी दिल्ली में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की अध्यक्षता में तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन 28–30 अक्तूबर 1983 को आयोजित किया गया जिसमें 6500 से अधिक प्रतिनिधियों ने भागीदारी की। चौथा विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरिशस की राजधानी पोर्टलुई में 2 से 4 दिसंबर, 1993 में आयोजित हुआ जिसका उद्घाटन मॉरिशस की तत्कालीन प्रधानमंत्री सर अनिरुद्ध जगन्नाथ ने किया और भारत से गए प्रतिनिधिमंडल के

नेता मधुकर राव चौधरी और उपनेता तत्कालीन गृह उपमंत्री रामलाल राही ने हिस्सा लिया। पाँचवा विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन त्रिनिदाद एवं टोबेगो की राजधानी पोर्टआफ स्पेन में 4 से 8 अप्रैल 1996 का उदघाटन त्रिनिदाद व टोबेको के तत्कालीन प्रधानमंत्री वासुदेव पांडे ने किया। इस आयोजन में भारत से 17 सदस्यीय प्रतिनिधिमंडल व अन्य देशों के 257 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। छठा विश्व हिंदी सम्मेलन लंदन 14 से 18 सितंबर 1999 में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में तत्कालीन विदेश मंत्री वसुंधरा राजे के नेतृत्व में भारतीय प्रतिनिधिमंडल ने भाग लिया। इस सम्मेलन का केंद्रीय विषय हिंदी और भावी पीढ़ी था। सूरीनाम की राजधानी पारामारीगो में 5 से 9 जून 2003 को सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में संकल्प लिया गया कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। आठवां विश्व हिंदी सम्मेलन 13 से 15 जुलाई 2007 में न्यूयार्क में आयोजित किया गया। 2012 में 22 से 24 सितंबर तक जोहान्सबर्ग में नौवां सम्मेलन आयोजित किया गया। दसवां विश्व हिंदी सम्मेलन 22 से 24 सितंबर 2015 को भारत में भोपाल में आयोजित किया गया। 11वां हिंदी सम्मेलन 18–20 अगस्त 2018 को मारीशस के पोर्टलुई में आयोजित किया गया। 12वां विश्व हिंदी सम्मेलन फीजी में फरवरी माह 2023 में आयोजित किया जा रहा है। कमोबेश सभी विश्व हिंदी सम्मेलनों में संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा का स्थान दिलवाने, अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी के प्रचार प्रसार की संभावना का पता लगाने, विदेशों में हिंदी के शिक्षण, हिंदी के प्रचार हेतु वेबसाइट की स्थापना तथा सूचना प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल एवं हिंदी के विश्वव्यापी स्वरूप को विकसित करने की महत्वपूर्ण अनुसंशाएँ और प्रस्ताव पारित किए गए।

हिंदी ने अपनी वैश्विकता के लिए संस्कृति, पालि, अपभ्रंश, प्राकृत जैसी भाषाओं के साथ अरबी, फारसी, तुर्की, यूनानी, पस्तो, डच, पुर्तगाली, अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, जर्मन, इटालवी जैसी अनेक भाषाओं से भारी मात्रा में शब्दावली ग्रहण की है। हिंदी को अपना विश्व रूप ग्रहण करने में अनुवाद, विदेशी विभूतियों के चरित्रांकन, अंतराष्ट्रीय परिदृश्य पर लेखन, विश्व पर्यटन, विषयक लेखक, विश्व सम्मेलनों, विश्व विचारधाराओं के अनुप्रवेश का महती योगदान रहा है।

यह समझना आवश्यक है कि भूमंडलीकरण केवल अमेरिका का नहीं है बल्कि इसमें चीन, जापान, कोरिया जैसे एशियाई देशों की भी अग्रणी भूमिका है। वर्तमान विश्व भाषाओं का क्षरण हो रहा है। अगणित छोटी भाषाएँ नष्ट होने के कगार पर है। ऐसे में हिंदी को जीवंत और वेगवान बनाने के लिए भाषा प्रौद्योगिकी और प्रबंधन के अभियान की अत्यंत आवश्यकता है। कंप्यूटर, लिंग्विस्टिक, मशीनसाधित अनुवाद, संदर्भ साहित्य, शब्दकोष, विश्व ज्ञान कोश, तुलनात्मक साहित्य, पाठालोपन, रोजगार परक प्रशिक्षण, स्तरीय अंवेषण आदि के अनुप्रयोग से हिंदी को विश्वभाषाओं के समक्ष प्रतिष्ठित किया जा सकता है। हमें अपनी आध्यात्मिक संपदा को पहचान कर उसे सही दिशा में इस्तेमाल करना होगा ताकि अतिभौतिकता से त्रस्त ग्रस्त अमेरिका, यूरोपीय जन हिंदी के उदात्त सर्वग्राही रूप के प्रति आकृष्ट हो। ऐसे में हमें भी अपनी वसुधैव कुटुंबकम की भावना से जुड़कर और अपने अंतर्विरोधों से मुक्त होकर उत्साहपूर्वक इस वैश्विक चरित्र को आत्मसात करते हुए युगधर्म का निर्वाह करना होगा।

❑❑❑

चरखा

सुएता दत्त चौधरी

कुछ देर आराम कर लो,
सफर लंबा है।

थोड़ी पेड़ की छाँव से लिपट जाओ,
जीना तो बस शुरू हुआ है।
एक तुम ही नहीं इस लेख में
तुमसे अच्छे, तुम से बुरे,
सफर तय किए हैं लोगों ने।
यह कैसा जाम है?
भाग–दौड़ के इस पागलपन ने छीन ली है
आपसे आपकी आलिशान जिंदगी
जिम्मेदारियों का बोझ इतना भारी होगा

कि आधे पेट सोना होगा,
आराम के वक़्त में
सफेद बालों और झुर्रियों को छिपाना होगा....
रहस्य जीवन का चरखा तो चलता रहेगा।
जो बुना है जीवन भर
उसे सफेद चादर को
अन्य लोगों द्वारा पहनना होगा....
बात तो कर्म करने की हुई थी,
उलझे हुए इस जीवन को
मोहमाया से सुलझाना होगा
कर्म पूरा होगा या नहीं बस करना होगा.....

❑❑❑

गोवर्धन उठा लो

सुएता दत्त चौधरी

पल भर में भय का बादल छाया
जो बनु रही थी सपने कभी
दरारें उमसें पड़ने लगी
आखिर मोड़ ऐसा क्यों आया
आखिर मोड़ ऐसा क्यों आया
कुदरत की ये कैसी माया?
कुदरत की ये कैसी माया?

महामारी का वार है भारी
टूटे है कुछ सपने
गम नहीं
जब करीब है अपने
थोड़े ग़म भी है कहीं
जब
कुछ घर पहुँचे नहीं अपने
कुछ घर पहुँचे नहीं अपने

रो रहे है सब
कहीं मौत का तांडव हो रहा
विनाश के भँवर में
तड़प रही प्रकृति
ना जाने कुसूर किसका है?
ना जाने कुसूर किसका है?

खून की आँसू रोती हूँ मैं
जब पीड़ित रोगियों को देखती हूँ
कभी कुंठा में सन जाती हूँ
जब बेशर्मो को थूकते देखती हूँ
जानबूझकर रोग फैलाते देखती हूँ
आखिर ये कैसा बैर है?
आखिर ये कैसा बैर है?
वसुधैव कुटुम्बकम् को अपनाओं दोस्तों
धर्म यही है
तीर्थ यही है
धर्म यही है
तीर्थ यही है

❑❑❑

'कमला प्रसाद मिश्र काव्य संचयन'
चयन एवं संपादनः 'सुरेश ऋतुपर्ण',
पुस्तक से साभार

फ़ीजी का एक लोकगीत

कमला प्रसाद मिश्र

(मूल–निवासियों के एक प्रसिद्ध लोकगीत का अनुवाद यह गीत उस समय बनाया गया था जब गोरे मूल निवासी युवकों को पकड़ कर उन्हें और देशों में ले जाकर बेच देते थे)

गए पिताजी कंद लगाने
गए पिताजी कंद लगाने
माता गई मछलियाँ लाने
माता गई मछलियाँ लाने
मैं था घूम रहा सेरेआ
मैं था घूम रहा सेरेआ
नौका तेज किनारे आई
नौका तेज किनारे आई
मुझको पकड़ लिया गोरों ने
मुझको पकड़ लिया गोरों ने

मुझको जकड़ दिया रस्सी में
मुझको जकड़ दिया रस्सी में
मुझको ठूँस दिया बोरे में
मुझको ठूँस दिया बोरे में
मुझको दूर कहीं ले जाते
मुझको दूर कहीं ले जाते
मैं तब फूट–फूट कर रोया
मैं तब फूट–फूट कर रोया
मैं अब विदा माँगता फ़ीजी।
मैं अब विदा माँगता फ़ीजी।

❑❑❑

नान्दी की संध्या

कमला प्रसाद मिश्र

मेरे मानस के तार! जगो
यह आई नान्दी की संध्या लेकर मोहक शृंगार, जगो
मेरे मानस के तार! जगो

यह रजत हास कर उठा चाँद
झड़ते किरणों के धवल फूल
है बिखर रही शत रश्मि–राशि
अब निखर रही है धूल फूल
कब से सोया निस्तब्ध अरे! मेरे मन के संसार! जगो
मेरे मानस के तार! जगो

हँस उठे नहा कर ज्योत्स्ना में
तरु तरु के कोमल पात पात
है आज बालुका स्वर्णमयी
सारी वसुधा है सुधा–स्नात
इस मधुर चाँदनी में खिलकर मेरे सुषुप्त उद्‌गार! उगो
मेरे मानस के तार! जगो

हँस रहा चंद्र नभ मंडल में
वह नवजीवन का उत्पादक
मोहक यह नान्दी की संध्या
यह नान्दी की संध्या मादक
लेकर आई है यह संध्या जागृति का नव–उपहार! जगो
मेरे मानस के तार! जगो

इस संध्या में जो मौन रहे
वह है योगी या वज्रहृदय
मैं तो दोनों से दूर अरे!
मुझको वसुधा से कैसा भय
ज्योत्स्ना छूते ही हृतंत्री कर उठी मधुर झनकार, जगो
मेरे मानस के तार! जगो

स्वाधीन चंद स्वाधीन सूर्य
नक्षत्र सभी बंधन–विहीन
इनके सुख को क्या समझेगा
जो है इस जग में पराधीन
है पराधीनता पाप यहाँ हे प्रलयंकर! जगो।
मेरे मानस के तार! जगो।

❑❑❑

यहाँ पहले सबेरा होता है

कमला प्रसाद मिश्र

यहाँ सूरज पहले निकलता है और दूर अँधेरा होता है
फ़ीजी फिरदोस है पसिफिक का यहाँ पहले सवेरा होता है

यहाँ दूर के राही आते हैं आरात यहाँ वे पाते हैं
यहाँ परदेसी सैलानी का दो रात बसेरा होता है

यहाँ मौसम मस्त सलौना है लहराता समुद्र का कोना है
कभी मस्त हवाएँ बहती हैं कभी बादल घिरा होता है

हर ओर गजब हरियाली है हर ओर छटा मतवाली है
यह फ़ीजी वही जिसमें हर माह बहार का फेरा होता है।

❑❑❑

पितृभूमि! प्रणाम

कमला प्रसाद मिश्र

आज है अंतिम दिवस
लो पितृभूमि! प्रणाम मेरा।

है तुम्हारा धूलि–कण भी
मधुर स्वर्ग ललाम मेरा।

भूल मैं जाऊँ जगत को
विश्व जाए भूल मुझको
किंतु मन में स्थिर रहेगी
पितृभूमि सुख मूल मुझको

स्वर्ग की छविराशि भी है
ज्ञात होती धूल मुझको
मुग्ध कर सकता नहीं
नंदन–विपिन का फूल मुझको

शूल भी उस पुण्य–जग का
है कुसुम अभिराम मेरा!
आज है अंतिम दिवस
लो पितृभूमि! प्रणाम मेरा।

मैं जहाँ शिक्षित हुआ
जिस गोद में अब तक पला था
मृत्यु भी होती उसी के नाम पर
कितना भला था

किंतु रे दुर्भाग्य कितना
विषम दुख था और सहना
जिस समय जलयान
भारत भूमि के तट से चला था

सिन्धु जल के साथ मानस
काँप उठा अविराम मेरा।
आज है अंतिम दिवस
पितृभूमि! प्रणाम मेरा।

जिस मनोहर पुण्य भू ने
ज्ञान पथ जग को दिखाया
जिस धरा के पूर्वजों ने
विश्व को मानव बनाया

दिव्य पावन–भूमि जो है
आज भी चिर–पूज्य जग का
जिस धरा के कुसुम–दल ने
मन–सुमन मेरा खिलाया

कर रहा अंतिम प्रणति उसकी
हृदय निष्काम मेरा।
आज है अंतिम दिवस लो
पितृभूमि! प्रणाम मेरा।

❑❑❑

मेरी भाषा

शैलजा सक्सेना

भाषा के आकाश में
अपने–अपने कोनों से उड़ाई सबने
अपनी–अपनी पसंद की पतंगें।
कोई चित्रलिपि में
कोई मंत्रों को लिए
कोई वाद्ययंत्रों सी ध्वनित होती हुई।
मेरी पतंग में कई रंग थे
कई उगते सूरजों की ऊष्मावान रश्मियाँ
कई डूबते सूरजों की लालिमा
कई घाटों के विविधरंगी नीर छलकते थे
उससे
इतने रंग थे उसमें
कि वह पतंग नहीं रह गई
स्वयं आकाश हो गई
मेरे हिस्से का और मेरे जैसे एक अरब से भी
ऊपर के लोगों का आकाश!

हम इस आकाश के तले,
गेहूँ की बालियों पर कविताएँ लिखते
और ज़मीन में अपनी कल्पनाओं के बीज बोते।
हवाओं के पंखों पर
तितलियों के परों जैसे चमकीले गीत लिखते
और जंगलों में ऋचाओं से गूँजने लगते।

इस आकाश तले
हमने शुरू की बनानी वो सड़क जो
साहित्य और जीवन तक जाती है।
हम कूटते हैं
अपने विचारों, तर्कों की ईंटे
और डालते हैं इस पर अपनी मानवीय संवेदना
का तारकोल
हम सदियों से बढ़ाते जा रहे हैं यह सड़क
और शामिल करते जा रहे हैं हर
पीछे छूट गये आदमी की पीड़ा को,
हम समेटते चले जाते हैं
हर दृश्य के सौंदर्य को अपनी इस सड़क में।

आकाश के इस कोने के नीचे
संस्कृति के अविरल बहते सागर से
हमने जाने कितने ही
दर्शनों के मुक्ता–माणिक निकाले
और पाया जीवन का,
जीवन को कहने का– सौंदर्य।

फिर हम गाने लगे इस सुन्दरता को
अनुभव करने लगे शिवम को
सुनने लगे सत्य को।
हम इसी भाषा में प्यार करते हैं,
लड़ते हैं, बहसते हैं, गाते हैं, लगातार हँसते
चले जाते है

हम अपने को ढूँढ़ने इसी भाषा में उतरते हैं
गहरे!
मैं देख रही हूँ
मेरी भाषा का आकाश फैल रहा है
कई सागरों, पर्वतों जंगलों को ढ़के हुए
लगातार फैल रहा है
मैं खुश हूँ
कि मैं भी उसके हज़ारों रंगों में घुली
उसकी हवाओं की खुश्बू सी
हो गई हूँ
जिसके इस छोर के पद्य से
उस छोर के गद्य तक फैल रही है
एक व्यापक मानवीय संवेदना!

वसुधैव कुटुम्बकम् सी,
जीवन की ऊष्मा की भाषा
ही है मेरी भाषा!

❑❑❑

ग्रीष्म के उजले लंबे दिन

सुरेशचंद्र शुक्ल

ग्रीष्म के बड़े उजले लंबे सुहावने,
शीतल मधुर बयार से गुनगुने
जुलाई के दिन।

चार दशकों तक
ओस्लो में करते रहे
लखनऊ की मेहमाननेवाजी।
यादों में हवा सी फैली खुशबू,
शीतलता में घाम,

ओस्लो को बना लिया
बनारस की सुबह और लखनऊ की शाम।
तुम भी कभी आना, ओस्लो! हमारे धाम,
अनजाने प्रतीक्षित हैं सुबह और शाम
त्रोम्सो में अर्धरात्रि का सूरज।

ओस्लो में जो मिली इब्सेन की नूरा;
वह राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली में आयी दिखी।
डाल्स हाउस कहें या गुड़िया का घर
जिसका किया मैंने अनुवाद/रूपांतरण।

गर्म मई में नाटक देखने उमड़ी थी,
युवाओं की भीड़, जो है देश की रीढ़।
ओस्लो; जहाँ मिलेगा
छोटा भारत,
गंगा से ग्लोमा तक का सफर।
सरहदों के पार बसी हैं
साढ़े तीन करोड़ लोगों में
भारत की मिट्टी की खुशबू।

ओस्लो जहाँ लॉकडाउन और
मिट्टी के देवता के लेखक
सृजन की पृष्ठभूमि।

34 वर्ष पहले राजदूत हरदेव भल्ला ने
शरद आलोक संग रखी थी
हिंदी–नार्वेजीय भाषा की नींव/आधारशिला
स्पाइल–दर्पण एवं वैश्विक पत्रिकाएँ
बन रही विदेशों (नार्वे) में
भारतीय और स्कैंन्डिनेवियाई संस्कृति का सेतु।

जहाँ सदा पीछा करेगी,
अपनी परछाई, जैसे धूप और छाँव।
तुम रखना कभी मेरे द्वारे पाँव।

❑❑❑

फ़ीजी के हिंदी सेवी डॉ. बृज लाल से वरिष्ठ पत्रकार सुनंदा वर्मा की अंतरंग बातचीत

सुनंदा वर्मा

भारतीय मूल के गिरमिटिया वंशज डॉ. बृज लाल फ़ीजी के वरिष्ठ राजनीतिज्ञ और प्रभावी सांसद हैं। वे फ़ीजियन समुदाय और भारतीय समुदाय के बीच सौमनस्य बढ़ाने के लिए निरंतर प्रयत्नशील एक सेतु की तरह हैं। फ़ीजी में भारतीयों के साथ बढ़ते हुए भेदभाव के मूल में वे बढ़ता सामाजिक असंतुलन देखते हैं जो फीजियन मूल के मध्य भारतीयों के हर विकास को संदेह की दृष्टि से देखता है। डॉ. लाल दोनों जातीय समुदाय के सामाजिक संतुलन में ही फ़ीजी का और हिंदी का विकास देखते हैं। डॉ. बृज लाल ने वरिष्ठ पत्रकार सुनंदा वर्मा से एक अंतरंग बातचीत में फ़ीजी में हिंदी पर चर्चा की।

सुनंदा वर्मा : आपका फ़ीजी से क्या संबंध है? आप फ़ीजी से कैसे और कब से जुड़े हुए हैं?

डॉ. बृज लाल : आज से चौंसठ साल पहले मेरा जन्म फ़ीजी में हुआ था। मेरे माता–पिता का जन्म भी फ़ीजी में हुआ था। मेरे बाबा स्वर्गीय खंजन गिरमिटिया थे। वे फ़ीजी वर्ष 1906 में आए। वे कलकत्ते से 6 मई, 1906 को चले और फ़ीजी (सुवा) 28 जून, 1906 को, चौंतीस दिन की यात्रा के बाद लंबासा पहुँचे। लंबासा में गन्ने के खेतों में काम करने से पहले उन्हें दो सप्ताह के लिए क्वारंटाइन में रहना पड़ा। गिरमिट की अपनी दस वर्ष की अवधि पूरा करने के बाद वनुआलेवु द्वीप के बुआ में हम बस गए जहाँ मेरे पिता उनके चार भाईयों और दो बहनों का जन्म हुआ।

मैं तीसरी पीढ़ी तथा मेरे बच्चे चौथी पीढ़ी और उनके बच्चे पाँचवी पीढ़ी के गिरमिटिया वंशज हैं। मैं यहाँ पिछले चौसठ वर्षों से रह रहा हूँ और यहाँ की जलवायु, जन समाज, सांस्कृतिक विरासत और यहाँ के परिवेश का आनंद उठा रहा हूँ। मैं यहाँ से बाहर जाकर बसने की भी नहीं सोच रहा हूँ।

मेरे पिता की यह इच्छा थी कि उनके एक या और बच्चे कभी भारत घूमने जाएँ। जहाँ से उनके परबाबा आए थे। मैं भारत चार बार गया और उस जगह भी पहुँचा जहाँ मेरे परबाबा रहते थे। मैंने वहाँ से अनेक सूचनाएँ जमा की और उन सबको अपनी पुस्तक 'फॉरगॉटन स्ट्रगलस् ऑफ फ़ीजी गिरमिट' में छापा भी है।

सुनंदा वर्मा : अपने परिवार के बारे में थोड़ा विस्तार से बताएँ। आपके पूर्वज गिरमिट प्रथा के अंतर्गत फ़ीजी कब आए थे, कैसे आए थे, कहाँ से आए थे?

डॉ. बृज लाल : मेरे परबाबा जी खंजन उत्तर प्रदेश के हरदोई जिले के अरंगपुर गाँव के थे। वे 22 फरवरी, 1881 को अरंगपुर, हरदोई, लखनऊ, उत्तर प्रदेश में पैदा हुए थे। वहाँ के थाने का नाम बघूली था। उनकी जाति किसान लिखी हुई है जिसका अर्थ है कि वे खेती करते थे। वे कभी स्कूल नहीं गए। वे किसान थे, सब्जी और फल की खेती करते थे और बाद में जब गन्ने की खेती शुरू हुई तो

वह अपने दूसरे भाई बलदेव के साथ मिलकर गन्ना उगाने लगे।

बाद में वे सप्ताह में एक दिन गन्ने का रस निकालने वाले कारखाने में काम करने लगे। लोग सामान खरीदते पर पैसा नहीं दे पाते, फिर आर्थिक समस्या सामने आने लगी और तब परेशान होकर उन्होंने नौकरी खोजनी शुरू की।

एक शाम एक स्मार्ट आदमी दुकान पर आया और वहाँ जो पाँच लोग खड़े हुए थे उनसे बात करने लगा। उनमें से पाँच को उसने अच्छी तनख्वाह वाली नौकरी के लिए फ़ीजी जाने को मना लिया। उसने बताया कि फ़ीजी में उन्हें चीनी की सफाई करनी होगी। जो तीन लोग तैयार हुए वे उसके साथ चल दिए। इन तीन लोगों में से एक मेरे परबाबा खंजन जी थे।

27 अप्रैल 1906 को मेरे परबाबा को लखनऊ के डिपो नंबर 1902 में ले जाया गया। वे बस से वहाँ ले जाए गए। डिपो में वहाँ उन्हें और भी कई आदमी मिले और वे उनके साथ हो लिए और उनमें से कोई भी यह नहीं जानता था कि उन्हें उनकी किस्मत कहाँ ले जा रही है। कुछ दिनों के बाद औरों के साथ उन्हें रात की गाड़ी से कलकत्ता के गार्डन रीच ले जाया गया।

वहाँ पहुँचने पर उन्होंने लोगों को दो पंक्तियों में खड़े देखा। एक पंक्ति पुरुषों की थी और दूसरी महिलाओं की। पुरुष स्त्रियों से अधिक थे। उन्होंने देखा कि कुछ लोग खाना बना रहे थे। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अलग–अलग जाति के लोग एक ही बर्तन से खाना खा रहे थे, पानी पी रहे थे। उन्हें एक नंबर दिया गया जो 33060 था। उन्हें वर्धा–1 जहाज़ में बिठा दिया गया जो फ़ीजी जा रहा था और उसमें 834 यात्री थे।

मेरे पिता स्वर्गीय गनपत जी, जो मेरे परबाबा खंजन जी के सबसे बड़े बेटे थे उन्होंने बताया कि अरंगपुर गाँव में जीवन बहुत कठिन था क्योंकि परिवार बहुत गरीब था। उन्हें सप्ताह में केवल एक दिन का काम मिला था। सभी सब्जियाँ उगा रहे थे इसलिए उनको बेचना मुश्किल था। जो छोटी सी दुकान थी वह भी नहीं चलती थी क्योंकि लोग सामान तो ले जाते थे पर दाम भी नहीं चुकाते थे। जीना मुश्किल था इसलिए दोनों भाई, खंजन और बलदेव ने शादी भी नहीं की। उनकी उम्र बीस साल हो गई थी और गाँव में लोग उन्हें निठल्ला कहकर उनको शर्मिंदा करते थे। आरकाटी ने उनसे वादा किया था कि वहाँ उन्हें अच्छा वेतन मिलेगा, काम आसान होगा, काम केवल सात घंटे ही करना होगा और इसके साथ ही खाने का राशन भी उन्हें दिया जाएँगा। उन्हें यह भी बताया गया था कि नाव से कुछ ही घंटो में वे फ़ीजी पहुँच जाएँगे। उन्हें लगा कि पैसा कमाने का यह अच्छा मौक़ा है। वे घर पैसा भेज सकेंगें और सर पर चढ़ा हुआ उधार भी उतर जाएगा।

वे फ़ीजी 1906 में पहुँचे और पाँच साल लंबासा के वाईलेवु में काम किया। उन्हें एक बड़ा नाला खोदने का काम दिया जिससे समुद्र के पानी को गन्ने के खेतों में आने से रोका जा सके। पाँच साल की अवधि पूरी होने पर उन्होंने तय किया कि वे और पाँच साल काम करेंगे। इस बार उन्हें नादूरी के मतानिसेवाना भेजा गया जहाँ ज़मीन बड़ी सपाट थी और वहाँ गन्ने की खेती के लिए ज़मीन तैयार की जा रही थी। यहाँ भी समस्या वही थी कि समुद्र का पानी खेतों में भर जाता था और फसल खराब हो जाती थी। इस बार उन्हें समुद्र के पानी को रोकने के लिए आठ से दस मील लंबी एक दीवार बनानी थी। उन्हें बड़े–बड़े पत्थर पास के पहाड़ों से लाकर जगह को मिट्टी, बालू से भरना होता था। यह समुद्री दीवार आज भी दिखाई देती है।

इन पाँच सालों को पूरा कर उन्होंने पूरी कोशिश की कि गोरों के बंधन से किसी प्रकार मुक्ति मिले। कुछ सोचकर बुआ से सत्तर मील

की यात्रा कर वे बतुबोगी में जाकर बसे। उन्होंने चावल की खेती शुरू की और साथ ही तंबाकू की भी। उन्होंने शादी की और उनके पाँच बेटे और दो बेटियाँ हुईं। उनके बड़े बेटे मेरे पिता गणपत जी थे।

मेरे परबाबा खंजन को 26 फ़रवरी, 1924 को फ़ीजी की नागरिकता मिली।

सुनंदा वर्मा : आपके पिता और दादा की भाषा क्या थी? उनके कुछ अनुभव बताएँ। उनके अनुभव का क्या आप पर कुछ असर हुआ? कैसे?

डॉ. बृज लाल : मेरे पिता अपनी जन्मभूमि हरदोई की हिंदी बोलते थे जो संभवतः अवधी थी।

जो भारतीय फ़ीजी आए वे भारत के अलग–अलग क्षेत्रों से आए वे सभी अपने ढंग की हिंदी बोलते थे पर सब लोग आपस में एक दूसरे को अधिक अच्छी तरह समझ सकें इसलिए एक नई फ़ीजी हिंदी का जन्म हुआ जो भारत की हिंदी के विविध रूपों का मिश्रण है और उसमें फ़ीजी की आई ताउ केइ, अंग्रेज़ी तथा अन्य भाषाओं के भी शब्द हैं। जो हिंदी फ़ीजी में बोली जाती है वह फ़ीजी हिंदी है पर परिनिष्ठित मानक हिंदी भी यहाँ स्कूल में पढ़ाई जाती है।

मेरे माता–पिता फ़ीजी हिंदी बोलते थे और मैं फ़ीजी हिंदी और मानक हिंदी दोनों बोलता हूँ। हमारी हिंदी लगभग उसी प्रकार की है जैसी तुलसी की रामायण की है। यह धार्मिक पुस्तक फ़ीजी के सभी हिंदू परिवारों में मिलेगी।

चूँकि मैं तीसरी गिरमिटिया पीढ़ी का हूँ इसलिए हमें फ़ीजी हिंदी में बातचीत करना आसान लगता है। औपचारिक कार्यक्रमों में लोग उस हिंदी का प्रयोग करते हैं जो स्कूल में उन्होंने सीखी है।

मेरे पिता कभी स्कूल नहीं गए क्योंकि उस समय बुआ में कोई स्कूल नहीं था। यद्यपि वे निरक्षर थे पर उन्होंने कुछ हिंदी लिखनी सीखी थी। वे अपना नाम हिंदी में लिख सकते थे। उनका हिंदी पर अच्छा अधिकार था और वह हमारे गाँव के प्रमुख थे। मैंने उन्हें विवाह, मृत्यु, सभा, गाँव के उत्सवों और कार्यक्रमों में भाषण देते हुए सुना है। अपनी खेती बारी के संबंध में, गाँव के विकास, धार्मिक कार्यक्रम और अपने गाँव में विद्यालय खुलने के अवसर पर (जिसके वे प्रमुख सदस्य थे) स्थानीय रेडियो स्टेशन पर प्रसारण के लिए उनका साक्षात्कार लिया गया और उनकी कई वार्ताएँ प्रसारित हुईं।

स्कूल 1949 में बनकर तैयार हुआ और इसमें मेरे पिता की बड़ी भूमिका थी। उन्होंने आदमियों को जमा किया जिन्होंने पेड़ काटे, पेड़ के कुंदों को स्कूल की जगह तक बैलगाड़ी की सहायता से घसीट कर लाए, दीवार बनाने के लिए बाँस जमा किए जिससे फूस की छत बन सके। आज बाऊ में वह वुनिवाऊ इंडियन स्कूल है। मैं इसी स्कूल का पुराना छात्र हूँ और इस स्कूल में मैंने पाँच साल पढ़ाया भी है (1978–1981)।

बुआ सेंट्रल कॉलेज, कोबोई सनातन स्कूल तथा नैकावाकी कॉलेज के निर्माण में भी मेरे पिता की बड़ी भूमिका रही है। उन्हें हमेशा यह लगता रहा कि उनकी पीढ़ी तो निरक्षर रही पर आगे के सारे बच्चे पढ़े–लिखे होंगे।

आज फ़ीजी की साक्षरता 97 प्रतिशत है।

सुनंदा वर्मा : आजकल आप कहाँ रह रहे हैं? और क्या कर रहे हैं?

डॉ. बृज लाल : मेरा जन्म वुनिवाऊ बुआ में हुआ। प्राथमिक, माध्यमिक और विश्व विद्यालयी शिक्षा के बाद मैं एक स्कूल में अध्यापक बन गया और मेरी नियुक्ति मेरे अपने ही गाँव के स्कूल में हो गई। मैंने अपने वुनिवाऊ भारतीय स्कूल में वर्ष 1978 से 1981 तक पढ़ाया। इसके बाद मेरा तबादला वाईलेवू, लंबासा के संत आगस्टीन गवर्नमेंट स्कूल में हो गया और यहाँ मैंने सन् 1982–1988 तक पढ़ाया। इसके बाद सेकांगा के कोरोतोलूतोलु प्राइमरी स्कूल में हो गया। वहाँ मैं 1989–1990

तक प्रधानाध्यापक रहा। सन् 1990 में मैं तीन महीने के लिए लंबासा कॉलेज में रहा और 11–12 वीं कक्षा को मैंने भूगोल पढ़ाया।

वर्ष 1990 के अप्रैल माह में मेरी शिक्षा अधिकारी (मदुअता/बुआ) के रूप में पदोन्नति हुई। 1993 में मेरी पदोन्नति वरिष्ठ शिक्षा अधिकारी (दकाऊड्रोव) के रूप में हो गई। मई 1994 में मेरा तबादला फिर मदुअता/बुआ में हो गया और 1999 में मेरी नियुक्ति लौतोका/यशावा में हो गई।

वर्ष 2004 में मैंने AusAid फ़ीजी शिक्षा संभाग कार्यक्रम के आधीन फ़ीजी प्रोग्राम मैनेजर का दायित्व तीन वर्षों के लिए ले लिया। डिविज़नल एजुकेशन ऑफिसर उत्तर, के रूप में मेरी पदोन्नति वर्ष 2008 में हुई और वर्ष 2009 में मेरी पदोन्नति डिविज़नल एजुकेशन ऑफिसर, पश्चिम के रूप में हुई। वर्ष 2009 में मैं प्राथमिक शिक्षा निदेशक के रूप में स्थित शिक्षा मंत्रालय के प्रधान कार्यालय में आ गया। वर्ष 2010 में मेरी पदोन्नति हुई और मुझे डिप्टी सेक्रेटरी शिक्षा के रूप में प्राथमिक, माध्यमिक और एसेट मॉनीटरिंग यूनिट और फ़ीजी टीचर रजिस्ट्रेशन बोर्ड का दायित्व सौंपा गया। वर्ष 2011 में परमानेंट सेक्रेटरी शिक्षा के रूप में मेरी नियुक्ति हुई। नेशनल हेरिटेज, कल्चर, आर्ट्स, यूथ एंड स्पोर्ट्स का दायित्व भी मुझे दिया गया।

वर्ष 2014 के मई महीने में मैंने फ़ीजी फर्स्ट पार्टी के नेतृत्व में फ़ीजी नेशनल चुनाव लड़ने के लिए परमानेंट सेक्रेटरी के पद से त्यागपत्र दे दिया। मैं चुनाव में जीत गया और वर्ष 2014 से 2018 के बीच में फ़ीजी की संसद का सदस्य भी रहा। अब मैं सेवानिवृत्त हूँ और सूवा में तमावुआ में अपने घर में रह रहा हूँ।

आज जहाँ मैं अपने 20 महीने के पोते के साथ अपना अधिक समय बिताता हूँ वहीं लिखने के लिए अपनी मासिक पत्रिका 'बुलारे' के लिए भी समय निकालता हूँ, डिप्टी चीफस्काउट ऑफ़ फ़ीजी होने से स्काउटिंग गतिविधियों में भाग लेता हूँ। धर्मार्थ संस्थाओं, धार्मिक गतिविधियों और धर्मार्थ संस्थाओं के कार्यों में उनका हाथ बटाता हूँ। वर्ष में कम से कम दो बार मैं देश की यात्रा करता हूँ, पुराने दोस्तों से मिलता हूँ, साथियों से मिलता हूँ और अपने युवा साथियों को धार्मिक गतिविधियों, प्रार्थना सभा में भाग लेने के लिए प्रेरित करता हूँ, गाता हूँ, वाद्य बजाता हूँ और नैतिक शिक्षा कार्यक्रम में भाग लेता हूँ।

सुनंदा वर्मा : आपकी व्यक्तिगत रुचि किस क्षेत्र में है और उसके लिए आप क्या कर रहे हैं ?

डॉ. बृज लाल : मेरी रुचियाँ कई हैं– पढ़ना–लिखना, गाने–बनाना और गाना, स्काउटिंग और स्कॉउट प्रशिक्षण, घोड़ा चलाना, मछली पकड़ना, लोगों से मिलना–जुलना और यात्रा करना।

व्यक्तिगत स्तर पर मैं कह सकता हूँ कि मेरा लक्ष्य ब्रिज सेतु निर्माण है।

मिशन सभी का स्नेह और सम्मान के साथ सेवा, आदर्श नेतृत्व का निर्माण है। मैं प्रकृति से हमेशा आशावादी रहा हूँ।

मेरा सुविचार है कि जीवन बहुत छोटा है, आज को अंतिम दिन के रूप में समझो और अपनी ओर से जो सबसे अच्छा हो सके वह करो।

ब्रिज का प्रबंधन सिद्धांत है कि सभी सब कर सकते हैं।

मेरी हॉबी और रुचियाँ

मैं इनके लिए समय निकलता हूँ, भाग लेता हूँ। जहाँ भी संभव होता है मैं अपने विचार और अपनी दृष्टि लोगों से साझा करता हूँ। मैं खूब पढ़ता हूँ, कम से कम दो–तीन घंटे, अपनी सोच हमेशा सकारात्मक रखता हूँ।

सुनंदा वर्मा: फ़ीजी में प्रवासी भारतीय अपनी संस्कृति, भाषा, रहन–सहन, वेशभूषा, आचार–विचार, आस्था व विश्वास, जीवन मूल्य को कितना सुरक्षित रख सकें हैं? आपकी राय क्या है?

डॉ. बृज लाल: औसतन हम अपनी भाषा, संस्कृति, धर्म, जीवनमूल्यों आदि की

लगभग 90 प्रतिशत सफलतापूर्वक रक्षा कर सके हैं। हमारे यहाँ के भारतीय मूल के हिंदू, सिख, ईसाई, दक्षिण भारतीय, मुसलमान सभी हैं। सबके अपने गिरजाघर/मंदिर हैं सब साथ–साथ रहते हैं और अपनी प्रर्थानाएँ आदि करते हैं।

इसमें कोई विवाद नहीं कि हमारी नई पीढ़ी में अंग्रेजी भाषा को लेकर थोड़ा बदलाव ज़रूर आ रहा है, उनके कपड़े पहनने के तौर तरीकों में अंतर आ रहा है। मैं अपनी फ़ीजी सरकार को धन्यवाद देना चाहता हूँ कि हमारी सरकार ने भारतीय बच्चों के लिए स्कूल में हिंदी पढ़ना अनिवार्य कर दिया है।

अगर आप फ़ीजी के ग्रामीण अंचल में जाएँ तो देखेंगे कि युवा पीढ़ी धार्मिक पुस्तक पढ़ने में, संगीत वाद्य बजाने में, भजन गाने में, कीर्तन में बड़ी रुचि लेती है तथा अपने बड़ों और अपने माता–पिता को पूर्ण सम्मान देती है। जो बदलाव आ रहा है वह शहरी क्षेत्रों में है, यहाँ की युवा पीढ़ी टीवी से चिपकी रहती है, फोन से और एयर आई पैड से।

यहाँ हर एक का अपना धर्म है और वह उसका पालन भी करता है। हमारे विद्यालयों में कक्षा एक से तेरह तक के छात्रों के लिए नैतिक शिक्षा की कक्षाएँ होती हैं।

सुनंदा वर्मा : फ़ीजी में भारतीय किन भारतीय उत्सवों को मनाते हैं? सरकारी स्तर पर उनकी क्या मान्यता है?

डॉ. बृज लाल : फ़ीजी में निम्नलिखित अवसरों पर राष्ट्रीय अवकाश होता है–

मुसलमानों के लिए पैगंबर मुहम्मद का जन्मदिवस, हिंदुओं के लिए दिवाली तथा ईसाइयों के लिए ईस्टर।

सभी हिंदू स्कूलों में होली और राम नवमी को, मुस्लिम स्कूलों में ईद –उल –फितर तथा ईद–उल अजहा को तथा ईसाई स्कूल भी किन्हीं दो दिन अवकाश तय करके शिक्षा मंत्रालय को सूचित कर सकते हैं।

सभी धर्मों को अपने धार्मिक उत्सव मनाने की पूरी छूट है।

हिंदू महा शिवरात्रि, रामनवमी, रक्षा बंधन, कृष्णजन्माष्टमी, गणेश चतुर्थी, पितृपक्ष, नवरात्रि और दिवाली मनाते हैं।

सरकार ने हर एक प्रमुख जाति के लिए राष्ट्रीय अवकाश की घोषणा की है। सभी धर्म आधारित संस्थाओं को अपने द्वारा चलाए जाने वाले विद्यालयों में अपनी प्रार्थना सभाएँ तथा उत्सव मनाने की छूट है।

सुनंदा वर्मा : फ़ीजी में भारतीय फिल्मों की हिंदी के प्रचार–प्रसार में क्या भूमिका है?

डॉ. बृज लाल : हिंदी के प्रचार–प्रसार में भारतीय सिनेमा की बड़ी भूमिका है क्योंकि फ़ीजी में बसे हुए भारतीयों में 90 प्रतिशत व्यक्ति फिल्म देखते हैं। एक उपन्यास पढ़ने से अधिक लोग फिल्म देखना पसंद करते हैं। चूँकि फिल्म में व्यक्ति सक्रिय और क्रियाशील रूप में दिखता है इसलिए उसे समझना, उसका अनुसरण करना या उसकी नकल करना अधिक आसान है।

आजकल 70 प्रतिशत से अधिक लोगों के घरों में बिजली है और बाकी लोगों के पास सोलर पावर या जनरेटर हैं। यहाँ तक कि दूर दराज़ के गाँवों के भारतीय घरों में आप जाएँ तो वहाँ भी आपको टेलीविज़न दिखेगा। बच्चे बड़ों से ज़्यादा फिल्मों के अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के नाम जानते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में फिल्में ही सबसे बड़ा मनोरंजन का साधन है और शाम को लोग कावा के एक गिलास के साथ फिल्में देखने के लिए जमा होते हैं।

धार्मिक–फिल्में धार्मिक जानकारियाँ देती हैं, जीवन–मूल्यों, पारस्परिक सम्मान और परंपराओं के बारे में बताती हैं। यह हर समाज के लिए अच्छा है। हमें अपनी भाषा के प्रयोग के बारे में आधुनिक जीवन में सजग भी रहना चाहिए।

सुनंदा वर्मा : हिंदी के प्रचार और विकास के लिए किए गए अपने प्रयत्नों का विस्तार से उल्लेख करें।

डॉ. बृज लाल : स्कूल के दिनों से ही हिंदी के प्रचार–प्रसार में मेरी विशेष रुचि रही है।

अ) मेरे पिता अच्छी हिंदी बोलते थे और गाँव के स्कूल के 65 वर्षों तक अध्यक्ष रहे। जब भी स्कूल में कोई कार्यक्रम होता हमेशा ही उनका भाषण होता था। इससे मुझे बहुत प्रोत्साहन मिलता था।

आ) हमारे स्कूल में विविध विषयों पर वाद–विवाद प्रतियोगिताएँ होती थीं और मुझे बोलने के लिए चुना जाता था। इससे मुझे अपनी हिंदी सुधारने में बहुत मदद मिली।

इ) जब भी गाँव के मंदिर में साप्ताहिक धार्मिक कार्यक्रम होते, मैं वहाँ उपस्थित रहता और मुझे बोलने के लिए कहा जाता। इससे मेरा आत्मविश्वास बढ़ा।

हाई स्कूल में मैं क्लास प्रीफेक्ट हुआ करता था इसलिए हिंदी का कोई भी कार्यक्रम हो उसमें भाग लेता था।

1976–1977 में प्राथमिक कक्षा के अध्यापक के लिए नसीनू टीचर्स कॉलेज में मैंने प्रशिक्षण लिया। यहाँ हमने हिंदी व्याकरण सीखी, कई हिंदी की किताबें पढ़ीं, भाषण प्रतियोगिता, वाद–विवाद प्रतियोगिता, धार्मिक कार्यक्रमों और अन्य कार्यक्रमों में भाग लिया। हमारे हिंदी अध्यापक कासी राम जी हिंदी के बहुत अच्छे ज्ञाता थे। मुझे याद है कि एक बार कक्षा कार्य में मुझे एक छोटी कहानी लिखने को दी गई थी। (सरदार जी छुरी के छेद धर पर खड़ा रहा।) काशी राम जी ने वह कहानी कक्षा को तीन बार पढ़ कर सुनाई। यह घटना मेरे लिए सबसे अधिक प्रेरक रही।

एक अध्यापक के रूप में जब विभिन्न गाँव के स्कूलों में बदली होती थी, लोग आपको बड़े सम्मान और बड़ी उम्मीद से आपकी ओर देखते थे। गाँव के सभी कार्यक्रमों जैसे– विवाह, घर में पूजन, मृत्यु, धार्मिक–कार्यक्रम और गोष्ठियों आदि में हमें बुलाया जाता और बोलने को कहा जाता गाँव के सभी कार्यक्रमों में हमें बुलाया जाता और बोलने को कहा जाता। (विवाह, घर में पूजन, मृत्यु, धार्मिक कार्यक्रम और गोष्ठियों आदि में।)

जब मैं सैंट आगुस्तिन सरकारी स्कूल में पढ़ा रहा था शिक्षा मंत्रालय ने फ़ीजी इंटरमीडिएट एग्जामिनेशन और फ़ीजी ऐथ इयर एग्जामिनेशन की छठी और आठवीं कक्षा की कापियाँ जाँचने के लिए आदेश दिया। इससे मेरा अनुभव बढ़ा, अधिक ज्ञान बढ़ा और साथ ही मेरा मनोबल भी बढ़ा।

अध्यापक और शिक्षा अधिकारी के रूप में मैंने देखा कि बहुत से माता–पिता अपने बच्चों को हिंदी पढ़ने के लिए हतोत्साहित करते हैं। मैं हमेशा उनसे बहस करता कि उन्हें हिंदी पढ़नी चाहिए क्योंकि आपकी पहचान आपकी भाषा और आपकी परंपराओं से ही होती है।

जब मैं शिक्षा मंत्रालय में परमानेंट सेक्रेटरी बना तो मैंने स्कूल के प्रधानअध्यापकों को परिपत्र भेजे कि यह ध्यान रखा जाए कि सभी भाषाएँ पढ़ाई जाएँ मैं व्यक्तिगत रूप से पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तकें तथा परीक्षा के प्रश्न–पत्रों की जाँच करता, यह देखने के लिए कि निर्धारित निर्देशों का पालन हो रहा है कि नहीं।

अब अपने सेवानिवृत्त जीवन में मैं यही कर सकता हूँ।

मैं साप्ताहिक रामायण प्रवचन में जाता हूँ। जहाँ हम साथ मिलकर कीर्तन कर सकते हैं, इससे जवान बच्चों को प्रोत्साहन मिलता है।

सुनंदा वर्मा : आपने फ़ीजी में सरकारी और गैर सरकारी पदों पर रहते हुए हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए बहुत कार्य किया है, विस्तार से बताएँ। आप इस काम से कब और कैसे जुड़े। हिंदी में काम करने की प्रेरणा तब क्या थी और अब क्या है?

डॉ. बृज लाल : मुझे हिंदी के प्रचार–प्रसार की प्रेरणा निम्न माध्यमों से मिली– माता–पिता से, अपने अध्यापकों से, धार्मिक

नेताओं से, प्रधानाध्यापक से, शिक्षा–अधिकारी और परमानेंट सेक्रेटरी के व्यावसायिक पदों से, गाँव प्रमुखों, वरिष्ठ साथियों, सुपरवाईजर्स तथा पारिवारिक मित्रों से।

परिस्थितियाँ जिन्होंने मुझे प्रेरित किया –

i. अकेलापन, जब आप दूसरे भारतीय से हिंदी में बात न कर सकें। एक बार मैं हांगकांग से फ़ीजी जा रहा था। हवाई जहाज़ में मेरे साथ एक भारतीय बैठे थे, वे चेन्नई के थे– वे तमिल, तेलुगु और अंग्रेज़ी बोल सकते थे। मैं हिंदी अंग्रेजी और फ़ीजियन बोलता था। हम दोनों ही भारतीय थे और दस घंटे की लंबी हवाई यात्रा में बराबर अंग्रेज़ी में ही बात कर रहे थे।

ii. जब ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड और अमरीका अपने दोस्तों और परिवार के लोगों से मिलने जाता हूँ और मुझे बताया जाता है कि उनके बच्चे हिंदी नहीं समझ पाते हैं और न ही बोल पाते हैं। यह जानकर मुझे बहुत बड़ा धक्का लगा।

iii. हमें हिंदी बोलने में किसी प्रकार की शर्म का अनुभव नहीं होना चाहिए बल्कि गर्व का अनुभव होना चाहिए।

सुनंदा वर्मा : हिंदी तथा भारतीय संस्कृति के फ़ीजी में प्रचार–प्रसार के लिए किए गए प्रयत्नों के लिए मिले हुए सम्मानों और पुरस्कारों के उल्लेख भी करें।

डॉ. बृज लाल : सच तो यह है कि मुझे हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए कभी कोई सम्मान या पुरस्कार नहीं मिला है। मैं चुपचाप अपने काम में लगा हुआ हूँ जो मेरा कर्तव्य है। मैंने पुरस्कार के लिए कभी काम नहीं किया।

सुनंदा वर्मा : फ़ीजी में कौन–कौन सी सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक संस्थाएँ है जिनके माध्यम से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में हिंदी का प्रचार–प्रसार हो रहा है? वे किस रूप में हिंदी को प्रोत्साहन दे रही हैं?

डॉ. बृज लाल : फ़ीजी में हिंदी के प्रचार–प्रसार को बढ़ावा देने वाली अनेक संस्थाएँ हैं।

1. शिक्षा–मंत्रालय जिसका कक्षा एक से लेकर कक्षा तेरह तक अपना हिंदी का पाठ्यक्रम है वे यह ध्यान रखते हैं कि स्कूल में हिंदी पढ़ाने वाले अध्यापक हों और हिंदी की परीक्षा हो।

2. विश्वविद्यालय और शिक्षक–प्रशिक्षण कॉलेज : उनका दायित्व है कि प्राथमिक कक्षा के प्रशिक्षित अध्यापक कम से कम एक भाषा हिंदी, उर्दू, तमिल, गुरुमुखी, आई ई, ताऊ के –रोतुमन आदि पढ़ा सकें।

3. फ़ीजी इंस्टिट्यूट ऑफ़ एजुकेशन ऑफिसर्स, फ़ीजी हेड टीचर्स एसोसिएशन, फ़ीजी प्रिंसिपल्स एसोसिएशन अपने वार्षिक अधिवेशनों में मातृभाषा शिक्षण (हिंदी, उर्दू और आई–ताऊ केई)पर बल देते हैं

4. सनातन धर्म सभाएँ फ़ीजी हिंदी–शिक्षा को प्रोत्साहित करती हैं। वे हिंदी की भाषण और निबंध प्रतियोगिताओं का आयोजन करते हैं।

5. फ़ीजी की ब्राह्मण पुरोहित सभा हिंदी –शिक्षा का ज़ोरदार समर्थन करती है। वह भजन एवं कीर्तन प्रतियोगिताओं का तथा उत्सवों और पर्वों पर हिंदी कार्यक्रमों का आयोजन करती है।

6. फ़ीजी की आर्य प्रतिनिधि सभा हिंदी–शिक्षा का समर्थन करती है। उनके द्वारा संचालित सभी विद्यालयों में हिंदी–शिक्षा अनिवार्य है।

7. फ़ीजी सेवा आश्रम प्रतिवर्ष हिंदी के कई कार्यक्रम आयोजित करते है तथा विद्यालयों और रामायण मंडलियों को पुस्तकें वितरित करते हैं।

8. फ़ीजी हिंदी सोसाइटी भाषण प्रतियोगिता, निबंध प्रतियोगिता, कला और ग्राफ़िक, कथा लेखन और वार्षिक हिंदी सम्मेलनों का आयोजन करती है।

9. फ़ीजी स्काउट्स एसोसिएशन अपने नेताओं को प्रोत्साहित करता है कि लड़के और लड़कियाँ जो स्काउट्स हैं वे आपस में अंग्रेजी, हिंदी या आई ताऊ के ई में बात करें।

10. अधिकांश स्कूलों के पुरातन छात्र संघ बच्चों को अपनी मातृभाषाएँ बोलने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

11. सभी रामायण मंडलियाँ जिनकी संख्या लगभग 2000 होगी वे हिंदी के प्रचार–प्रसार पर बहुत बल देती हैं। यदि लोग हिंदी पढ़ना–लिखना नहीं जानेगें तो वे हमारे धार्मिक ग्रंथों को पढ़ नहीं सकेंगे।

12. फ़ीजी काउंसिल ऑफ़ सोशल सर्विसेज छात्रों को अपनी मातृभाषाएँ सीखने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। वे विद्यालयों को मातृभाषाएँ पढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

13. सभी हिंदू संस्थाएँ अपने धार्मिक कार्यक्रमों के माध्यम से, भजन–कीर्तन आदि के गायन कार्यक्रमों से नाटकों, भाषण प्रतियोगिताओं के द्वारा हिंदी को सुरक्षित करने का यत्न करते रहते हैं।

14. हमारी सभी धार्मिक संस्थाएँ हमारी बहुत सहायता करती हैं। वे धार्मिक पुस्तकें उपलब्ध कराकर हिंदी उत्सवों, अनौपचारिक संगीत कक्षाओं, बाल विकास कक्षाएँ और सभी मंदिरों में पुरोहितों की उपस्थिति से जो पूजा, यज्ञ कराते हैं और धार्मिक कक्षाएँ भी लेते हैं उनमें प्रतिभागिता करती हैं और इस प्रकार हिंदी का प्रचार–प्रसार होता रहता है।

सुनंदा वर्मा : अपने तीन वर्ष के फ़ीजी प्रवास में मैंने देखा की फ़ीजी लोकसाहित्य और लोकसंगीत की दृष्टि से बहुत संपन्न है। फ़ीजी के ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी अनेक रामायण मंडलियाँ हैं। प्रति सप्ताह ग्रामीण साथ बैठकर रामायण की चौपाईयाँ गाते हैं और दिनभर की थकावट भूलकर अपना मन बहलाते हैं।

डॉ. बृज लाल : आपका यह सोचना सही है। फ़ीजी की सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा के अनुसार फ़ीजी में 2000 से भी अधिक रामायण मंडलियाँ हैं। ये मंडलियाँ प्रति सप्ताह– अधिकतर हर मंगलवार की रात को आपस में मिलती हैं और रामायण के तीन से लेकर सात दोहों तक का रामायण पाठ करती हैं। चौपाइयाँ पढ़ते समय उनकी विस्तृत व्याख्या की जाती है जिसका संबंध हमारे दैनिक जीवन से होता है।

दूसरे शब्दों में यदि कहा जाए तो यह बताया जाता है कि रामायण के ज्ञान को जीवन में कैसे उतारा जा सकता है।

कार्यक्रम के बीच–बीच में कहानी को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए कीर्तन और भजन भी होते हैं जिससे कथा में लोगों का मन लगा रहे। कीर्तन और भजन में सभी लोग या तो गाने में भाग लेते हैं या कोई वाद्य बजाते हैं। एक ओर यह जहाँ मनोरंजन का बड़ा माध्यम है वहीं दूसरी ओर यह तनाव से व्यक्ति को मुक्त करने वाला, दिल दिमाग को शांति देने वाला, धार्मिक ज्ञान में वृद्धि करने वाला तथा गाने और वाद्य बजाने में भाग लेने का अवसर भी देता है।

यह एक बहुत प्रभावी तरीका है हिंदी को, हमारी संस्कृति को, परंपराओं को, संगीत को बचाए रखने का और हम सबको साथ बाँधे रखने का बड़ा उपाय है। इससे समाज में एकता का भाव बढ़ता है।

सुनंदा वर्मा : क्या आपको लगता है कि फ़ीजी का भारतीय हिंदू समाज ही नहीं जनसामान्य भी रामायण गायन में आनंद लेता है और राम के चरित्र को अपना आदर्श मानता है?

डॉ. बृज लाल : फ़ीजी एक बहु सांस्कृतिक, बहु भाषिक और बहु जातीय देश है। लोग गाँवों और बस्तियों में साथ–साथ रहते हैं। हिंदू, मुस्लिम, सिख और दक्षिण भारतीय सभी आपस में शांति से रहते है, एक दूसरे के धर्म का सम्मान करते हैं।

संगीत के कार्यक्रमों में सबकी समान भागीदारी रहती है। यदि कव्वाली का कार्यक्रम

होता है तो वाद्य हिंदू और मुस्लिम दोनों ही बजाते हैं।

धार्मिक मतभेदों से ऊपर उठकर यह सभी के लिए मनोरंजन के कार्यक्रम है। आज कितने ही फीजियन हैं जो नामी भजन गाने वाले हैं। जब किसी गाँव में रामायण गायन का कार्यक्रम होता है तो यह सभी के लिए साथ बैठने का अवसर प्रदान करता है।

कावा या यांगोना फ़ीजी का राष्ट्रीय पेय है। यह एक सामजिक पेय भी है। यह पेय लगभग हर दस मिनट पर दिया जाता है और हिंदी पीढ़ी इसे बहुत पसंद कर रही है। आपस में पास आने के लिए, आपस में बात करने के लिए, विचारों और भावों के आदान प्रदान के लिए अवसर देती है। रामायण कार्यक्रम के बाद कावा–पान जो गाने वाले होते हैं, उनको और गाने वालों को साथ लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सुनंदा वर्मा : फ़ीजी लोकसाहित्य और लोकसंगीत की दृष्टि से बहुत संपन्न है। मुझे पता है कि इस क्षेत्र में गाँव–गाँव जाकर आपने फ़ीजी के लोकगीत और लोकसंगीत पर बहुत कार्य किया है। इस संबंध में अपने किए गए प्रयत्नों को अपने अनुभव को विस्तार से साझा करें। फ़ीजी के लोकगीत और लोक संगीत के क्या कुछ संग्रह प्रकाशित हुए हैं? यदि हाँ तो उनके प्रकाशन का विवरण दें।

डॉ. बृज लाल : गिरमिट की समाप्ति के तुरंत बाद अनेक ऐसे लेखक थे जिन्होंने अपने लिखे फाग/चौताल, भजन, लोकगीत और अनेक तरह के गाने रिकॉर्ड कराए। फ़ीजी के रेडियो स्टेशन ने सभी तरह के भजनों को रिकॉर्ड किया (भजन, चौताल, सोहर, संगीत, लोकगीत, आल्हा, बिदेसिया, कव्वाली, कीर्तन) वे रविवार को उन्हें प्रसारित भी करते और जनता इन प्रसारणों की प्रतीक्षा भी करती।

1970 में ही म्यूजिक कंपनियों ने कैसेट पर रिकॉर्डिंग प्रारंभ कर दी थी, जो अब सी डी पर हो रही है।

मैंने अपने पूरे कार्यकाल में और आज भी जन समाज के बीच जाता हूँ। कोई भी कार्यक्रम है तो मैं उसमें जाता हूँ– स्वास्थ्य चर्चा, कृषि–चर्चा, धार्मिक आयोजन हो या सामुदायिक–सभा हो। मैं कोशिश करता हूँ कि अंत में एक घंटे का संगीत कार्यक्रम हो। संगीत के कार्यक्रम लोगों को निकट लाते हैं, स्मृति को बढ़ाते हैं, संबंधों को घनिष्ठ बनाते हैं, संस्कृति आदि को समझने में मदद करते हैं। विशेष बात यह है कि ये लोगों को प्रेरित करते हैं विशेषकर युवा समाज को। जैसा मैंने पहले बताया कि पहले कई पुस्तकें छपी बाद में कैसेट बने और अब सी डी तक हम पहुँच गए।

यदि आप किसी गाँव में जाएँ तो वहाँ के लोग आगंतुक से मिलकर खुश होते हैं और गाकर वे अपनी खुशी प्रकट करते हैं। और अगर अतिथि भी गाने वाला हुआ तो वे बहुत ही प्रसन्न होते हैं। मुझे लगता है कि यह एक महत्वपूर्ण अवसर होता है जब लोगों का पारस्परिक आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए वे कार्यक्रम में शामिल होते हैं। युवक इससे प्रेरित होते हैं और इस प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी हम अपनी भाषा, संस्कृति और परंपराओं को जीवित रख सकेंगें।

स्थानीय लोगों द्वारा लिखी गई कुछ पुस्तकें जो मेरे पास हैं वे निम्नलिखित हैं–

1. फाग रचना– बा के राम करन द्वारा लिखित।

2. कीर्तन संग्रह भाग– 1 और 2 नासीनू के शिव चरण सरदार द्वारा लिखित।

3. संग कीर्तन वाली– भाग 1 और भाग 2 लंबासा के मन मोहन दास द्वारा लिखित।

4. वैदिक भजन संग्रह चौथा संस्करण आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित।

सुनंदा वर्मा : क्या आपको लगता है कि ग्रामीण फ़ीजी द्वीप के हिंदी लोकगीत और लोकसंगीत परोक्ष रूप में हिंदी के प्रचार और प्रसार में सहायक हैं?

डॉ. बृज लाल : मैं पूरी तरह सहमत हूँ। ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों की तरह युवा और वृद्ध दोनों के मनोरंजन के लिए सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए संगीत और गाने को प्रोत्साहित करने के लिए युवाओं ने कई ग्रुप बना लिए हैं। 99.9% गाने हिंदी के ही होते हैं और भारतीयों के ग्रुप द्वारा ही गाए जाते हैं। बाद में ये ही जब शहरों को चले जाते हैं तो उनके साथ उनकी प्रतिभा भी चली जाती है। फ़ीजी रेडियो के कार्यक्राम के सबसे अधिक श्रोता ग्रामीण क्षेत्रों के ही हैं। वे समाचार सुनते हैं, मौसम के हाल के बारे में सुनते हैं और भजन, कीर्तन, कव्वाली, लोकगीत आदि के लिए समय निकालते हैं। अपने मन पसंद रेडियो कार्यक्रम के लिए तो वे रेडियो से चिपके रहते हैं।

गाँव के स्कूलों में भी हिंदी पढ़ाई जाती है और अधिकांश छात्रों को हिंदी लिखने और पढ़ने का सामान्य ज्ञान होता है। वे अपने गाने हिंदी में लिखते हैं और हिंदी में गाते हैं। इससे उनका हिंदी का ज्ञान बहुत बढ़ता है और इससे वे हिंदी समाचार पत्र और हिंदी धार्मिक ग्रंथ भी पढ़ लेते हैं। उनके माता पिता भी ध्यान रखते हैं कि उनके बच्चे हिंदी सीख लें।

संगीत–शिक्षा बच्चों को सक्षम बनाती है, उनके गुणों और योग्यताओं का विकास करती है और उनको स्कूल जाने के लिए और स्कूल में टिके रहने के लिए प्रोत्साहित करती है।

आप किसी भी उम्र के हो, संगीत में किसी भी स्तर पर हों– चाहे बैंड, ऑनसॉम्बल– ग्रुप, ऑर्केस्ट्रा या क्वायर में हों, या अकेले बजा या गा रहें हों, आपका संगीत जागरूकता बढ़ा सकता है, प्रोत्साहित कर सकता है।

संगीतज्ञों का योगदान, चाहे वे किसी भी विधा के हों, बराबर का महत्व रखता है– सोल हो या सन, हाइलाइफ़ या हिप हॉप, फ़ोक, जैज़, रॉक या टैंगो, सभी पारंपरिक, शास्त्रीय संगीत का महत्व है।

फ़ीजी में हिंदी दिवस मनाया जाता है और निबंध, भाषण, कविता, गायन और अनेक कार्यक्रम होते हैं। जिससे दूसरों को प्रोत्साहन मिलता है और उनके दिलों में हिंदी का महत्व बढ़ता है।

सुनंदा वर्मा : फ़ीजी में संवैधानिक स्तर पर हिंदी की वर्तमान स्थिति क्या है?

डॉ. बृज लाल : शिक्षा मंत्रालय के अधीन पाठ्यक्रम विकास एकक है जिसका दायित्व है कक्षा एक से लेकर कक्षा तेरह तक के छात्रों के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम का विकास करना तथा परीक्षण और मूल्यांकन, एक का दायित्व वर्ष 6,8.10, 12 और 13वें वर्ष के लिए परीक्षा की व्यवस्था करना। दूसरे मूल्यांकनों में अर्ध–वार्षिक परीक्षा (जून–जुलाई) नवंबर तथा दिसंबर में होने वाली वार्षिक परीक्षा में हिंदी की परीक्षा होती है। जो छात्र भाषा अध्ययन में मेजर करते हैं उन्हें स्थानीय विश्वविद्यालय हिंदी विषय लेने की सुविधा देते हैं। अध्यापक प्रशिक्षण कॉलेज भी हिंदी विषय लेने की सुविधा देते हैं। प्राथमिक कक्षा में स्नातक की योग्यता प्राप्त करने वाले से यह आशा की जाती है कि वह कम से कम एक मातृभाषा (हिंदी, आई– ताऊ केई, रोटुमन, उर्दू, तमिल/तेलुगु) पढ़ा सकेगा।

सुनंदा वर्मा : क्या आज फ़ीजी में भारतीय हिंदी बोलते और समझते हैं ?

डॉ. बृज लाल : फ़ीजी का भारतीय समाज 100 प्रतिशत हिंदी बोलता और समझता है। केवल विदेश (ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, अमरीका या कनाडा आदि) चले गए भारतीयों के बच्चे ही होंगे जो हिंदी न बोल पाते हों।

सुनंदा वर्मा : क्या फ़ीजी के मूल निवासी काईबीती समाज के लोग हिंदी समझते और बोलते हैं? हिंदी के प्रति उनका क्या कोई लगाव है?

डॉ. बृज लाल : फ़ीजी में बोलचाल की दो भाषाएँ हैं– हिंदी और आई–ताऊ केई। ये बाज़ार की भाषाएँ हैं। 80 प्रतिशत आई –ताऊ

केई हिंदी बोलते और समझते हैं जबकि भारतीयों में 50 प्रतिशत आई–ताऊ केई समझते हैं और

बोल लेते हैं। फ़ीजी में आई–ताऊ केई और हिंदी दोनों भाषाएँ अनिवार्य हैं। फ़ीजियन लोगों को हिंदी और भारतीयों को आई–ताऊ केई अनिवार्यतः पढ़नी पड़ती है।

सुनंदा वर्मा : फ़ीजी के मूल निवासियों और भारतीयों के बीच संपर्क–भाषा क्या है ?

डॉ. बृज लाल : संपर्क भाषा अंग्रेजी है। 96–98 प्रतिशत फ़ीजी की जनता अंग्रेजी बोलती है।

सुनंदा वर्मा : फ़ीजी में भारतीय मूल के लोग अपने पारस्परिक वार्तालाप में हिंदी का प्रयोग करते हैं या फ़ीजी हिंदी का ?

डॉ. बृज लाल : फ़ीजी का भारतीय समुदाय अपने घरों में, गाँवों के कार्यक्रमों में, औपचारिक कार्यक्रमों में हिंदी बोलता है। दो भारतीयों के बीच बातचीत हमेशा हिंदी में ही होती है। अंग्रेजी का प्रयोग तभी होता है जब सभा में दूसरी जाति के लोग हों जो हिंदी न समझ पाते हों।

सुनंदा वर्मा : 'फ़ीजी हिंदी' का प्रयोग कहाँ और कितने लोग करते हैं ?

डॉ. बृज लाल : सामान्य बातचीत में, एक रेडियो स्टेशन पर तथा कुछ–कुछ फ़ीजी टीवी पर फ़ीजी हिंदी का प्रयोग होता है। 100 प्रतिशत भारतीय फ़ीजी हिंदी का प्रयोग करते हैं। हर भारतीय फ़ीजी हिंदी में बात कर सकता है।

सुनंदा वर्मा : 'फ़ीजी–हिंदी' में क्या कोई साहित्य रचना आज हो रही है? फ़ीजी–हिंदी में लिखित प्राचीन या समकालीन साहित्य का परिचय दें।

डॉ. बृज लाल : पुराना लेखन मानक हिंदी में होता था। पिछले 10–15 साल में प्रो. सुब्रमनी ने अपने दो उपन्यास फ़ीजी–हिंदी में लिखे हैं। अंत में कहना चाहता हूँ कि आज फ़ीजी–हिंदी में लिखना फैशन की बात है।

सुनंदा वर्मा : फ़ीजी में 'फ़ीजी हिंदी' की आज क्या स्थिति है ?

डॉ. बृज लाल : फ़ीजी हिंदी की स्थिति

(क) 100 प्रतिशत भारतीयों द्वारा बोली और समझी जाती है।

(ख) सुब्रमनी ने फ़ीजी हिंदी में उपन्यास लिखे हैं।

(ग) इधर कुछ लोगों ने फ़ीजी हिंदी में कविता लिखना भी शुरू किया है।

फ़ीजी की सरकार ने वर्ष 2013 के संविधान के अनुसार व्यावहारिक बोलचाल की भाषा के उद्देश्य से फ़ीजी हिंदी को पढ़ाया जाना अनिवार्य कर दिया है।

(घ) शिक्षा–मंत्रालय ने फ़ीजी हिंदी का पाठ्यक्रम भी विकसित किया है जिससे वह पढ़ाई जा सके।

डॉ. फ़ीजी के लगभग चार रेडियो स्टेशन हैं जो 24 घंटे हिंदी कार्यक्रम प्रसारित करते हैं।

सुनंदा वर्मा : विश्व के भाषा आंकड़े कहते हैं कि फ़ीजी–हिंदी भी विश्व की कई अन्य भाषाओं की तरह आज लुप्त होने के कगार पर है और एक भाषा का लुप्त हो जाना उस समुदाय की भाव–राशि और विचार राशि का और उसकी संस्कृति का लुप्त हो जाना है। आप इससे कितना सहमत हैं?

डॉ. बृज लाल : मैं पूरी तरह असहमत हूँ। 500 से 800 साल के बाद इसके लुप्त हो जाने की बात कोई सोच सकता है। मुझे विश्वास है कि भारतीय इस द्वीप में बसे रहेंगे और जब तक वे रहेंगे भाषा के लुप्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

सुनंदा वर्मा : हिंदी की सुरक्षा, संरक्षा और प्रतिष्ठा के लिए देश की सरकार और विद्वत समुदाय की क्या योजनाएँ हैं ?

डॉ. बृज लाल : 1. सरकार ने इसको संवैधानिक सुरक्षा दी है जो सबसे बड़ा आश्वासन है।

2. फीजियन विश्वविद्यालय और टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज को हिंदी पढ़ाने के लिए आदेश दिया हुआ है।

3. शिक्षा–मंत्रालय के तथा पाठ्यक्रम विकास, मूल्य और गुण कार्यक्रम, परीक्षा मूल्यांकन इकाई में हिंदी संभाग है।

4. सरकारी आदेश के आधीन सभी जन परिपत्र अंग्रेजी, हिंदी और आई–ताऊ केई भाषा में होंगे।

5. फ़ीजी धर्म निरपेक्ष देश है और हमारी सारी धार्मिक पुस्तकें अपने लोगों के लिए हिंदी में हैं।

सुनंदा वर्मा : फ़ीजी में हिंदी का संरक्षण और संवर्धन कैसे हो? आप क्या सोचते हैं?

डॉ. बृज लाल : सुरक्षा और प्रसार

1. छात्रों को प्रोत्साहित करना कि स्कूल में वे हिंदी विषय लें।

2. शिक्षा–मंत्रालय के साथ पाठ्यक्रम तथा मूल्य विकास कार्यक्रमों में सहयोग।

3. हमारे हिंदी सांस्कृतिक वर्ग समय–समय पर हिंदी भाषण प्रतियोगिता, निबंध, कहानी प्रतियोगिता का आयोजन करें।

4. सामान्य लोगों के लिए नव लेखन शिविर का आयोजन।

5. हिंदी के लिए तकनीकी सुविधाओं का प्रयोग।

6. हिंदी पाठ्यक्रम में स्थानीय कथाओं, पौराणिक–गाथाओं और चित्रों आदि का समावेश।

7. सरल हिंदी पाठ्य सामग्री की उपलब्धता।

8. धार्मिक संस्थाओं के साथ मिलकर कार्य कराना और उनको अधिक सक्षम बनाना।

9. रेडियो और टी वी के अच्छे और रोचक कार्यक्रमों का प्रसारण।

सुनंदा वर्मा : हिंदी के विकास के लिए भारत सरकार से आप किस प्रकार के सहयोग की अपेक्षा करते हैं?

डॉ. बृज लाल :

1. भारत में हिंदी और संगीत सीखने के लिए छात्रवृत्तियाँ।

2. हिंदी में लिखी धार्मिक पुस्तकों को फ़ीजी में लाने की व्यवस्था।

3. संगीत वाद्यों की उपलब्धता।

4. विविध कार्यशालाओं (हिंदी भाषा, धार्मिक कक्षाएँ, पुस्तक लेखन) का आयोजन।

5. भारत से कलाकारों का फ़ीजी आना।

6. फ़ीजी के भारतीय तथा भारत के भारतीयों के संयुक्त कार्यक्रम।

7. आसान पठन सामग्री की उपलब्धता।

8. फ़ीजी में भारतीय सांस्कृतिक केंद्र को और सक्षम बनाना।

9. फ़ीजी के संगीत कलाकारों का भारत भ्रमण और भारत के कलाकारों का फ़ीजी आगमन नियमित रूप से धार्मिक प्रचारकों का भारत से फ़ीजी आना।

10. विश्व विद्यालय स्तर पर छात्र विनिमय।

11. नियमित कार्यशालाएँ, सम्मलेन, संगोष्ठियाँ और वाद–विवाद प्रतियोगिताओं का आयोजन।

सुनंदा वर्मा : सांस्कृतिक दृष्टि से क्या यह कहा जा सकता है कि 'फ़ीजी एक छोटा भारत है'? आपकी क्या राय है? क्यों और कैसे?

डॉ. बृज लाल : फ़ीजी एक लघु भारत है क्योंकि–

1. की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग भारतीयों का है।

2. फ़ीजी की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या हिंदी भाषी है।

3. हम भारतीय–परिधान, संस्कृति और धर्म का अनुसरण करते हैं।

4. सभी हिंदू घरों पर हनुमान–झंडा लगा दिखेगा।

5. हमारे यहाँ भी अनेक मंदिर हैं।

6. भजन, कीर्तन और तरह–तरह के हिंदी गीत और संगीत सुने जा सकते हैं।

7. हम हिंदू धार्मिक–पुस्तकों का प्रयोग करते हैं।

8. हमारी दुकानों पर जो श्री क्षेत्र में हैं वहाँ भारतीय परिधान मिलेंगे, हिंदी गाने बजाते आप सुनेंगे और भारतीय खान–पान की चीज़ें मिलेंगी।

9. हिंदी अभिवादन।

10. स्वच्छ और स्वस्थ वातावरण, स्वच्छ पेय जल, सुंदर और स्वच्छ नदियाँ और सागर और पर्वत हमारे यहाँ भी हैं।

11. किसी भी इमारत में आप जाए तो आपको भारतीय दिखेंगे, सड़को पर भी आपको भारतीय दिखेंगे।

12. धान और गन्ने के खेतों में, बाज़ार में, बसों और कोरा में आपको भारतीय दिखेंगे।

13. भारत का हर पक्ष आपको यहाँ दिखेगा।

❑❑❑

फ़ीजी के घट–घट में राम

राकेश पांडेय

फ़ीजी के घट घट में राम व्याप्त है। फ़ीजी की संस्कृति राममय है। यहां नौ लाख की जनसंख्या में लगभग 2000 रामायण मंडलियाँ हैं। रामायण का गायन व मंचन होता है। हनुमान चालीसा आपको ढोल मंजीरे के साथ सुनाई देगी पूर्व प्रधानमंत्री श्री महेंद्र चौधरी ने रामायण पर हाथ रखकर प्रधानमंत्री पद की शपथ ली थी। फीजी में रामायण का बहुत महत्व है, जब अंग्रेजो अपने साम्राज्य में जब ब्रिटेन की महारानी का वैभवगान किया, तो जवाब में भारतीय समुदाय ने कहा कि हमारी महारानी तो रामायण महारानी है. तभी से आज तक फ़ीजी में रामायण को रामायण महारानी कहा जाता है रामायण तो फ़ीजी की सांस्कृतिक पहचान है, यहाँ लंबासा नगर को अयोध्या कहा जाता है। फ़ीजी में कुछ वर्ष पूर्व अंतरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन का भी आयोजन हुआ, सौभाग्य से मैं भी सम्मिलित हुआ। देश के विश्वप्रसिद्ध लेखक प्रोफेसर सुब्रमनी बातचीत में कहते हैं कि उन्होने लिखना तो तुलसी से सीखा है। उनके दो वृहद उपन्यास 'डउका पुरान' और 'फ़ीजी माँ' की भाषा भी तुलसी की भाषा है, जिसे यहाँ फ़ीजी बात कहते है, भारत में अवधी कहते है।

'फ़ीजी माँ'' उपन्यास का अंश इस प्रकार है, भाषा और भाव देखिए।

मंडली सात दोहा पढ़िन फिर आरती के वास्ते सब खड़ा होई गइन। बिंदा रूमाल में गठियाय के तीन पेनी रखे रही, हम्मे के एक–एक पेनी पकड़ाइस आरती में छोड़े के। बिसरजन खूब जोस से गाइन। अखिर में हम लोग जोर से चिल्लावा, श्री रामचंद्र की जय, पवनपुत्र हनुमान की जय! परसाद बटाः पंजीरी, खीरा, तरबूज अऊर हलुवा। सवेरे रोठ चढ़ा, सब के मीठा रोटी मिला। हमरे पलेट में खीरा अउर तरबूज पंजीरी में सनाय गय, कुछ मजा नइ लगा। रमायन खलास होते देर नइ, झाप में सोरगुल सुरू। रामफल हाथ उठाय के चुप कराइस। जोर से खंखार के गटई सफा करिस, अउर कोई के बोले बिना आपन भासन सुरु करिस "रामचरितमानस बिना हम फ़ीजीवासी सब अनाथ है[6]।"

इस प्रकार में रामचरितमानस के प्रति जनमानस में अटूट श्रद्धा हैं। स्थानीय भाषा में भी रामायण का अनुवाद हुआ है। मार्क टिविन ने मॉरिशस को देख कर कहा था कि ईश्वर ने पहले मॉरिशस को बनाया फिर उसकी नकल करते हुए स्वर्ग की रचना की, लेकिन मैं यह कहना चाहूंगा की मार्क टिविन ने फ़ीजी को नहीं देखा था अन्यथा वह शायद केवल मॉरिशस के लिए कहने से है रुक जाते।

फ़ीजी फिरदौस अर्थात स्वर्ग तो है ही और हम भारतीयों के लिए यूँ तो हर गिरमिटिया देश खास है, लेकिन कुछ मायनो में फीजी सबसे अलग है, चाहे भाषा की बात हो, भारतीय खानपान की बात हो अथवा भारतीय संस्कृति की बात हो। फ़ीजी भारत से हजारों किलोमीटर दूर है, लेकिन गिरमिटिया के रूप में पहुंचे भारतीयों ने जिंदगी की तमाम कठिनाइयाँ सहते हुए न केवल अपनी पहचान को कायम रखा बल्कि भारतीय संस्कृति को

भौगोलिक विस्तार भी दिया। मैं इन गिरमिटिया देशों में हिंदी भाषा और बोलियों को लेकर वर्तमान में बहुत संकट देखता हूँ लेकिन फ़ीजी को देख कर आश्वस्ति भी प्राप्त होती है। भारत के बाहर फ़ीजी ही एक मात्र देश है जंहा हिदी एक आधिकारिक भाषा है। वहाँ का सरकारी गजट हिंदी में भी प्रकाशित होता है। सरकारी प्रकाशनों में हिंदी भी दिखाई पड़ेगी। हमारे देश मे मॉरिशस की बात अधिक की जाती है क्यों कि इन देशों की तुलना में मॉरिशस नजदीक है, और भारतीयों की आवाजाही भी अधिक है। सरकार ने अनेक संस्थान खोले हुए है, फिर भी अन्य गिरमिटिया देश फ़ीजी की तुलना में हिंदी के प्रचार प्रसार में बहुत पीछे है। फ़ीजी में गैर भारतीय मूल के लोग भी हिंदी सीखते है। 'शांतिदूत' समाचार पत्र 1935 से लगातार प्रकाशित होता रहा है, वर्तमान में बंद हो गया है। उसको पुनः प्रकाशित करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

फ़ीजी की भौगोलिक विशेषता ये भी है कि यहाँ पर सूर्य की पहली किरण पड़ती है, जब मै पहली बार फ़ीजी गया तो एक समारोह में एक स्थानीय व्यक्ति ने परिचय के दौरान ने मुझसे प्रश्न किया कि क्या आप जानते है? पृथ्वी पर सूर्य का प्रकाश सबसे पहले कहाँ पड़ता है? मैंने अनभिज्ञता के कारण सर हिलाया तो वह बड़े ही गर्व के साथ बोला कि हमारे देश में इसका वर्णन वहाँ के राष्ट्रीय कवि पंडित कमला प्रसाद मिश्र ने अपनी कविता में भी किया है। यहाँ सूरज पहले निकलता है और दूर अँधेरा होता है, फ़ीजी फिरदौस है पैसिफक का यहाँ पहले सवेरा होता है. जब मैंने फ़ीजी को देखा नहीं था तो कल्पना थी कि यह भी अन्य गिरमिटिया देशों की भाँति होगा चाहे वह मॉरिशस हो, त्रिनिदाद हो अथवा सूरीनाम। इन देशों की यात्राएँ पहले मैं कर चुका था, लेकिन जब जहाज नादी अंतरराष्ट्रीय एयरपोर्ट में उतरने की तैयारी कर कर रहा था, उसी समय एक बच्चे ने अफ्रीकी मूल के जहाज कर्मी से पूछा कि नादी कब आएगा? तो जहाज कर्मी ने फीजी हिंदी में बच्चे को उत्तर दिया कि तनी नीचे देखो बत्ती देखात बाटय। यह सुन कर मुझे बहुत सुखद आश्चर्य हुआ कि गैर भारतीय मूल का व्यक्ति भी फ़ीजी हिंदी बोल रहा है, यह हमारे गांव में बोली जाने वाली रामचरितमानस की भाषा अवधी थी। फिर मैं भी बहाने से अपनी मातृभाषा अवधी में बात करने लगा तो आश्चर्य हुआ कि वह न केवल समझ रहा था बल्कि बखूबी बोल भी रहा था। उस समय मैं विश्व अवधी सम्मेलन के फीजी में आयोजन के संदर्भ में अग्रिम तैयारी हेतु सरकार द्वारा फ़ीजी भेजा गया था, अंतिम समय में सब तैयारियों के बाद यह सम्मेलन अपरिहार्य कारणों से स्थगित हो गया था जिसकी टीस अब भी फीजी के भारतीय समाज में है। उस समय डॉ. प्रभाकर झा फ़ीजी में भारतीय उच्चायुक्त थे और श्री शरद कुमार द्वितीय सचिव थे। शरद कुमार जी जब मुझे नादी एयरपोर्ट लेने आए थे और वह शाम का समय था। मुझे भी भारत से चले हुए 24 घंटे से अधिक हो चुके थे, इसलिए विमान का खाना कई बार खाकर मन उकता चुका था। शरद जी ने लटूका स्थित होटल वाटर फ्रंट में रुकने का इंतजाम किया था, वहाँ भारतीय शाकाहारी थाली मिलती है। थाली में ठेठ बैंगन की सब्जी और अन्य दाल, सब्जी, रोटी इत्यादि खाना पाकर किसी विदेशी भूमि पर होने का अहसास समाप्त हो गया। जब मैं सुवा में बाजार घूमने निकला तो सब कुछ अपने सा ही, सड़क के बीच में 'फ़ीजी रेडियो देश की धड़कन' के रंगारग प्रोग्राम हो रहे थे। जोर–जोर से हिंदी फिल्मों के गाने बज रहे थे, कुछ कलाकार गानों की धुन पर नाच रहे थे और जनता से कुछ प्रश्न पूंछे जा रहे थे। जीतने वाले को छाता दे रहे थे, मैंने भी दो छाते जीते। मैंने यह जीवंतता अन्य गिरमिट देशों में नहीं देखी है। यहाँ के दोनों विश्वविद्यालय जाने का अवसर मिला, हिंदी

की कक्षाओं में जाने का मौका मिला। मैंने पाया हिंदी को खतरा तो है, अंग्रेजी से लेकिन अगर ये फीजी हिंदी सशक्त रहेगी तो हिंदी का भविष्य भी सुरक्षित रहेगा अन्यथा भाषाई अंग्रेजी राज स्वतः कायम हो जायेगा। फ़ीजी में हिंदी के सन्दर्भ में एक अनुभव अवश्य साँझा करना चाहूँगा। मेरे स्वागत में शरद जी ने अपने निवास पर एक छोटी सी पार्टी का आयोजन किया। उसमें फीजी के अनेक समाज के लोग थे, मैं नाम भूल रहा हूँ, एक तत्कालीन शिक्षा विभाग के उप सचिव फ़ीजी हिंदी में मुझसे बतिया रहे थे, फिर अचानक अंग्रेजी बोलने लगे तो मैंने टोका कि आप तो हिंदी में बोल रहे थे अब अंग्रेजी में क्यों बोलने लगे? उनके उत्तर ने इन देशों में हिंदी को कमजोर होने का एक कारण बता दिया। उनका कहना था कि जो भारत से अधिकारी आते हैं वह बताते हैं कि हमारी हिंदी ठीक नहीं है। हम गँवार हिंदी बोलते है। मैंने उन्हें आश्वस्त किया कि आपकी हिंदी तो बहुत अच्छी है, ये रामचरितमानस की हिंदी है। हमारे भारत के अनेक भाषाभाषी इन देशों के दूतावासों में कार्यरत होते है, उनके ज्ञान की अपनी सीमा होती है, वह अपनी जगह ठीक है कि भारत की राजभाषा खड़ीबोली हिंदी है लेकिन अनजाने में वह इन देशो में हिंदी की आधार संरचना को कमजोर कर जाते हैं। हमें इन तथ्यों का ध्यान रखना चाहिए। फीजी मुझे बहुत आकृष्ट करता है, क्योंकि गाँव की पृष्ठभूमि में हम जन्मे और संस्कारित हुए। वही निष्कपट हृदय लिए फ़ीजीवासी आपसे मिलते हैं।

फ़ीजी का एक और महत्वपूर्ण योगदान गिरमिट प्रथा की समाप्ति को लेकर भी है. गिरमिट प्रथा के उन्मूलन में तोताराम सनाढ्य का उल्लेख आवश्यक है, जो कि फ़ीजी में गिरमिटिया मजदूर के रूप में आए थे और उन्होंने 'फ़ीजी में मेरे 28 वर्ष पुस्तक' लिखी जिसमे भारतीयों पर हो रहे अत्याचारों का वर्णन था। वह बनारसीदास चतुर्वेदी के माध्यम से गांधी जी के सम्पर्क में आए और उन्होंने गांधी जी को इतना प्रभावित किया कि सी. एफ. एंड्रूज को गांधी जी ने फ़ीजी भेजा। सी. एफ. एंड्रूज ने फ़ीजी से लौट कर एक रिपोर्ट तैयार की, जिसके आधार पर गांधी जी ने अंग्रेजी हकूमत से बात कर गिरमिट प्रथा को समाप्त करने के लिए दबाव बनाया. फ़ीजी से तोताराम सनाढ्य लौटने के बाद जीवन भर गांधी जी के पास रहे और उन्ही के साबरमती आश्रम में ही उनकी मृत्यु भी हुई.

इस प्रकार गिरमिटिया देशो में एक खास स्थान रखता है. पंडित प्रताप चंद की कविता देखिये, फ़ीजी प्रेम और अपनों से विछोह की पीड़ा, दोनों है.

नगोना हमसे छूटे न प्यारी,
देस छूटा जात छूटी,
छूटे बाप महतारी ,
नगोना हमसे छूटे न प्यारी

नगोना एक प्रकार का थोडा सा भांग की भांति मादक पेय है, लेकिन फ़ीजी में इसका अतिथि के सत्कार में बड़ा ही महत्व है. किसी भी महत्वपूर्ण आयोजन में सत्कार नगोना द्वारा ही किया जाता है। इसका महत्व इसी से समझ सकते है कि जब भारतीय प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इंदिरा गाँधी एवं श्री नरेंद्र मोदी फीजी गए तो उन्हें नगोना बहुत ही उत्सवपूर्ण तरीके से परोसा गया। मैंने भी नगोना चखा जिसका नशा आज तक कायम है कि फीजी बिसरता ही नहीं. फ़ीजी भारतीय संस्कृति का भी फिरदौस है।

यह देश राममय है, क्योंकि यहाँ घट–घट में राम है। अंत में फ़ीजी की अमरजीत कौर की पंक्तियाँ है–

ऊँची होवे इसकी शान,
रमणीक है यह सुंदर धाम।
ऊँचा होवे इसका नाम,
ऐसा दो इसे वरदान।

❑❑❑

मेरी यात्राओं में हिंदी दर्शन

ओम प्रकाश शर्मा 'प्रकाश'

हर व्यक्ति यात्रा करना पसंद नहीं करता। यात्रा भीरू भी होते हैं। इसके बर–अक्स कुछ लोग यात्रा के प्रति उत्साह प्रकट करते हैं। मार्ग की बाधाएँ उनके लिए कुछ मायने नहीं रखती। अवसर मिला कि वे चल पड़ते हैं, इससे भी आगे, वे लोग हैं जिन्हें यात्राओं का चस्का लग जाता है। वे "सिंदबाद द सेलर" की श्रेणी के होते हैं।

मैंने बहुत यात्राएँ की हैं– अधिक, देश में; थोड़ी–बहुत विदेश में। मैं प्रकृत्या घुमक्कड़ हूँ। यहाँ यह प्रश्न प्रासंगिक हो सकता है कि क्या घूमने और लिखने में कोई संबंध है? सैलानीपन और सृजन के बीच आख़िर क्या रिश्ता है? आप पाएँगे कि जैसे–जैसे देश–प्रदेश–विदेश यात्राओं के लिए खुलते चलते गए वैसे–वैसे घुमक्कड़ों की संख्या बढ़ती चली गई और इसी क्रम में यात्रा–साहित्य एक आधुनिक गद्य विधा के रूप में समृद्ध होता चला गया। पर्यटनशीलता रचनाकार को उसके वृहत्तर समाज और परिवेश से जोड़ती है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में कहा गया है– 'चरन वै मधु विन्दति।' अंग्रेज़ी में भी सूक्ति है कि 'ट्रैवलिंग इज़ अ पार्ट ऑफ एजूकेशन'। ज़िंदगी के नाना रूपों से परिचित होने और अनुभवों की विविधता से गुजरने के लिए भी पर्यटन रचनाकार के लिए आवश्यक है। अकारण नहीं है कि हिंदी के कुछ प्रसिद्ध लेखक यायावरी प्रवृत्ति के रहे हैं– अज्ञेय, नागार्जुन, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, देवेंद्र सत्यार्थी, राहुल सांकृत्यायन आदि। विष्णु प्रभाकर ने चौदह वर्ष तक यदि स्थान–स्थान की यात्राएँ न की होतीं तो संभवतः वे 'आवारा मसीहा' जैसी कृति न दे पाते जो आज जीवनी–लेखन का प्रतिमान बन चुकी है। कालिदास और बाणभट्ट के विषय में भी कहा जाता है कि वे सैलानी प्रकृति के थे इसलिए उनकी रचनाओं में प्रकृति और देश–प्रदेश का इतना आकर्षक वर्णन है।

स्वदेश में मैं घूमने के लिए सर्वाधिक हिमाचल प्रदेश जाता हूँ। हिमाचल मुझे सबसे प्रिय है। वहाँ प्रकृति का रूप अभी उतना बिगड़ा नहीं है। पहाड़, झरने, नदियाँ, पेड़–पौधे, फूल–पत्ती सब अपने स्वभाव में है। उत्तर और मध्य भारत के कुछ स्थानों पर मैं कार्यवश अथवा भ्रमणार्थ गया हूँ। इन सब स्थानों पर हिंदी का बोलबाला है। पग–पग पर हिंदी के दर्शन होते हैं चाहे आगरा, झांसी हो अथवा लखनऊ, देहरादून या मसूरी। साइन बोर्ड हों, लोगों के वार्तालाप हों, वाणिज्य–व्यापार हों या कार्यालय हों– हिंदी सब स्थानों पर मौजूद है। उत्तर और मध्य भारत के दस राज्यों की राजभाषा और जनभाषा हिंदी हैं। ये राज्य हैं– हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, दिल्ली, उत्तराखंड, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार और झारखंड।

दक्षिण में मैं, समय–समय पर हैदराबाद, चेन्नई, मदुरै, बैंगलूरू, मैसूर, कोडाइकनाल, वेलिंगटन, ऊटी, तिरुवंनतपुरम तथा कोट्टायम और गया घूमा हूँ। यहाँ स्थिति उत्तर से भिन्न है। हैदराबाद में भाषा का जो रूप प्रचलित है वह दक्खिनी है। आप उसे उर्दू कहें या हिंदी, एक ही बात है। बोलने का कुछ निजी वैशिष्ट्य है जैसे वे शब्दों के अंत में अक्सर 'याँ' लगा देते हैं मसलन च्यावाँ, प्यालियाँ, वालियाँ आदि। उर्दू में सिर्फ़ 'रस्मुलख़त' (यानी लिपि) बदल जाती है अन्यथा वह हिंदी ही है।

कई दृष्टियों से मुझे केरल सबसे अच्छा लगा।यह अपेक्षाकृत सुसंस्कृत, कला–प्रिय तथा साहित्यानुरागी लगा। मलयालम मधुर भाषा

मानी गई है। बहुत वर्ष पहले मैंने जी. शंकर कुरूप की कविताओं का हिंदी अनुवाद पढ़ा था। शायद उन्हे साहित्य अकादमी का प्रथम पुरस्कार मिला था। जो मलयालम शीर्षक था उसका अनुवाद 'बाँसुरी' है। वाकई वे मधुर कविताएँ थीं। कोट्टायम में मैं एक विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिए गया था। मेरे एक ईसाई मित्र थे, जिनकी सुपुत्री का पाणि–ग्रहण था। फादर (पादरी) जो रस्में संपन्न करवा रहे थे, वे यूरोपीय कम और भारतीय अधिक थे। वे कंवर्ट ईसाई हैं। धार्मिक दृष्टि से उनका संबंध रोम के पोप से न होकर किसी सीरियन चर्च से था। अस्तु! फादर मंत्रोच्चार कर रहा था। शायद बीच–बीच में कहीं घंटी भी बजाता था। मैंने नोट किया कितने ही शब्द हिंदी–संस्कृत के थे जो उन मंत्रों में पढ़े जा रहे थे। एक लघु–सूची प्रस्तुत है– देवालय, करुणा, प्रसाद, स्नेह, नीर, घृतम, शशि, आनंद, विष, अरुणोदय, प्रभात, प्रेम, विद्यार्थी, मित्रम्, मधुरम, वचन आदि आदि। जिस बेटी का विवाह हो रहा था, उसका नाम दिव्या था और उसकी छोटी बहन का नाम धन्या (धन्य से बना शब्द)। खोजने पर और भी शब्द मिल सकते हैं।

दक्षिण के चार राज्यों में से तमिलनाडु का नाम हिंदी–विरोधी के रूप में बदनाम है। वे मानते रहे हैं कि हिंदी उन पर बरबस लादी जा रही है परंतु अब स्थिति बिल्कुल भिन्न है। नई पीढ़ी हिंदी पढ़ रही है। हिंदी सिखाने वाले वहाँ अब कई केंद्र खुल गए हैं जो विद्यार्थियों को हिंदी परीक्षाओं की तैयारी करवाते हैं। हज़ारों नहीं, लाखों विद्यार्थी हैं जो हिंदी परीक्षाएँ पास कर चुके हैं। युवा वर्ग हिंदी बोलता भी है और समझता भी है। उच्चारण किंचित् भिन्न हो सकता है पर उससे क्या अंतर पड़ता है? नई पीढ़ी समझ चुकी है कि हिंदी–ज्ञान के बिना उनका कोई भविष्य नहीं। गांधी जी द्वारा स्थापित दक्षिण हिंदी प्रचार सभा बहुत अच्छा कार्य कर रही है। यह संस्था एम.ए., पी. एच. डी. तक की उपाधियाँ प्रदान करती है। हिंदी वहाँ अब चल निकली है। विरोध–प्रदर्शन आदि महज़ राजनीति है।

हिंदी भाषा को लेकर पूर्वोत्तर राज्यों की चर्चा करना आवश्यक है। पूर्वोत्तर में मैं मणिपुर, असम, नागालैंड, मेघालय, त्रिपुरा गया हूँ। भाषा और लिपियों को लेकर वहाँ विचित्र स्थिति है। कई बार वे परस्पर भी टकराते रहते हैं। वस्तुतः वहाँ जन जातियों का बाहुल्य है जिनकी अपनी बोली और अपने रस्मो–रिवाज हैं जिनका प्रसार व्यापक क्षेत्र में नहीं है। कई बोलियों की अपनी कोई लिपि नहीं और न ही किसी समृद्ध साहित्य की कोई परंपरा है। अखिल भारतीय नागरी लिपि परिषद् यहाँ प्रशंसनीय कार्य कर रही है। उनके अधिकतर वार्षिक अधिवेशन इसी क्षेत्र में आयोजित किए जाते हैं जो उन्हें हिंदी सीखने–सिखाने के लिए प्रेरित करते हैं तथा उनकी लिपिहीन बोलियों के लिए नागरी लिपि अपनाने की ज़मीन तैयार कर रहे हैं। बोडो भाषा ने अपने लिए सहर्ष नागरी लिपि स्वीकार कर ली है। जहाँ कुछ बोलियाँ पहले बांग्ला या मैतेयी लिपि में लिखी जाती थीं वहाँ भी अब सबने नागरी लिपि को अपना लिया है। उसी के अनुसार नई पुस्तकें तैयार की जा रही हैं। अरुणाचल प्रदेश में कई जन जातियाँ हैं। इसलिए उनके लिए नागरी लिपि में अलग–अलग कई प्राइमर तैयार किए गए हैं। ईटानगर, दीमापुर, अगरतला, शिलांग, मणिपुर, एजवाल में संपन्न हुए कार्यक्रमों से पूरे क्षेत्र की तस्वीर बदल गई है। इनके सद्प्रयत्नों से यहाँ हिंदी भाषा और नागरी लिपि की अभूतपूर्व उन्नति हुई है। आजीवन सदस्य के नाते मेरी इन सम्मेलनों में भागीदारी रही है। इस संदर्भ में परिषद् के पूर्व अध्यक्ष डॉ. परमानंद पांचाल, वर्तमान अध्यक्ष डॉ. प्रेमचंद पतंजलि तथा अनथक महामंत्री डॉ. हरिसिंह पाल की सेवाओं का उल्लेख अनिवार्य है जो हिंदी इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखे जाने योग्य है। हिंदी की बात तो सब करते हैं परंतु नागरी लिपि के उत्थान–प्रसार के लिए कटिबद्ध सेवाव्रती कम

ही लोग हैं। मेरी विदेश यात्राएँ सीमित हैं क्योंकि वे स्वेच्छया और बतौर शौकीया थी तथा जिनका वित्तपोषी मैं स्वयं था।

मैं यू. के. दो–तीन बार गया, कुछ–कुछ वर्षों के अंतराल पर। यू.के. में बहुत भारतीय हैं। वहाँ हिंदी, उर्दू, पंजाबी भाषाएँ बोली जाती हैं तथापि आधिपत्य पंजाबी का है। एक बार मैं साऊथआल में ठहरा। हिंदू सिक्खों के अलावा वहाँ पाकिस्तानी भी रहते हैं। एक प्रकार से वह मिनी–पंजाब है। हिंदी तो बहुत ही कम है प्राधान्य पंजाबी का है। पाकिस्तानी भी पंजाबी का प्रयोग करते हैं। व्यक्तिगत रूप से मैं पंजाबी को हिंदी से बहुत दूर नहीं मानता। पंजाबी के दर्पण में मैं हिंदी के दर्शन कर सकता हूँ। कैसे? सुनिए, पंजाबी और हिंदी सहोदरा हैं। हर हिंदी जानने वाला पंजाबी और हर पंजाबी जानने वाला हिंदी समझ सकता है और अवसर पड़ने पर बोल भी सकता है। लिखावट की बात करें तो गुरुमुखी और देवनागरी लिपियाँ परस्पर बहुत करीब हैं। हिंदी के ये अक्षर पंजाबी में ज्यों के त्यों हैं – ग, ट, ठ, म, भ, ढ, य, घ। प्रथम तीन का तो उच्चारण भी वही है। शेष पाँच का उच्चारण क्रमशः स, म, फ, ध, और ब है। मात्राओं की बात करें तो चार मात्रा ਿ, ੀ, ੁ, ੂ, समान हैं। आ की मात्रा (ਾ) वहाँ आधी कर दी गई है यानी अनुस्वार दोनों में समान है। ल किंचित परिवर्तित रूप में बन गया है। भाषा में मैं लिपि को भी महत्व देता हूँ। इसलिए मैंने इस तरह की चर्चा की।

उस 'टूर' में मैं यार्क विश्वविद्यालय ही जा सका। मुझे पता था कि वहाँ हिंदी पढ़ाई जाती है। यार्क लंदन के धुर उत्तर में है। हो सकता है अमरीका के न्यूयार्क का यार्क से कोई संबंध हो! आख़िर तो अमरीका में बाहर के लोग ही आकर बसे हैं। चलो छोड़ो। यार्क छोटा शहर है और यूनिवर्सिटी भी छोटी है। वहाँ तब डॉ. महेंद्र वर्मा पढ़ा रहे थे। श्री धर्मपाल गांधी नामक एक सज्जन किसी प्रोजेक्ट पर काम कर रहे थे। विभाग में हिंदी में वार्तालाप होता है। कुछ विद्यार्थी भी थे। वे रुक–रुककर हिंदी बोलने का प्रयास कर रहे थे। ऐसा होना स्वाभाविक था। एक सिंहली भाषा के प्राध्यापक भी थे जिनका नाम अब मुझे स्मरण नहीं। उस दिन महेंद्र जी ने जेंडर पर चर्चा छेड़ दी। कहने लगे, क्या बताएँ, कुछ लोग कहते हैं 'दही खट्टा है', कुछ कहते हैं 'दही खट्टी है'। ऐसे ही कुछ लोग कहते हैं 'धनिया हरी है' जबकि कुछ दूसरे लोग कहते हैं 'धनिया हरा है'। चर्चा में भाग लेते हुए मैंने कहा था कि 'जेंडर' की समस्या लगभग हर भाषा में है क्योंकि यह यादृच्छिक 'आरबिट्रेरी' है। इसे परंपरा से सीखना पड़ता है। जर्मन भाषा में हर शब्द को परसर्ग के साथ सीखा जाता है जो उसके लिंग को दर्शाता है। वहाँ 'डेअर' पुल्लिंग के लिए 'डस' निपुंसक के लिए और 'डी' स्त्रीलिंग के लिए लगाया जाता है। नर मादा तो ठीक हैं, पहचाने जाते हैं। आप निर्णय कर सकते हैं किंतु बेजान चीज़ों का क्या करेंगे? कुर्सी, मेज़, क़लम, स्याही आदि के विषय में कैसे जानेंगे कि इनका क्या लिंग है? इसका कोई सुनिश्चित फार्मूला नहीं है। इसे तो रटना ही पड़ेगा। हाँ, विदेशी छात्रों को इसे पढ़ने/समझने में अवश्य कठिनाई आती है।

मैंने वहाँ का एक प्रश्नपत्र देखा। सरल लगा। विदेशों में हिंदी अधिकतर प्रारंभिक स्तर की पढ़ाई जाती है। लंदन स्कूल ऑफ ओरिएण्टल स्टडीज, ऑक्सफोर्ड और कैंम्ब्रिज यूनिवर्सिटीज़ में मैं नहीं जा सका। वहाँ भी हिंदी पढ़ाने का प्रबंध है।

एक बार मुझे जर्मनी जाने का अवसर मिला। तब उसे पश्चिमी जर्मनी कहते थे। मैं बॉन् में कई महीने रहा। तब वह वहाँ की राजधानी थी। स्वाभाविक है कि वहाँ के लोग अपनी भाषा बोलेंगे। जो विदेशी आते या रहते हैं, उन्हें भी वही भाषा सीखनी पड़ती है।

अंग्रेज़ी जानने/समझने वाले लोग बहुत कम हैं। उन्हें इसकी ज़रूरत ही नहीं पड़ती।

हिंदी अध्यापक होने के नाते मेरी तलाश हिंदी को लेकर रहती थी। बॉन विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाई जाती थी। उस समय डॉ. तिलक राज चोपड़ा हिंदी पढ़ा रहे थे। उर्दू भी वही पढ़ा देते थे क्योंकि लिपि को छोड़ कर दोनों में कोई विशेष अंतर नहीं। दोनों भाषाओं में शब्दों का अंतरण होता रहा है जैसे इस्तेमाल, तस्दीक, शिरकत, कुर्बान, हकीकत, निहायत आदि कितने ही शब्द हिंदी में और सावन ऋतु, चर्चा, चित्त, बरखा (वर्षा), साधु, केश, कमल (कंवल), चंदन, तिलक, नाव आदि हिंदी शब्द उर्दू में शामिल हो गए हैं। इन विभागों में थोड़े–थोड़े विद्यार्थी होते हैं। दो प्रकार के विद्यार्थी होते हैं। एक, जो शौक के लिए हिंदी पढ़ते हैं। दूसरे, जो भारत जाना चाहते हैं या वहाँ के धर्म, दर्शन, कला, संगीत, जन–जीवन शैली में जिनकी रुचि रहती है। मैंने चोपड़ा जी से कठिनाइयों के विषय में पूछा। उन्होंने बताया कि बलाघात की समस्या है। यूरोपियन भाषाओं में शब्द पर 'स्ट्रैस' डालकर बोला जाता है जबकि हिंदी/उर्दू में ऐसा नहीं है। ये 'प्लेन' भाषाएँ हैं। उच्चारण की समस्या तो है ही। डॉ. चोपड़ा फर्राटेदार जर्मन बोलते थे। देश में शिक्षण का माध्यम जर्मन है। डॉ. चोपड़ा कई वर्षों से जर्मनी में रह रहे थे। संभवतः वे हेमबुर्ग से यहाँ आए थे। शायद उनकी पीएच.डी. अलंकारों पर थी। सौजन्यवश एक दिन मुझे अपने घर भी ले गए जहाँ का वातावरण एकदम भारतीय था। फिर उनसे मुलाक़ात नहीं हुई। अब भारत थोड़े ही है जब जी चाहा चले आए। यहाँ किसी के पास समय नहीं।

हिंदी को यहाँ के जन–जीवन से जोड़ने की मैं बराबर कोशिश करता। भाषाएँ तो अलग–अलग थी ही। एक–दो प्रवृत्ति मुझे संस्कृत–हिंदी के करीब लगी, मसलन उनकी गिनती संस्कृत–हिंदी के पैटर्न पर है अंग्रेज़ी के पैटर्न पर नहीं जैसे त्रिविंशती। तेईस को जर्मन में दराए उंड श्वांसिश यानी तीन और बीस बोलते हैं। जबकि अंग्रेज़ी में ट्वेंटी थ्री कहते हैं यानी दहाई का अंक पहले और इकाई का अंक बाद में बोला जाता है।

जर्मन भाषा की लिपि रोमन है किंतु वह रोमन लिपि के दोषों से मुक्त है। हिंदी–संस्कृत के समान जर्मन में वर्तनी और उच्चारण में एक सुसंगति है। वहाँ कोई अक्षर साइलेंट नहीं होता। जो लिखते हैं, वो बोलते हैं। जैसा बोलते हैं, वैसा ही लिखते हैं। उनकी वर्णमाला में (एच) को 'ह' पढ़ाया जाता है और लिखने में वह 'ह' की ही ध्वनि देता है। जर्मन में एक शब्द है (हाल्ब) है जिसका अर्थ है आधा। देखिए यहाँ 'एच' 'ह' की ध्वनि दे रहा है। 'एल' भी बोला जा रहा है (तुलना करें अंग्रेज़ी के 'जंसा' से जहाँ एल नहीं बोला जाता) सारांशतः जर्मन भाषा में वर्तनी और उच्चारण की हास्यास्पद स्थितियाँ नहीं हैं।

यहाँ स्त्री–पुरुषों के कई नाम एकदम भारत के नामों से मिलते हैं जैसे हँस, शीला आदि। देश की एयरलाइंस का नाम लुफ्थांसा है। मैं अनुमान लगाता हूँ कि यह 'लुफ्त' और 'हँस' शब्दों को जोड़कर बनाया गया होगा। 'लुफ्त' जर्मन में हवा को कहते हैं। क्या पता यह संस्कृत 'लुप्त' का ही भाई–बहन हो। केवल अल्प प्राण और महा प्राण का ही तो अंतर है। हँस उड़ने वाले के अर्थ में होगा। मैं सामान्य बुद्धि का प्रयोग करते हुए ये सब उधेड़–बुन कर रहा हूँ।

जर्मनी में एक स्थान हाइडलबेर्ग है। बहुत प्राचीन नगर है। यहाँ का विश्वविद्यालय जर्मनी का सबसे प्राचीन विश्वविद्यालय है। मैंने एक दिन वहाँ जाने का कार्यक्रम बनाया। वहाँ 'ज्यूड आज़िअन इंस्तीत्यूत' अर्थात् साऊथ एशिया इंस्टीट्यूट है जहाँ भारतीय भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं। हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. लोथार लुत्से वहाँ के डायरेक्टर हैं। मैं उनसे मिला। वह धारा प्रवाह शुद्ध हिंदी

बोलते हैं मुझे एक़दम भारत का ख्याल आया कि हम स्वयं बोलचाल में कितनी अंग्रेज़ी मांजते हैं।

मैंने पठन–पाठन के बारे में पूछा। उस समय वे वहाँ गोविंद मिश्र का उपन्यास 'लाल –पीली ज़मीन' पढ़ा रहे थे। और 'टैक्स्ट्स' भी थीं जो हिंदी की महत्वपूर्ण रचनाएँ थीं। उन्होंने बताया कि वे 'टैक्स्ट्स' बदलते रहते हैं। उनमें नई कृतियाँ जोड़ते रहते हैं। उनसे 'इंटरव्यू' लिया। डॉ. परमेश्वरम् आइथाल संस्कृत पढ़ाते थे। डॉ. जैदी उर्दू के प्रोफ़ेसर थे। एक भेंटवार्ता उनसे भी की। ये भेंट–वार्ताएँ 'हिमप्रस्थ' मासिक (शिमला) में प्रकाशित भी हुई थीं। बाहर विद्यार्थियों से बातचीत हुई। वे हिंदी बोल लेते थे। उनमें से एक कृषि संबंधित किसी विषय पर शोध कर रहा था। मुझे यहाँ हिंदी का स्तर काफ़ी ऊँचा लगा। शायद शिक्षण के कई 'लेवल्स' हैं। डॉ. तुल्से ने हिंदी लेखकों के साथ मिलकर कई पुस्तकें भी लिखी हैं। एक किताब तो कमल किशोर गोयनका के साथ लिखी गई है। और भी होंगी। कुछ वर्ष बाद वे दिल्ली में मैक्समूलर भवन के निदेशक बन कर भी रहे।

2015 में मैं पुनः यूरोप के तीन देशों– नीदरलैंड्स, स्कॉटलैंड और स्विट्ज़रलैंड की यात्रा पर निकल पड़ा। सिंदबाद सेलर की भाँति यह ख़ब्त मुझ पर रह–रह कर सवार हो जाता है पर विविध कारणों से अब जाना मुझे इतना सरल नहीं लगता। पचास समस्याएँ आड़े आती हैं। अस्तु।

फरवरी की कड़कती ठंड के बीच एम्स्टर्डम हवाई अड्डे पर उतरकर मैं सड़क मार्ग से हेग पहुँच गया। वहाँ समुचित प्रबंध होने के कारण मैंने उसे 'आधार आवास' बना लिया। एम्स्टर्डम देश की राजधानी है, बड़ा नगर है जहाँ अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा है तथापि हेग छोटा होने के बावजूद सुंदर नगर है जहाँ सभी दूतावास, वाणिज्य कार्यालय, अंतरराष्ट्रीय–न्यायालय, देश की संसद आदि महत्वपूर्ण संस्थान हैं। यहाँ के ट्यूलिप्स (पुष्प) विश्वभर में प्रसिद्ध हैं जो कई दिनों तक पानी के बिना भी खिले रह सकते हैं। व्यापक स्तर पर यहाँ ट्यूलिप्स की खेती होती है जिसके निर्यात से ये करोड़ो रुपया कमाते हैं।

जहाँ तक हिंदी का प्रश्न है, वह अन्य यूरोपीय देशों के समान, यहाँ भी दुर्लभ और दुर्गम्य है। वे 'डच' भाषा बोलते हैं और उसी में यहाँ का सब कार्य व्यवहार चलता है। यहाँ हिंदी की खोज भूसे के ढेर में सुई ढूँढ़ने जैसा है। हिंदी यहाँ क्योंकर होगी? भारतीय घरों को छोड़कर हिंदी कहीं बोली सुनी नहीं जाती। इस मरुस्थल में एक दिन लघु जल स्रोत के दर्शन हुए।

अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के मुख्य द्वार के पार्श्व में संसार की और भाषाओं के साथ हिंदी (देवनागरी अक्षरों) में 'स्वागतम्' और 'अतिथि देवो भव' लिखा देखकर मैं खुशी से उछल पड़ा। इतनी दूर अपने देश की भाषा के दर्शन हुए। उत्साह में मैंने उसे बार–बार पढ़ा; कई कोणों से देखा। ये अक्षर धातु के बने हुए थे। यह भी अतिरिक्त प्रसन्नता की बात है कि भारत के दो विधि–वेत्ता दलबीर भंडारी और नागेंद्र सिंह यहाँ न्यायाधीश के रूप में काम कर चुके हैं। इसके सामने एक विश्व शांति–पथ बना हुआ है जो विभिन्न देशों से मंगवाए पत्थरों से बना है। 198 देशों से पत्थर मंगवाए गए थे परंतु केवल 96 देश ही पत्थर भेज पाए। 'आई' वाले वर्णक्रम में इंडिया यानी भारत का पत्थर साफ़ दिखाई देता है। शांति के किसी भी उपक्रम में भारत का योगदान सदा ही रहा है। निकट ही एक शांति–ज्योति प्रज्ज्वलित है जो सदा प्रकाशित रहती है। इसकी स्थापना 1999 में की गई थी। पाँच महाद्वीपों से सात शांति–ज्योतियाँ सागर, पर्वत, जंगल लांघकर यहाँ मानव शांति और कल्याण के लिए एक दूसरे में मिला दी गई थीं।

हेग में घूमते हुए मुझे कई व्यक्ति मिले जो चेहरे–मोहरे से भारतीय लगते थे किंतु जो हिंदी बोलने पर कोई जवाब हिंदी में नहीं देते थे वे डच ही बोलते थे। वस्तुतः ये सूरीनामी थे जो थोक के भाव यहाँ आकर रहने लगे हैं। सूरीनाम पर डचों का शासन रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उन लोगों को नीदरलैंड्स आना–रहना सुगम हो गया। बस में एक बार मैंने एक ड्राइवर को नमस्ते की, जिसके जवाब में उसने भी नमस्ते कहा। फिर उसके बाद वह डच बोलने लगा। ये सब उन लोगों के वंशज हैं जो भारत से अठारहवीं–उन्नीसवीं शताब्दी में गिरमिटिया मज़दूर बनकर वहाँ गए थे। मूलतः ये भारतवंशी हैं।

हेग से एक़दम सटा हुआ लाइडन विश्वविद्यालय है। वहाँ के हिंदी प्रोफ़ेसर मोहन के. गौतम मुझे कई बार दिल्ली में मिले थे। मैं उन्हें मिलने और विभाग देखने की गर्ज से वहाँ गया। पहुँचने पर पता चला, वे रिटायर हो गए हैं। कोई संपर्क–सूत्र, फोन आदि मेरे पास नहीं था। अतः मिलना न हुआ। यहाँ जे. एन.यू. से एक प्राध्यापक अभिषेक अवतंस थे परंतु वे अपने कमरे में नहीं थे और कोई बताने वाला भी नहीं था कि वे कब या कहाँ मिलेंगे। वस्तुतः लाइडन विश्वविद्यालय तकनीकी केंद्रित है। विदेशों में अधिकतर सीधे–सीधे हिंदी विभाग नहीं होता। कहीं वह एशियन भाषाएँ और संस्कृति के, तो कहीं वह एरिया स्टडीज़ के अंतर्गत पढ़ाई जाती है। अतः उसे ढूँढना सरल कार्य नहीं होता।

मेरा सफर उसके बाद भी जारी रहा। मैं स्कॉटलैंड के शहर एबरडीन पहुँचा। वहाँ भी एक छोटी सी यूनिवर्सिटी थी परंतु वहाँ हिंदी के अध्ययन–अध्यापन की कोई संभावना नहीं थी। केवल एक दिन के लिए स्कॉटलैंड की राजधानी एडिनबर्ग गया जो बहुत बड़ा नगर है। अवश्य ही वहाँ कोई विश्वविद्यालय होगा। कहना मुश्किल है कि वहाँ हिंदी विभाग होगा या नहीं। उसे ढूँढने की बजाय मैं पर्यटक के रूप में ऐतिहासिक इमारतें, दुर्ग, बाज़ार–गलियाँ और विशिष्ट 'शोज़' देखता रहा।

तदंतर मैं ज्यूरिख के लिए निकला। जानबूझकर मैंने यह यात्रा बस से की ताकि मुझे ज़मीनी हकीकत और लोकजीवन की कुछ झलक मिलती रहे। यात्रा की दृष्टि से यह यात्रा बहुत रोमांचक थी।

ज़्यूरिख एक महानगर है जो कभी स्वतंत्र राज्य भी रहा था। नगर, कला भवन, संग्रहालय, जनजीवन देखा किंतु हिंदी के कहीं दर्शन नहीं हुए; हो सकते नहीं थे। हाँ, कुछ रेस्तराँ/होटलों में भारतीय व्यंजनों के नाम प्रचलित थे। प्राकृतिक शोभा की दृष्टि से ज्यूरिख क्या पूरा स्विट्जरलैंड अनुपम है किंतु हिंदी दर्शन की दृष्टि से स्कॉटलैंड और स्विट्ज़रलैंड की यात्राओं की उपलब्धि लगभग शून्य थी।

❑❑❑

सामाजिक समस्याओं पर आधारित एकांकियाँ

निधि शर्मा

डॉ इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ द्वारा लिखित 'वर्तमान हिंदी नाटकः 16 नाटक' पुस्तक में 'पश्चाताप', 'पूजा का प्रसाद', 'पुलिस', 'भ्रमजाल', 'जॉकपोट', 'सुबह का भूला', 'क्रांतिकारी मजदूर', 'तलाक क्यों', 'ड्रग्स धंधा', 'वॉरेंट, 'जैसी करनी वैसी भरनी', 'मामला कोर्ट का', 'सत्यमेव जयते', 'कंजूस', 'श्रीमती कीरकीर' और 'परिणाम' इन नाटकों को मंचन के लिए प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि. नई दिल्ली से प्रकाशित है। डॉ. इंद्रनाथ ने मॉरिशस में हिंदी नाटकों के मंचन के लिए 1970 के दशक से लिखना प्रारंभ किया। डॉ. इंद्रनाथ को मॉरिशस में उनके 'कृयोली' भाषा में लिखे नाटक के लिए (Justice certla Justic 2012) सर्वश्रेष्ठ नाटक और सर्वश्रेष्ठ नाटककार का प्रथम पुरस्कार मिला था।

डॉ. इंद्रनाथ के द्वारा लिखित सभी सोलह नाटक वर्तमान सामाजिक समस्याओं पर आधारित हैं। ये नाटक पाठक को न केवल उस स्थिति से अवगत कराते हैं बल्कि उसे सोचने को भी मजबूर करते हैं कि किस प्रकार उस स्थिति से निपटा जा सकता है। मानव मनोविज्ञान का अच्छा परिचय हमें इन नाटकों में देखने को मिलता है।

'पश्चाताप' इस नाटक में एक बुजुर्ग महिला के साथ उसके पुत्र एवं पुत्रवधू द्वारा किए गए दुर्व्यवहार का वर्णन किया गया है। परंतु बुजुर्ग महिला का नाती अपनी दादी को अत्यंत प्यार करता है एवं उन्हें वृद्धाश्रम भेज दिए जाने का विरोध करता है और बीमार हो जाता है। महिला को वृद्धाश्रम से उसके पुत्र, पुत्रवधू, अपने बीमार बेटे के कारण वापस ले आते हैं परंतु बुजुर्ग महिला की मृत्यु हो जाती है। तब उसके बेटे–बहू बहुत पश्चाताप करते हैं। नाटक अच्छा लिखा गया है परंतु नाटक का अंत और सुखद बनाया जा सकता था। बुजुर्ग महिला को घर वापस लाकर भी बेटा–बहू पश्चाताप कर सकते थे तब यह नाटक और सजीव लगता। किसी की मृत्यु के पश्चात् अपने कर्म के लिए पश्चाताप करने से बेहतर होता कि उसके जिंदा रहते ही अपने दुर्व्यवहार की माफी माँग ली जाए। नाटक में स्थानीय शब्दों का प्रयोग किया गया है।

पुस्तक में दूसरा नाटक 'पूजा का प्रसाद' है। इस नाटक में बहुत खूबसूरती से एक महिला पुजारिन का हृदय परिवर्तन होते दिखाया गया है। गरीब मैले–कुचैले कपड़े और भूख से बेहाल बालक को मंदिर के पास भोजन माँगते देख वह उसे भगा देती है। परंतु मंदिर का पुजारी जब उस बालक को दोबारा मंदिर प्रसाद देने के लिए लाता है, तब वह महिला उस बालक को डाँटती है परंतु पुजारी उसे समझाते हैं कि मंदिर सभी के लिए है और भगवान के लिए सभी बराबर हैं। वह

वर्तमान हिंदी नाटक : 16 नाटक / नाटककार : डॉ. इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ / स्टार पब्लिकेशंस 4 / 5–बी, आफस अली रोड, प्रा. लि., नई दिल्ली / संस्करण – 2019 / पृष्ठ–168

अमीर–गरीब नहीं देखते केवल सेवा भाव देखते हैं। इसके लिए मंदिर का पुजारी सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता का उदाहरण देते हुए भक्ति में सादगी की बात कहते हैं। इसी के साथ–साथ पंडित जी राम द्वारा भीलनी शबरी के झूठे बेर खाने का दृष्टांत देते हुए अपनी बात उस महिला पुजारिन को समझाते हैं। इतना ही नहीं कृष्ण एवं सुदामा की मित्रता तथा गरीब सुदामा का कृष्ण से मिलने जाने की घटना का भी पुजारी उल्लेख करते हैं। इन सब दृष्टांतों का असर यह होता है कि महिला पुजारिन को अत्यंत पश्चाताप होता है और वह साध्वी भेष में पुजारी के पास आती है और सच्चे मन से सब कुछ त्याग कर ईश्वर की उपासना करना चाहती है। यहाँ इस नाटक की सबसे खास बात महिला पुजारिन के हृदय परिवर्तन को दर्शाना है। वास्तव में यह नाटक वर्तमान के काफी प्रासंगिक एवं व्यावहारिक है क्योंकि साध्वी बनने से ज्यादा व्यावहारिक है समाज में रहकर समाज के कल्याण के लिए कार्य करना एवं भटके हुए लोगों का मार्ग–दर्शन करना।

तीसरे नाटक का शीर्षक 'पुलिस' है। जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है यह नाटक ईमानदार, निष्ठावान, कर्तव्य परायण पुलिस कर्मी राजेश के ईद–गिर्द घूमता है। राजेश अपने पिता रामकरण को नशे की हालत में कार से एक व्यक्ति रामदत्त को घायल करने के जुर्म में पकड़कर उसके केस को अदालत में भेज देता है। पिता रामकरण अपने बेटे राजेश से कोर्ट में अपने बयान को बदलने के लिए बहुत दबाब डालता है। परंतु पुत्र राजेश कहता है कि आपने गलती की है। राजेश की माँ भी सड़क दुर्घटनाओं के अनेक कारणों को बताती है और अपने बेटे का ही साथ देती है। अदालत में मजिस्ट्रेट के आगे बहस होती है और पिता रामकरण कहते हैं कि उनकी गलती नहीं थी बल्कि घायल व्यक्ति ही असावधानीवश सड़क पार कर रहा था। मजिस्ट्रेट के यह कहने पर कि पुलिसकर्मी ने अल्को–टेस्ट प्रमाणित किया है, तब रामकरण की आँखे खुलती हैं। वह मजिस्ट्रेट राजेश की कर्तव्यपरायणता की बहुत तारीफ करता है। रामकरण के पश्चाताप के कारण मजिस्ट्रेट उस पर चार हजार रुपए का जुर्माना लगाकर उसे छोड़ देते हैं। इस नाटक में बहुत से सामाजिक मुद्दों को उठाया गया है यथा– सड़क दुर्घटना के विभिन्न कारण– शराब पीकर वाहन चलाना, फोन पर बात करते हुए वाहन चलाना आदि, पुलिसकर्मी की कर्तव्यनिष्ठा, कैसे वह अपने पिता की गलती को नजर अंदाज नहीं करता जबकि पुलिसकर्मी घूस लेकर बयान बदल देते हैं आदि। यह नाटक शिक्षाप्रद है।

चौथा नाटक 'भ्रमजाल' है। इस नाटक में पिता रामलाल अपने बीमार पुत्र 'राजेश' का डॉक्टर से इलाज करवाने के बजाय मुरली के चक्कर में फँस कर गुरु घंटाल से अपने पुत्र का इलाज करवाता है। गुरु घंटाल अपने भ्रमजाल में फँसा कर रामलाल से आठ हजार रुपए उसके पुत्र राजेश का भूत भगाने के लिए ऐंठ लेता है। इलाज के बिना राजेश की अगले दिन मृत्यु हो जाती है। रामलाल को मार्ग में एक साधु मिलता है, जो ईश्वर पर विश्वास रखने के लिए कहता है पर रामलाल उसकी बात पर ध्यान नहीं देता। बेटे की मृत्यु के बाद वही साधु रामलाल को फिर मिलते हैं परंतु अब बहुत देर हो चुकी है। साधु रामलाल से ईश्वर में नेह लगाने के लिए कहता है। इस नाटक के माध्यम से पाठकों को अंधविश्वासों में न फँसने की शिक्षा दी गई है।

पाँचवा नाटक 'जैकपॉट' है। यह नाटक भी सामाजिक बुराई जुआ, शराब एवं बुरी संगति पर आधारित है। इस नाटक की खास बात है कि स्वयं लेखक डॉ. इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ ने पिता की भूमिका अदा की है। पिता अपने बेटे शिवराज एवं बहू नंदिता को अपने सामने अपनी सारी जमीन दे देते हैं। पिता के मरने के कुछ समय बाद ही शिवराज बुरी संगति में पड़ जाता है एवं कैसीनों, घुड़दौड़, शराब तथा लॉटरी की बुरी लत उसे लग जाती है। शिवराज के दोस्त उसे अंततः

लॉटरी का टिकट खरीदने के लिए राजी कर लेते हैं। जबकि उसकी बीवी नंदिता उसे बताती है कि घर में खाने के लिए कुछ भी नहीं है और बच्चे भूख से तड़प रहे हैं। शिवराज अपने पास रखे कुछ पैसे लेकर राशन खरीदने के लिए सुपर मार्केट जाता है परंतु रास्ते में दोस्तों के प्रभाव में आकर लोतो (लॉटरी) का टिकट खरीद लेता है। घर बिना राशन के पहुँचता है और रात में टी.वी. में अपनी लॉटरी का नंबर निकलने का इंतजार करता है परंतु लॉटरी का नंबर नहीं निकलता एवं वह सुबह मरा हुआ मिलता है। बुरी संगति से कैसे एक सुखद गृहस्थी बर्बाद होती है, इसका चित्रण इस नाटक में है और यह पाठकों को सोचने पर मजबूर करता है कि हमेशा सही राह पर चलना चाहिए।

अगला नाटक 'सुबह का भूला' है। शीर्षक से ही स्पष्ट हो रहा है कि इसमें एक लड़के का बुरी संगति छोड़कर अच्छा जीवन बिताने के परिवर्तन से है। बबुआ की दो बहनें पूनम एवं सीमी तथा एक भाई विजय है। सभी अपने माता–पिता की आज्ञा पालन करते हैं एवं संस्कारी हैं। परंतु बबुआ बुरी संगति में पड़ गया है। वह गाँव की लड़कियों को अपने दोस्तों के साथ छेड़ता है। सिगरेट, शराब एवं नशे का सेवन करता है। कॉलेज से भी उसकी शिकायत आती रहती है। उसकी माँ उसे बहुत समझाने की कोशिश करती है। फिर एक दिन बबुआ का किसी से झगड़ा हो जाता है। एवं उसके सिर में चोट लगने के कारण खून बहने लगता है एक साधु उसी समय घर पर आते हैं और वह बबुआ की माँ के कहने पर उसे समझाते हैं तथा बुरी संगति के दुष्परिणाम उसे बताते हैं। बबुआ अपने किए की क्षमा माँगता है एवं बुरी संगति से दूर रहने की तौबा करता है।

पुस्तक का सातवाँ नाटक 'क्रांतिकारी मजदूर' है, जिसमें गिरमिटिया मजदूर या भारत से आए गुलाम मजदूरों के वंशजों की त्रासदी का वर्णन है। ये मॉरिशस में रहते हैं एवं इनके ऊपर अंग्रेज सरदार जुल्म करते हैं। खेतों में उनसे काम करवाते हैं। उन्हें आराम भी नहीं करने देते हैं। वहाँ पर गांधी जी आते हैं एवं मजदूरों को भाषण देते हैं। मजदूरों से वे अपने बच्चों को शिक्षित करने के लिए कहते हैं। अत्याचार, अन्याय एवं शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए कहते हैं। साथ ही साथ सभी को एकताबद्ध होने के लिए कहते हैं। मजदूर गांधी जी की बातों से पूर्णतः सहमत होते हैं एवं आजादी के लिए सोचते हैं।

तब अंत में पार्श्व से आवाज आती है कि मजदूरों ने गांधी के संदेश को अपनाया। देश को स्वतंत्र किया एवं 12 मार्च, 1961 को एक कुली पुत्र ने झंडा फहराया। यह नाटक ऐतिहासिक घटना की पुष्टि करते हुए मजदूरों पर अंग्रेजों द्वारा किए गए दुर्व्यवहार का चित्रण करता है।

'तलाक क्यों' यह नाटक प्रेम विवाह किए युगल देवन एवं सरोज के इर्द–गिर्द घूमता है। देवन अच्छी नौकरी की तलाश में इंगलैंड चला जाता है और वहाँ किसी गोरी मेम के चक्कर में फँसकर अपनी पत्नी सरोज से तलाक माँगता है। सरोज अत्यंत दुखी होती है पर अंत में देवन वापस मॉरिशस आकर सरोज से माफी माँगता है क्योंकि वह स्त्री देवन को छोड़कर किसी अन्य के साथ चली जाती है। यह नाटक केवल देवन सरोज के पुनः मिलन तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि एक और परिवार कुंदन एवं उसकी पत्नी के तलाक की समस्या को भी सुलझाता है। शीर्षक एक तरह से घटना का पूरा विवरण देता है।

'ड्रग्स धंधा' नाटक ड्रग्स में लिप्त लोगों से संबंधित है, जिसमें एक गाँव के लोग अन्य गाँव के लोगों को पैसा कमाने के लालच में अपने ड्रग्स के धंधे में लगा लेते हैं। पर ड्रग्स के व्यापारी के नौकरों में पैसे के बँटवारे में झगड़ा हो जाता है और पुराना नौकर जो ज्यादा पैसा लेना चाहता है नए नौकर को गोली मार देता है और वह पकड़ा जाता हैं। पुराने नौकर को लंबी सजा हो जाती है। पर वह अपने मालिक के धंधे के बारे में अदालत

में बता देता है। मालिक भी पकड़ा जाता है वह भी लंबी सजा पाता है। इस तरह ड्रग्स के धंधे का अंत सजा में होता है। वस्तुतः ड्रग्स जैसे अवांछित धंधों के दुष्परिणामों की बखूबी प्रस्तुति द्वारा, इस नाटक का मंतव्य और संदेश है।

अगला नाटक 'वॉरंट' की विषय–वस्तु सास के साथ बेटे के दुर्व्यवहार को चित्रित करती है। बहू सास और उनके अपाहिज बेटे को घर से निकलवाना चाहती है जिसमें उसका पति भी सहयोग करता है। सास को अपने अपाहिज बेटे के साथ अपनी पड़ोसन, जो पति के निधन के बाद अकेली रहती है के यहाँ सुखद आश्रय मिल जाता है। कुछ समय बाद उसके बेटे का अपने पुत्र से जो बाप की तरह ही शराबी एवं जुआरी है झगड़ा हो जाता है। वह अपनी माँ से बिजली का बिल चुकाने के लिए पैसे माँगने जाता है। उसकी बात चल ही रही होती है कि उसके अपराधी बेटे को पुलिस पकड़ लेती है। उधर उसके पुराने अपराध के कारण कोर्ट में उपस्थित न होने पर उसे भी पुलिस पकड़ लेती है। इस पर नाटककार का निर्णयात्मक निष्कर्ष है 'जैसी करनी वैसी भरनी।'

नाटक 'जैसी करनी वैसी भरनी' सामाजिक सौहार्द्र तथा नायक के बेटे के चालाकी भरे व्यवहार इन दो प्रवृत्तियों को उजागार करता है। एक ओर उसके दो मित्र विभिन्न मतावलंबी हैं जो उसके हित साधन में लगे रहते हैं। दूसरी ओर दिखाने के लिए अपने माता–पिता का सम्मान एवं उन्हें खुश करने के लिए उन्हें समुचित आदर और सुविधा प्रदान करता है, जब तक कि पिता अपनी खेती तथा परिसंपत्ति उसके नाम नहीं कर देता। उसके बाद वह उन्हें घर से निकालने पर उतारू हो जाता है। उनके प्रतिरोध के कारण वह नशे में गुस्से में घर से बाहर निकलकर घातक हादसे का शिकार हो जाता है। खबर मिलने पर पिता वहाँ पहुँचकर उसके इलाज के लिए तैयार है, पर उससे पहले वह दम छोड़ देता है। 'वॉरेंट' एवं यह नाटक दोनों ही बेटों के दुर्व्यवहार के दुष्परिणामों को चित्रित करते हैं।

'मामला कोर्ट' का नाटक तीन मित्रों द्वारा घर में चोरी सड़क पर लूट और डाके सदृश बड़ी चोरी और हत्या से संबंधित हैं। उनमें से एक रेस में पैसा गँवाकर उसकी भरपाई की कोशिश करने के जुगाड़ में है। वह अपनी माँ के गहने चुराकर मिले धन तथा अपने मित्रों के पैसे रेस में गँवा देता है। फिर मित्र मिलकर पैसे प्राप्त करने का जुगाड़ करते हैं। रास्ते में एक महिला के गहने और पैसा लूटकर अपनी वाहवाही में खुश होकर डाके सदृश बड़ी योजना को कार्यान्वित करते है। पर उसमें से एक की हत्या हो जाती है। दूसरी ओर उसकी माँ सड़क पर लूट की शिकार पुलिस से शिकायत कर देती है। वे पकड़े जाते हैं और कोर्ट में पेश किए जाने पर अपने अपराध स्वीकार कर लेते हैं। फलस्वरूप वे दंडित होते हैं। इस प्रकार इन नाटकों में अपराध और दुर्व्यवहार के लिए दंडित होने का तारतम्य चलता रहता है।

अगला नाटक 'सत्यमेव जयते' सौतेले भाइयों से संबंधित है। छोटा भाई और उसकी पत्नी पहली माँ के बेटे के साथ दुर्व्यवहार करते हैं और उसे घर से निकालना चाहते हैं। उनकी माँ इस बात का विरोध करती है। इस पर उसे बहू और छोटे बेटे को जली–कटी सुननी पड़ती है। छोटे बेटे के जन्मदिन पर भाई–भाई में कहा सुनी होती है। बड़े भाई को घर छोड़कर जाने की कहने पर वह ऐसा करने से इनकार करता है। रुष्ट होकर छोटे भाई की पत्नी फोन करके पुलिस को बुलाती हैं और बड़े भाई पर इल्जाम लगाकर उसे गिरफ्तार करा देती है। छोटा भाई अपने मित्र को झूठी गवाही देने को रुपया और व्हिस्की की बोतल देकर तैयार कर लेता है, पर कोर्ट में मजिस्ट्रेट द्वारा झूठ बोलने पर कैद की सजा मिलने की कहे जाने पर वह सच बोल कर इल्जाम की पोल खोलकर छोटे भाई और उसकी पत्नी की बड़े भाई को सजा दिलाने की साजिश की पोल खोल देता है। इस पर

मजिस्ट्रेट उन्हें सख्त चेतावनी देता है। बड़े भाई पर पड़ोसी के पेड़ से लीची की चोरी जो उसने दो दिन की भूख के कारण पेट भरने के लिए की थी, का भी इल्जाम है। पर लीची के पेड़ की मालकिन भूख के कारण पेट भरने के लिए की गई चोरी को माफ कर देती है। मजिस्ट्रेट उसे छोड़ देता है। इस पर उसकी विमाता एवं वह खुश होकर 'सत्यमेव जयते' कहते हैं।

'कंजूस' नाटक एक ऐसे कंजूस से संबंधित है जो किसी को दान में पैसा नहीं देता। भगवान के मंदिर के लिए भी चंदा देने से मना कर देता है। उसके नौकर इस पर भगवान के दंड का भय दिखाते हैं। इस बीच में एक व्यक्ति उसे हॉर्स रेस में जीतने वाले घोड़े का नंबर बताकर उसकी भारी कमाई कराकर करोड़पति बना देता है, पर वह उसे भी भुगतान नहीं करता। नौकरों के द्वारा उसे भुगतान करने पर जोर देने पर उन्हें भी नौकरी से निकाल देता है। वे मिलते हैं और उसे मजा चखाने का षड्यंत्र करते हैं। वह व्यक्ति कंजूस को घोड़ों का गलत नंबर बता कर उसका धन समाप्त करा देता है। वह हाथ मलता रह जाता है। परिणाम सूद का धन शैतान खाता है कहावत चरितार्थ होती है।

'श्रीमती कीरकीर' नाटक की भाषा मुहावरों और लोकोक्तियों में प्रयोग के लिए विशिष्ट है। इसमें कॉलोनी की प्रमुख महिलाओं के मेल–जोल तथा रोजमर्रा की समस्याओं का चित्रण है। किशोर लड़कों का समवयस्क लड़कियों से छेड़छाड़ जैसी समस्याएँ जो लड़कों को समझाने से हल हो जाती हैं, का मंचन किया गया है। अपनी सामाजिक व अन्य समस्याओं का हल करने के लिए वे महिला मंडल का गठन करती हैं। पहले महिलाएँ सदस्यता लेने में आनाकानी करती हैं, पर अंततः अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए महिला मंडल की उपादेयता समझ जाती हैं और सदस्यता लेने के लिए तैयार हो जाती हैं।

अंतिम नाटक 'परिणाम' बच्चों पर उचित नियंत्रण न रखने और कुसंगत में पड़कर बिगड़ जाने की समस्या का चित्रण करता है। एक व्यक्ति के तीन बेटों में से दो बड़े बेटे लाड़ प्यार में बिगड़ कर शराब के लती हो जाते हैं। पैसे न होने पर शराब के लिए पैसा प्राप्त करने के लिए डाका डालने का निश्चय करके सुनार के यहाँ बहन की शादी के लिए गहने देखने का बहाना करते हैं और उसे तलवार दिखाकर हार लेकर भागते हैं। पुलिस द्वारा पकड़े जाने पर थाने ले जाए जाते हैं। तीसरे बेटे से सूचना पाकर माँ पिता से बेटों को छुड़ाकर लाने के लिए कहती है, परंतु वह कहता है कि उन्हें अपने दुष्कर्म का परिणाम भुगतने दो। माँ भी समझ जाती है और छोटे बेटे की प्रशंसा करके चुप हो जाती है। इस प्रकार बुरे काम का परिणाम बड़े बेटों की सजा में होता है।

नाटककार इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ के ये सभी नाटक वास्तव में एकांकी हैं। सीधे–सीधे कथानक के आधार पर ये चलते हैं, तथा मंचन के लिए उपयुक्त हैं।

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. डॉ. विमलेश कांति वर्मा, 73, वैशाली, पीतमपुरा दिल्ली–110034
   मो. नं. 9810441753, ईमेल– vimleshkanti@gmail.com
2. डॉ. जवाहर कर्नावट, बी 102 न्यू मिनाल रेसीडेंसी, न्यू मिनाल पानी की टंकी के पास, जे. के, रोड भोपाल–मध्यप्रदेश 462023, मो. नं. 7506378525, ईमेल– jkarnavat@gmail.com
3. डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, हिंदी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई 400098,
   मो. नं. 9167921043, ईमेल– dr.krupadhyay@gmail.com
4. डॉ. दिनेश चमोला डीन, आधुनिक ज्ञान विज्ञान संकाय एवं अध्यक्ष, भाषा एवं आधुनिक ज्ञान विज्ञान विभाग, उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय, 23, गढ़ विहार, फेज–1 मोहकमपुर, देहरादून– 248005, मो. नं. 9411173339, ईमेल– chamoladc@yahoo.com
5. डॉ. करुणा शर्मा, 132 आम्रपाली अपार्टमैंटस, प्लॉट न. 56, आई. पी. एक्सटेंशन, दिल्ली 110092, मो. नं. 9911103787, ईमेल– karunajee1957@gmail.com
6. सुनील कुमार तिवारी प्रोफेसर हिंदी विभाग, शहीद भगत सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110017, मो. नं. 9810734820, ईमेल– drsunilktiwari@gmail.com
7. अरुणा घवाना, निदेशक, ए–201, कैराली अपार्टमेंट, सेक्टर–3, प्लॉट नं.–10 द्वारका, नई दिल्ली–110078, मो. नं. 9717419701, ईमेल–arunaghawana@gmail.com
8. डॉ. अख्तर आलम, असिस्टेंट प्रोफेसर, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र–442001, ईमेल– dr.akhtaralam786@gmail.com
9. डॉ. अरुण मिश्र, बी–छह बालाजी अपार्टमेंटस (641/1) एक्सपोर्ट एन्क्लेव, नई बस्ती रोड देवली, नई दिल्ली–110062, मो. नं. 7982118439, ईमेल– karundev@gmail.com
10. डॉ. हेमांशु सेन, प्रोफेसर हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ–226025,
    मो. नं. 9936099993, ईमेल– hemanshusen_singh@yahoo.com
11. कमल किशोर गोयनका, ए–98, अशोक विहार, फेज–प्रथम, दिल्ली–110052,
    मो. नं. 9811052469, ईमेल– kkgoyanka@gmail.com
12. रेखा राजवंशी, 1, Leigh Place, west Pannat Hills NSW 2125,Australia
    मो. नं. +61403116301, ईमेल– rekha_rajvanshi@yahoo.com.au
13. दीप्ति अग्रवाल, ई–127 1, अशोक विहार दिल्ली–110052, मो. न. 9818521188,
    ईमेल– deeptiaggarwalmail@gmail.com
14. डॉ. हरप्रीत कौर, सहायक प्राध्यापक, अनुवाद अध्ययन विभाग म. गां. अं. हि. वि. वि. वर्धा, महाराष्ट्र–442001, मो. नं. 9158197303, ईमेल– dr.harpreetkaur@gmail.com
15. डॉ. चिट्टि अन्नपूर्णा, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय, मेरीना कैंपस, चेन्नई–600005, मो. नं. 9952952081, ईमेल– chittipoornima@gmail.com
16. राधेश्याम भारतीय, 281–सी, उत्कर्ष, मॉडल टाउन के पास विनोबा विहार, मालवीय नगर, जयपुर–302017, मो. नं. 9413395751, ईमेल– bhartiya.radheyshyam3@gmail.com
17. डॉ. अमिला दमयन्ती, Lecturer, Psychological councellor Phd (India DBHPS), MA (Kelaniya), PGDC (colombo), BA(Kelaniya) Department of Indian &Asian Dance Faculty of Dance & Drama University of the Visuals PerformingArts Colombo-7
    मो. नं. 94711213788 ईमेल–amilawijalat@gmail.com

18. डॉ. राजेंद्र सहगल, 40, सिद्धार्थ अपार्टमेंट, नजदीक मियॉवाली नगर, रोहतक रोड, नई दिल्ली–110087, मो. नं. 9873170632, ईमेल– r.sehgal1952@gmail.com
19. सुएता दत्त चौधरी, LOT 18 Rambisessar road Sawani Nausori, FIZI, Phone-6799969921
20. सुरेश ऋतुपर्ण, निवासः 221, प्रभावी अर्पाटमेंट, सेक्टर 10,फ्लैंट–29 बी, द्वारका, नई दिल्ली–110075 ईमेल–rituparna.suresh@gmail.com
21. शैलजा सक्सेना, Co-Foundig Director-Hindi Writers guild, Canada, Phone-1-905-847-8663(Home), ईमेल–shailjasaksena@gmail.com
22. सुरेशचंद्र शुक्ल, Grevligngveien 2G 0595-Olso Norway, मो. नं. 8800516479, ईमेल– Speil.nett@gmail.com
23. सुनंदा वर्मा, 42 वी. पी. एन रोड, सिंगापुर 119793, मो. नं. 6592378904, ईमेल– sunandaverma@yahoo.com
24. डॉ. राकेश पांडेय, 5 / 23, गीता कॉलोनी, दिल्ली–110031 मो. नं. 9810180765, ईमेल– pravasisansar@gmail.com
25. ओमप्रकाश शर्मा प्रकाश, सी 4बी / 110, पाकेट 13 जनकपुरी नई दिल्ली–110058, मो. नं. 9870103433, ईमेल– baggaskdu@gmail.com
26. डॉ. निधि शर्मा, डी टू 306, विजय मार्ग, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली–110029, मो. नं.9891326808, ईमेल– nidhisharma1883@gmail.com

❑❑❑

परिशिष्ट – 1

केंद्रीय हिंदी निदेशालय : संक्षिप्त परिचय

'अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्' के सूत्र वाक्य के साथ 1 मार्च, 1960 को शिक्षा मंत्रालय (वर्तमान व्याख्यानमाला में उच्चतर शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय) के अधीन केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना हुई। हिंदी को अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान करने, हिंदी के माध्यम से जन–जन को जोड़ने और हिंदी को वैश्विक धरातल पर प्रतिष्ठित करने के लिए निरंतर प्रयासरत यह हिंदी की शीर्षस्थ सरकारी संस्था है।

भारतीय संविधान के भाग 17 के अनुच्छेद 351 में हिंदी भाषा के विकास हेतु स्पष्ट निर्देश हैं: संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे, ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके तथा उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी के और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भारतीय भाषाओं के प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात् करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द–भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे। संविधान की इसी भावना और विशेष निर्देशों के अनुपालन हेतु केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना हुई।

कर्तव्य और दायित्व

क. हिंदी का विकास

1. शब्दकोश एवं विश्वकोश का निर्माण
2. हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण का निर्माण
3. प्रकाशकों के सहयोग से लोकप्रिय पुस्तकों को प्रकाशित करना
4. विश्वविद्यालयों एवं उच्च शिक्षा संस्थानों द्वारा हिंदी भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में किए जा रहे कार्यों का समन्वय करना

ख. देवनागरी लिपि

1. देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण करना
2. परिवर्धित देवनागरी का विकास एवं प्रचार करना
3. भारतीय भाषाओं की कुछ चुनिंदा रचनाओं को डिजिटल रूप में तैयार करना

ग. हिंदी का संवर्धन

1. द्विभाषी प्रवेशिकाओं (प्राइमर्स) का निर्माण
2. विदेशियों के लिए हिंदी प्रवेशिकाओं (प्राइमर्स) का निर्माण
3. भाषा के विभिन्न पाठों की सीडी तैयार करना
4. हिंदीतर क्षेत्रों में हिंदी पुस्तकों का निःशुल्क वितरण
5. हिंदी सूचना केंद्र की स्थापना

घ. पत्रिकाएँ एवं ग्रंथों का प्रकाशन

1. भाषा (द्वैमासिक)
2. वार्षिकी
3. साहित्यमाला

ङ विस्तार कार्यक्रम

1. प्राध्यापक व्याख्या–माला
2. छात्र अध्ययन यात्रा
3. हिंदीतरभाषी हिंदी नवलेखक शिविर
4. राष्ट्रीय संगोष्ठी
5. शोध छात्र यात्रा अनुदान

च. पुरस्कार

1. हिंदीतर भाषी हिंदी लेखक पुरस्कार
2. शिक्षा पुरस्कार

छ. हिंदी परीक्षाओं की मान्यता संबंधी योजना

ज. हिंदी में पत्राचार पाठ्यक्रम

हिंदी मे सर्टिफिकेट, डिप्लोमा, एडवांस डिप्लोमा और सिविल सेवा हिंदी पाठ्यक्रम।

झ. हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए वित्तीय सहायता

1. हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं को वित्तीय सहायता।
2. हिंदी की पांडुलिपियों के प्रकाशन के लिए वित्तीय सहायता।

ञ. हिंदी पुस्तकों का निःशुल्क वितरण

ट. पुस्तक प्रदर्शनी एवं बिक्री

निदेशालय का मुख्यालय नई दिल्ली में है। इसके चार क्षेत्रीय कार्यालय चेन्नई, हैदराबाद, गुवाहाटी व कोलकाता में हैं।

परिशिष्ट – 2

निदेशालय के महत्वपूर्ण प्रकाशन

शब्दकोश

क्रम सं.	पुस्तकों के शीर्षक
1.	अभिनव हिंदी कोश
2.	हिंदी शब्द सिंधु (डिजिटल) संस्करण–1
3.	भारतीय भाषा कोश
4.	तत्सम शब्द कोश
	समेकित हिंदी संयुक्त राष्ट्रभाषा कोश
5.	हिंदी पारिभाषिक लघुकोश
6.	बृहत हिंदी–हिंदी कोश
	1. स्वर खंड
	2. व्यंजन खंड
	द्विभाषा कोश
7.	हिंदी–गुजराती कोश
8.	हिंदी–सिंधी कोश
9.	हिंदी–उर्दू कोश
10.	हिंदी–तमिल कोश
11.	हिंदी–तेलुगु कोश
12.	हिंदी–असमिया कोश
13.	हिंदी–मलयालम कोश
14.	हिंदी–ओड़िया कोश
15.	हिंदी–मराठी कोश (पुराना संस्करण)
16.	हिंदी–कश्मीरी कोश
17.	ओड़िया–हिंदी कोश
18.	मलयालम–हिंदी कोश
19.	उर्दू–हिंदी कोश
20.	कश्मीरी–हिंदी कोश
21.	पंजाबी–हिंदी कोश
22.	तमिल–हिंदी कोश
23.	गुजराती–हिंदी कोश
24.	व्यावहारिक हिंदी–अंग्रेजी लघु कोश
	त्रिभाषाकोश
25.	हिंदी–गुजराती–अंग्रेजी कोश, खंड (I-II-III)
26.	हिंदी–तमिल–अंग्रेजी कोश, खंडख(I-II-III)
27.	हिंदी–मलयालम–अंग्रेजी कोश, खंडख(I-II-III)

28. हिंदी–कश्मीरी–अंग्रेजी कोश, खंडख(I-II-III)ख
29. हिंदी–बांग्ला–अंग्रेजी कोश, खंडख(I-II-III)
30. हिंदी–सिंधी–अंग्रेजी कोश
31. गुजराती–हिंदी–अंग्रेजी कोश, खंड (I-II-III) (पुराना संस्करण)
32. हिंदी–मराठी–अंग्रेजी कोश, खंडख(I-II-III)
33. हिंदी–कन्नड–अंग्रेजी कोश, खंडख(I-II-III)ख (पुराना संस्करण)
34. तमिल–हिंदी–अंग्रेजी कोश, खंडख(I-II)
35. मराठी–हिंदी–अंग्रेजी कोश, खंडख(I-II)ख
36. हिंदी–पंजाबी–अंग्रेजी कोश, खंड (I-II-III) (नया संस्करण)
37. हिंदी–असमिया–अंग्रेजी कोश, खंडख(I-II-III) (पुराना संस्करण)
38. बांग्ला–हिंदी–अंग्रेजी कोश
39. हिंदी–बोडो–अंग्रेजी कोश

संयुक्त राष्ट्र तथा अन्य विदेशी भाषा कोश

40. हिंदी–स्पेनी कोश
41. हिंदी–अरबी कोश
42. हिंदी–चीनी कोश
43. हिंदी–फ्रांसीसी कोश
44. चेक–हिंदी कोश (नया संस्करण)
45. जर्मन–हिंदी कोश (भाग 1–2)
46. जर्मन–हिंदी कोश (भाग 3–4)
47. हिंदी–फारसी कोश
48. हिंदी–इंडोनेशियाई कोश
49. हिंदी–सिंहल कोश
50. हिंदी–बर्मी कोश
51. हिंदी–नेपाली कोश
52. रूसी–हिंदी कोश
53. स्पेनी–हिंदी कोश
54. अरबी–हिंदी कोश
55. फ्रांसीसी–हिंदी कोश
56. चीनी–हिंदी कोश
57. हिंदी–स्वाहीली कोश
58. चेक–हिंदी कोश, (संशोधित संस्करण)
59. नेपाली–हिंदी कोश
60. इंडोनेशियाई–हिंदी कोश

अन्य उपयोगी पुस्तकें

61. ए–बेसिक–ग्रामर ऑफ माडर्न हिंदी
62. सूर–शतक (हिंदी–मराठी)
63. सूर–शतक (हिंदी–तमिल)
64. सूर–शतक (हिंदी–मलयालम)
65. सूर–शतक (हिंदी–कन्नड)
66. भारतीय निबंध
67. भारतीय एकांकी
68. भारतीय उपन्यास
69. भारतीय नाटक एवं रंगमंच
70. भारतीय कविता (1961–1990)
71. भारतीय कहानी
72. भारतीय कविता
73. भारतीय उपन्यास (1991–2000)
74. भारतीय एकांकी
75. भारतीय भाषा परिचय
76. भारतीय कवयित्रियाँ (भाग–1)
77. हिंदी लेखक संदर्भिका
78. भारतीय कविता में राष्ट्रीय चेतना
79. इंदिरा जी का हिंदी प्रेम
80. स्वातंत्रयोत्तर भारतीय साहित्य
81. नागरीदास ग्रंथावली
82. हिंदी पाठमाला (खंड 1 व 2)
83. देवनागरी लिपि अभ्यास पुस्तिका
84. देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण
85. हिंदी–अंग्रेजी वार्तालाप पुस्तक
86. हिंदी–कश्मीरी वार्तालाप पुस्तक
87. असमिया–हिंदी वार्तालाप पुस्तक
88. हिंदी–तेलुगु वार्तालाप पुस्तक
89. हिंदी–तमिल वार्तालाप पुस्तक
90. मलयालम–हिंदी वार्तालाप पुस्तक
91. हिंदी–चेक वार्तालाप पुस्तक
92. हिंदी–रूसी वार्तालाप पुस्तक (पुराना संस्करण)
93. अंग्रेजी–हिंदी वार्तालाप पुस्तक
94. तमिल–हिंदी वार्तालाप पुस्तक
95. हिंदी–बंगला वार्तालाप पुस्तक
96. बंगला–हिंदी वार्तालाप पुस्तक
97. हिंदी–मलयालम वार्तालाप पुस्तक
98. हंगेरियन–हिंदी वार्तालाप पुस्तक
99. हिंदी–सिंहल वार्तालाप पुस्तिका

100. हिंदी–कोरियाई वार्तालाप पुस्तिका
101. हिंदी–अरबी वार्तालाप पुस्तिका
102. हिंदी–फारसी वार्तालाप पुस्तिका
103. हिंदी–पोलस्की वार्तालाप पुस्तिका
104. हिंदी–रूमानियाई वार्तालाप पुस्तिका
105. हिंदी–बल्गारियाई वार्तालाप पुस्तिका
106. हिंदी–नेपाली वार्तालाप पुस्तिका
107. हिंदी–बोडो वार्तालाप पुस्तिका
108. हिंदी–संस्कृत वार्तालाप पुस्तिका
109. हिंदी–सिंधी वार्तालाप पुस्तिका
110. हिंदी–असमिया वार्तालाप पुस्तिका

स्वयं शिक्षक पुस्तक

111. हिंदी–मलयालम स्वयं शिक्षक
112. हिंदी–तेलुगु स्वयं शिक्षक
113. हिंदी–ओड़िया स्वयं शिक्षक
114. हिंदी–तमिल स्वयं शिक्षक
115. मलयालम–हिंदी स्वयं शिक्षक
116. हिंदी–कन्नड स्वयं शिक्षक
117. बांग्ला–हिंदी स्वयं शिक्षक
118. कन्नड–हिंदी स्वयं शिक्षक

दृश्य श्रव्य सामग्री वार्तालाप पुस्तकों से सी. डी. निर्माण

119. कोंकणी–हिंदी–कोंकणी
120. मैथिली–हिंदी–मैथिली
121. मराठी–हिंदी–मराठी
122. गुजराती–हिंदी–गुजराती
123. पंजाबी–हिंदी–पंजाबी
124. मलयालम–हिंदी–मलयालम
125. ओड़िया–हिंदी–ओड़िया
126. कन्नड–हिंदी–कन्नड
127. अंग्रेजी–हिंदी–अंग्रेजी
128. बांग्ला–हिंदी– बांग्ला
129. हिंदी–तेलुगु–हिंदी
130. मिज़ो–हिंदी–मिज़ो
131. हिंदी–कश्मीरी–हिंदी
132. संथाली–हिंदी–संथाली

विविध पर आधारित सी. डी.

133. वेलकम टू इंडिया–हिंदी में 'आप', 'तुम' और 'तू' का प्रयोग
134. कर्ता और क्रिया का मेल बीच–बीच में 'ने' का खेल–हिंदी में 'तो', 'भी', और 'ही' का प्रयोग

135. वाक्य में 'को' का प्रयोग–हिंदी में मुहावरों का प्रयोग
136. हिंदी में लिंग का आधार, थोड़ा व्याकरण, थोड़ा व्यवहार
137. मुख्य क्रिया के साथ रंजक क्रिया, मिलकर बनाए संयुक्त क्रिया कर्ता–क्रिया की अन्विति
138. कर्ता–क्रिया की अन्विति–मानक हिंदी वर्तनी
139. लर्न हिंदी
140. संज्ञाओं और विशेषणों के बहुवचन रूप
141. आज्ञार्थक वाक्य संरचना
142. हिंदी में कृदंत
143. हिंदी में काल
144. हिंदी में कारक चिह्न
145. हिंदी का अखिल भारतीय स्वरूप (भाग–1)
146. हिंदी का अखिल भारतीय स्वरूप (भाग–2)
147. लोकगीत
148. हिंदी में समास
149. हिंदी में अलंकार
150. प्रयोजनमूल्क हिंदी (भाग–1)
151. प्रयोजनमूलक हिंदी (भाग–2)
152. उपसर्ग और प्रत्यय का तुलनात्मक अध्ययन
153. हिंदी की विकास यात्रा (भाग–1)
154. हिंदी की विकास यात्रा (भाग–2)
155. संज्ञा
156. सर्वनाम
157. विशेषण
158. भक्ति साहित्य की धारा (भाग–1)
159. भक्ति साहित्य की धारा (भाग–2)
160. कहावतें/लोकोक्तियाँ (भाग–1)
161. कहावतें/लोकोक्तियाँ (भाग–2)
162. क्रिया विशेषण
163. शब्द–विचार (भाग–1)
164. शब्द–विचार (भाग–2)
165. हिंदी साहित्य के सांस्कृतिक स्रोत (भाग–1)
166. हिंदी साहित्य के सांस्कृतिक स्रोत (भाग–2)
167. अनुवाद है आगर ज्ञान का सागर (भाग–1)
168. अनुवाद है आगर ज्ञान का सागर (भाग–2)
169. हिंदी में गद्य साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ (भाग–1)
170. हिंदी में गद्य साहित्य को प्रमुख प्रवृत्तियाँ (भाग–2)
171. हिंदी में गद्य साहित्य को प्रमुख प्रवृत्तियाँ (भाग–3)

172. क्रिया (भाग–1)
173. क्रिया (भाग–2)
174. क्रिया (भाग–3)
175. वर्ण–विचार (भाग–1)
176. वर्ण–विचार (भाग–2)
177. वर्ण–विचार (भाग–3)
178. कर्ता और क्रिया का मेल, बीच–बीच में 'ने' का खेल–हिंदी में लिंग का आधार, बांग्ला माध्यम में।
179. कर्ता और क्रिया का मेल, बीच–बीच में 'ने' का खेल–हिंदी में लिंग का आधार, तमिल माध्यम में।
180. कर्ता और क्रिया का मेल, बीच–बीच में 'ने' का खेल–हिंदी में लिंग का आधार, मलायलम माध्यम में।
181. शब्दकोश एक परिचय (भाग–1)
182. शब्दकोश एक परिचय (भाग–2)
183. शब्दकोश एक परिचय (भाग–3)
184. संधि (भाग–1)
185. संधि (भाग–2)
186. संधि (भाग–3)
187. हिंदी के बढ़ते कदम (भाग–1)
188. हिंदी के बढ़ते कदम (भाग–2)
189. हिंदी के बढ़ते कदम (भाग–3)
190. पारिभाषिक शब्दावली की विकास यात्रा (भाग–1)
191. पारिभाषिक शब्दावली की विकास यात्रा (भाग–2)
192. पारिभाषिक शब्दावली की विकास यात्रा (भाग–3)
193. वाक्य–विचार (भाग–1)
194. वाक्य–विचार (भाग–2)
195. वाक्य–विचार (भाग–3)
196. केंद्रीय हिंदी निदेशालय : एक परिचय
197. आधुनिक हिंदी पद्य साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ : भारतेंदु एवं द्विवेदी युग
198. आधुनिक हिंदी पद्य साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ : छायावादी काव्य
199. आधुनिक हिंदी पद्य साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ : प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद
200. राजभाषा हिंदी–संवैधानिक व्यवस्था
201. राजभाषा हिंदी–नीति कार्यान्वयन
202. राजभाषा हिंदी–संस्थागत प्रयत्न
203. इंग्लिश कमेंट्री (भाग 1–2)
204. मलयालम कमेंट्री (भाग 1–2)
205. ओडिया कमेंट्री (भाग 1–2)
206. तेलुगु कमेंट्री (भाग 1–2)
207. कन्नड कमेंट्री (भाग 1–2)
208. बांग्ला कमेंट्री (भाग 1–2)

209. कोंकणी कमेंट्री (भाग 1–2)
210. तमिल कमेंट्री (भाग 1–2)
211. वेलकम टू इंडिया–लर्न हिंदी
212. बातें करें शुरू 'आप', 'तुम' और 'तू'
213. कर्ता और क्रिया का मेल, बीच–बीच में 'ने' का खेल
214. वाक्य में 'को' का प्रयोग प्रकट करें विविध प्रयोग
215. हिंदी में लिंग का आधार, थोड़ा व्याकरण थोड़ा व्यवहार
216. हिंदी में 'तो', 'भी' और 'ही' प्रयोग कीजिए सही–सही
217. मुख्य क्रिया के साथ रंजक क्रिया, मिलकर बनाए संयुक्त क्रिया
218. कर्ता, क्रिया की अन्विति, अन्विति से बनता शुद्ध वाक्य अन्यथा बन जाता अशुद्ध वाक्य
219. मानक हिंदी वर्तनी–यदि हो सही वर्तनी का ज्ञान, हिंदी सीखना बेहद आसान
220. हिंदी में मुहावरों का सही प्रयोग

हिंदी के प्रचार–प्रसार एवं प्रगामी प्रयोग हेतु वैश्विक स्तर पर हिंदी के अध्ययन –अध्यापन हेतु केंद्रीय हिंदी निदेशालय, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय एवं भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा भारत से बाहर विदेशियों को हिंदी का बेसिक ज्ञान उपलब्ध कराने के उद्देश्य से समझौता ज्ञापन (MOU) के अंतर्गत कक्षाएँ प्रारंभ की गई हैं, जो ऑनलाइन मोड पर चल रही हैं।

❑❑❑

परिशिष्ट – 3

'भाषा' पत्रिका के अब तक प्रकाशित विशेषांक

1.	शांति रक्षा अंक	जून, 1964
2.	द्विवेदी स्मृति अंक	अगस्त, 1964
3.	लिपि विशेषांक	1968 ई.
4.	हिंदी भाषाविज्ञान विशेषांक	1973 ई.
5.	बाल विशेषांक	1979 ई.
6.	प्रेमचंद विशेषांक	1981 ई.
7.	विश्व हिंदी सम्मेलन अंक	1983 ई.
8.	रजत जयंती विशेषांक	मार्च–जून, 1985
9.	रजत जयंती परिशिष्टांक	सिंतबर, 1985
10.	तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन अंक	
11.	देवनागरी लिपि एवं मानक वर्तनी विशेषांक	मार्च–अप्रैल, 1996
12.	संत कबीर विशेषांक	मई–जून, 1998
13.	भारतीय लोक गीत विशेषांक	मार्च–अप्रैल, 1999
14.	संपर्क भाषा हिंदी के पचास वर्ष	जुलाई–अगस्त, 2000
15.	डॉ. नगेंद्र स्मृति अंक	मार्च–अप्रैल, 2001
16.	अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान विशेषांक	नवंबर–दिसंबर, 2001
17.	सूचना प्रौद्योगिकी एवं भारतीय भाषाएँ विशेषांक	मई–जून, 2002
18.	विदेशों में हिंदी साहित्य	मार्च–अप्रैल, 2003
19.	उत्तरपूर्वी साहित्य विशेषांक	नवंबर–दिसंबर, 2004
20.	भारतीय लोक साहित्य विशेषांक	जुलाई–अगस्त, 2005
21.	यायावर साहित्य विशेषांक	मई–जून, 2006
22.	बाल साहित्य विशेषांक	मई–जून, 2007
23.	हजारी प्रसाद द्विवेदी पर विशेष सामग्री	जुलाई–अगस्त, 2008
24.	रामधारी सिंह दिनकर पर विशेष सामग्री	सितंबर–अक्तूबर, 2008
25.	हरिवंश राय बच्चन पर विशेष सामग्री	नवंबर–दिसंबर, 2008
26.	अज्ञेय विशेषांक	नवंबर–दिसंबर, 2010
27.	कवि शमशेर पर केंद्रित अंक	जनवरी–फरवरी, 2011
28.	कवि नागार्जुन पर केंद्रित अंक	मार्च–अप्रैल, 2011
29.	कवि केदारनाथ अग्रवाल पर केंद्रित अंक	मई–जून, 2011
30.	उपेंद्रनाथ अश्क एवं फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ पर विशेष सामग्री	जुलाई–अगस्त, 2011
31.	रामविलास शर्मा विशेषांक	मई–जून, 2013

32.	भवानी प्रसाद मिश्र, गोपाल सिंह "नेपाली", विष्णु प्रभाकर एवं सआदत हसन "मंटो" पर केंद्रित अंक	जुलाई–अगस्त, 2013
33.	विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक	जुलाई–अगस्त–सितंबर–अक्तूबर, 2015
34.	शिवमंगल सिंह सुमन, भीष्म साहनी, डॉ. नगेंद्र, अमृत लाल नागर तथा पंडित गोपाल प्रसाद व्यास जन्मशती विशेषांक	नवंबर–दिसंबर, 2015
35.	अभिनवगुप्त और भारतीय साहित्य विशेषांक	सितंबर–अक्तूबर, 2016
36.	डॉ. अंबेडकर विशेषांक	जनवरी–फरवरी, 2017
37.	भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना विशेषांक	मार्च–अप्रैल, 2017
38.	पं. दीनदयाल उपाध्याय जन्मशती विशेषांक	सितंबर–अक्तूबर, 2017
39.	प्रवासी साहित्य विशेषांक	जनवरी–फरवरी, 2018
40.	भारतीय आत्मकथा साहित्य विशेषांक	मार्च–अप्रैल, 2018
41.	विश्व हिंदी सम्मेलन, मॉरिशस केंद्रित विशेषांक	जुलाई–अगस्त 2018
42.	गांधीः समग्र विचार–दर्शन विशेषांक	नवंबर–दिसंबर 2018
43.	साहित्यिक परिसंवाद विशेषांकः साहित्य एवं साहित्येतर अनुवाद	मई–जून 2019
44.	हिंदी एवं भारतीय भाषाओं का अंतर्संबंध	नवंबर–दिसंबर, 2019
45.	वैदिक ज्ञान विज्ञान विशेषांक	मार्च–अप्रैल 2020
46.	भारतीय एवं विश्व सिनेमा विशेषांक	जुलाई–अगस्त 2020
47.	नई शिक्षा नीति विशेषांक	मार्च–अप्रैल 2021
48.	राम तत्व मीमांसा विशेषाक	नवंबर–दिसंबर 2021
49.	पूर्वोत्तर भाषा साहित्य एवं संस्कृति विशेषांक	मार्च–अप्रैल 2022
50.	रामतत्व मीमांसा	नवंबर–दिसंबर 2021
51.	पूर्वोत्तर भाषा, साहित्य और संस्कृति विशेषांक	मार्च–अप्रैल 2021
52.	12वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, फ़ीजी केंद्रित विशेषांक	नवंबर–दिसंबर 2022
53.	स्वाधीन भारत में भाषा प्रौद्योगिकी का विकास (मातृभाषा एवं जनपदीय भाषा के संदर्भ में)	मार्च–अप्रैल 2022 (प्रकाशनाधीन)

साहित्यमाला के अंतर्गत प्रकाशित ग्रंथ

1.	भारतीय भाषाओं के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	1974 ई.
2.	भारतीय कहानी	1976 ई.
3.	भारतीय निबंध	1982 ई.
4.	इंदिराजी का हिंदी प्रेम	1982 ई.
5.	भारतीय एकांकी	1989 ई.
6.	भारतीय उपन्यास	1990 ई.
7.	जयशंकर प्रसादः सृजन के विविध आयाम	1990 ई.
8.	भारतीय नाटक एवं रंगमंच	1992 ई.
9.	साहित्यकार विवरणिका	1992 ई.
10.	भारतीय कवयित्रियाँ (भाग–एक)	1993 ई.
11.	स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य	1997 ई.
12.	निराला का कालजयी व्यक्तित्व	1998 ई.
13.	भारतीय कवयित्रियाँ (भाग–दो)	1998 ई.
14.	भारतीय कविता में राष्ट्रीय चेतना	1999 ई.
15.	भारतीय कविताः तीन दशक	2002 ई.
16.	भारतीय उपन्यासः अंतिम दशक	2006 ई.
17.	हिंदी और विभिन्न भाषाएँः तुलनात्मक अध्ययन (1961–1975)	2010 ई
18.	आदिवासी विमर्श	2015 ई.
19.	पूर्वोत्तर भारतीय साहित्य	2017 ई.
20.	पर्यावरण विमर्श–प्रकाशनाधीन	

❑❑❑

परिशिष्ट – 4

भाषा सामग्री सूची (जनवरी–फरवरी 2021 से जुलाई–अगस्त 2022)

जनवरी–फरवरी 2021

आलेख

1.	सुब्रह्मण्यम भारती की कविताओं में विश्व बंधुत्व की भावना	डॉ. पी. राजरत्नम
2.	लोकगीतों में गांधी	प्रो. हरीशकुमार शर्मा
3.	भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य में मूल्यों की अभिव्यक्ति	डॉ. अलका आनंद
4.	मेरी निगाह में फिरता है आज भी शमशेर	डॉ. पुरुषोत्तम कुंदे
5.	रामदरश मिश्र की कविता : अनुभव की बहुरंगी और आत्मीय दुनिया	डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी
6.	नागार्जुन : व्यक्तित्व तथा कृतित्व	डॉ. केशव राम शर्मा
7.	रेणु के मैला आँचल में ग्रामीण यथार्थ	शिव प्रकाश दास
8.	लोकदेवता धर्मराज और उनके देवान	अंबिकेश कुमार मिश्र
9.	'नो' मीन्स 'नो'	डॉ. संध्या वात्स्यायन
10.	कोई "कहाँ तक कहे युगों की बातें"	डॉ. सुमित्रा महरोल
11.	लोकसाहित्य में सामाजिक – सांस्कृतिक परिवेश (विशेष संदर्भ हिमाचली लोकसाहित्य)	डॉ. गुरमीत सिंह
12.	सिनेमा की सशक्त स्त्री अदाकारा : 'इंग्लिश–विंग्लिश' और 'मॉम' फिल्म के झरोखे से	डॉ. तृप्ता
13.	भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का अक्षय कोश : दशम ग्रंथ	डॉ. ममता सिंगला
14.	हिंदी में शोध : दशा एवं दिशा	प्रो. निरंजन कुमार
15.	हिंदी और असमिया के विशेषणों का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. प्रीति बैश्य
16.	ब्रजावली और हिंदी : भाषाई संदर्भ	प्रो. सूर्यकांत त्रिपाठी
17.	गांधी जी के स्वराज्य चिंतन की वैश्विक परिकल्पना	डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति
18.	भक्ति साहित्य आधारित सर्जनात्मक लेखनः कबीर केंद्रित पक्ष	नेहा मिश्रा

हिंदी कहानी

19.	दुनिया की सबसे खूबसूरत खराब हो गई पेंटिंग	सुशांत सुप्रिय
20.	किस गुनाह की सजा	शमा ख़ान

हिंदी कविता

21.	कोई हँसी बेचने आया था	अजय मलिक
22.	नर्मदा के घाट	प्रियदर्शी खैरा
23.	मैं ब्रिटेन में हूँ आजकल... लेकिन	तिथि ढोबले

अनूदित खंड

कहानी

24. औकात (मैथिली कहानी)	अनुवाद : 'पद्मश्री' उषाकिरण खाँ
25. एक वृक्ष की मृत्यु (डोगरी कहानी)	राजेश्वर सिंह 'राजू' अनुवाद : डॉ. भारतभूषण शर्मा

कविता

26. मूल और ब्याज (डोगरी/हिंदी)	पद्मा सचदेव अनुवाद : कृष्ण शर्मा
27. गुमशुदा मुहब्बत (पंजाबी/हिंदी)	शम्मी जालंधरी अनुवाद : नीलम शर्मा 'अंशु'

परख

28. राष्ट्र, समाज और मानवीय मूल्यों पर केंद्रित कविताएँ (चेतना के स्वर/कवि : कुमार हृदयेश)	डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय
29. एक विवेचन सात समंदर पार का (वृत्तांत सात समंदर पार का/योगेंद्र कुमार)	डॉ. रमेशचंद्र शर्मा
30. कठिन जीवन की सहज कथा (गंगा रतन बिदेसी/उपन्यास/मृत्युंजय कुमार सिंह)	डॉ. सुनील कुमार तिवारी

मार्च–अप्रैल 2021

संपादकीय

आलेख

1. नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति और भारतीय भाषाएँ	डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय
2. 'अनुवाद' बना नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का आधार स्तंभ	प्रो. पूरन चंद टंडन
3. नई शिक्षा नीति के तहत 'प्राथमिक शिक्षा में भाषा' पर एक दृष्टि	डॉ. आरती स्मित
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में महिला शिक्षा हेतु प्रावधान	डॉ. मोनिका पारीक
5. नई शिक्षा नीति 2020 में 'द लैंग्वेजेज ऑफ इंडिया' से भाषा शक्ति और भारत को जानने का अवसर	मीनाक्षी डबास "मन"
6. नई शिक्षा नीति त्रिपुरा के जनजातियों के जीवन में अमूल्य परिवर्तन लेकर आएगी	डॉ. बीना देवबर्मा
7. नई शिक्षा नीति और भारतीय भाषाओं में अंतर्संबंध	अखिलेश आर्येन्दु
8. भारतीय भाषाएँ और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020	डॉ. वेदप्रकाश
9. राष्ट्रीय शिक्षा नीति और मातृभाषा प्रसंग	प्रो. गजेंद्र कुमार पाठक
10. मातृभाषा में शिक्षा – सहजता का अर्थगर्भ मार्ग	डॉ. वसुधा गाडगिल
11. नई शिक्षा नीति एवं भारतीय भाषाएँ	प्रो. प्रदीप के. शर्मा
12. राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन में भारतीय भाषाओं की भूमिका	डॉ. अभिषेक शर्मा
13. नई शिक्षा नीति में राष्ट्रीय विकास का प्रमुख अस्त्र : अनुवाद	डॉ. हरीश कुमार सेठी
14. राष्ट्रीय शिक्षा नीति के परिप्रेक्ष्य में	डॉ. राज शेखर
15. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और मूल्यपरक शिक्षा : स्वामी विवेकानंद के विशेष संदर्भ में	डॉ. सत्येंद्र श्रीवास्तव
16. मातृभाषा में शिक्षा–नवीन संघर्षों का कंटकपथ	अंतरा करवड़े

17. शिक्षण संस्थानों की बढ़ती बेचैनी का परिणाम है नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 — डॉ. हरेंद्र सिंह
18. गुणवत्तापूर्ण और सर्व–समावेशी शिक्षा का दृष्टिपत्र : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 — प्रो. रसाल सिंह
19. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और भाषा — डॉ. बनवारी लाल मीना
20. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और साहित्य में शिक्षा के प्रश्न — डॉ. नृत्य गोपाल
21. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय भाषाओं की पुनर्स्थापना — संजय चौधरी
22. लिबरल आर्ट्स की ओर — गोपाल शर्मा
23. शिक्षा का मर्म और नई शिक्षा नीति — डॉ. शशिकांत मिश्र
24. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का भाषाई संदर्भ — डॉ. जयंत कर शर्मा
25. आखिर पूर्व प्राथमिक शिक्षण में सिखाना क्या है? — हरिराम
26. नई शिक्षा व्यवस्था 2020 : वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के सवाल तथा भारत सरकार की समाधान की रणनीतियाँ — डॉ. संजय कुमार
27. नई शिक्षा नीति में शिक्षा और भारतीय संस्कृति की सार्वभौमिक पहल — हेतराम
28. नई शिक्षा नीति और मातृभाषा — डॉ. बी. अशोक
29. हर शिक्षा नीति में शिक्षक की भूमिका — डॉ. शकुंतला कालरा
30. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की शिक्षा नीति — डॉ. राजरानी शर्मा
31. महान शिक्षा शास्त्री : जे. सर्वपल्ली राधाकृष्णन — डॉ. हरिसिंह पाल
32. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और भारतीय भाषाओं की भूमिका — डॉ. संतोष खन्ना
33. नई शिक्षा नीति में शिक्षक शिक्षा का विवेचन — डॉ. अनिल कुमार
34. मूल्य–शिक्षा प्रसार में महिलाओं की भूमिका — डॉ. रवींद्र कुमार
35. नई शिक्षा नीति में मातृभाषा के संदर्भ में सिक्किम का अध्ययन — डॉ चुकी भूटिया
36. नई शिक्षा नीति 2020 : एक विवेचन — विजय कुमार भारती

मई–जून 2021

आलेख

1. मैला आँचल : मुरझाए ओठों पर मुस्कान लाने की कामना — डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी
2. थारू–लोकगीतों का भाषिक सौंदर्य — डॉ. प्रणव शास्त्री
3. निर्मला पुतुल की 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' में चित्रित आदिवासी स्त्री, समाज और संस्कृति — डॉ. पठान रहीम खान
4. नाट्यकर्मी भारतेंदु हरिश्चंद्र — डॉ. ममता सिंगला
5. रेणु का साहित्य और सलीमा उर्फ़ सिनेमा — राकेश कुमार त्रिपाठी
6. रेणु के जीवन का भटकाव और रास्ता — भारत यायावर
7. रेणु होने का मतलब — राहुल राज आर्यन
8. फणीश्वरनाथ 'रेणु' के रिपोर्ताज में अंचल का यथार्थ रूप — प्रियंका कुमारी

9. फणीश्वरनाथ 'रेणु' के रिपोर्ताजों में निहित जनपक्षधरता — मो. दानीश
10. हिंदी उपन्यासों में ग्राम्य–चेतना : 'परती–परिकथा' के परिप्रेक्ष्य में — डॉ. नीलिमा वर्मा
11. प्रीति, रीति और नीति के कवि : बिहारी — डॉ. आलोक रंजन पांडेय
12. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : लोक संस्कृति और आस्था के सजग और मर्मी शिल्पी — अंबिकेश कुमार मिश्र
13. मैला आँचल : दास्तान–ए–चेथरिया पीर — डॉ. हरींद्र कुमार
14. भूमंडलीकृत भारतीय समाज में वृद्धों की स्थितियाँ (समकालीन कहानियों के आलोक में) — सविता धामा

यात्रा वृत्तांत

15. प्रकृति प्रेमियों का स्वर्ग–कूर्ग — अनीता शर्मा 'स्नेही'

धरोहर

16. उत्साह — आचार्य रामचंद्र शुक्ल

हिंदी कहानी

17. एक और वाल्मीकि — देवेंद्र कुमार मिश्रा
18. यह समय भी निकल गया — रमेश मनोहरा

हिंदी कविता

19. नदिया की तरह जिया — राधेश्याम बंधु
20. जुते हुए खेत में, असमंजस — केशव शरण
21. हम बनना चाहते हैं मुंशी प्रेमचंद — लाल देवेंद्र कुमार श्रीवास्तव
22. क्वारेंटाइन अनुभूति — डॉ. अंजू सिंह

अनूदित खंड

कहानी

23. यादों की छाया (तमिल कहानी) — तमिलमगन
अनुवाद : डॉ. वी. पदमावती
24. जड़ (कन्नड कहानी) — केशव रेड्डी हंद्राला
अनुवाद : डी. एन. श्रीनाथ

कविता

25. धँसा हुआ (मराठी / हिदी) — प्रो. सौ. कांचन थोरात
अनुवाद : प्रो. शौकत आतार
26. अचानक (ओड़िया / हिंदी) — सौभाग्यवंत महाराणा
अनुवाद : डॉ. ममता
प्रियदर्शिनी साहु

परख

27. विज्ञान को लोकप्रिय बनाते डॉ. कोहली (विज्ञान की नई दिशाएँ / डॉ. दीपक कोहली) — डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'
28. उजाले का संदेश (उजाले के लिए / गीत–नवगीत संग्रह / डॉ. राकेश 'चक्र') — डॉ. सुधांशु शेखर

29. बदलते समय की रेत पर ज़िंदगी के निशान : भटक्यो बहुत प्रकाश (भटक्यो बहुत प्रकाश / चंद्रभानु भारद्वाज) — रमेश खत्री

30. कुछ आखिरी नहीं होता : जीवन की अक्कासी (कुछ आखिरी नहीं।होता / डॉ. ओम प्रकाश शर्मा'प्रकाश') — डॉ. स्नेह सुधा नवल

जुलाई–अगस्त 2021

आलेख

1. भारतीय साहित्य का प्रतिफलित आशय — डॉ. मनीष कुमार मिश्रा एवं डॉ. उषा आलोक दुबे
2. स्त्री पीड़ा और बाल मनोविज्ञान की मार्मिक कथा 'गुलकी बन्नो' — पंचराज यादव
3. क्या साहित्य बंद कमरे में पढ़ाया जाना चाहिए — डॉ. हरेंद्र सिंह
4. ओड़िशा के जनजातीय यथार्थ : साहित्य बनाम लोक — निहारिका मिश्र
5. हिंदी जाति की अवधारणा और डॉ. रामविलास शर्मा — डॉ. प्रफुल्ल कुमार
6. सुमित्रानंदन पंत का प्रकृति प्रेम — डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'
7. आदिवासी हालात और जनसंघर्षों की पड़ताल — केदार प्रसाद मीणा
8. बाज़ारीकरण के दौर में वैश्वीकरण का संकट — बिर्ख खडका डुवर्सेली
9. दक्षिण प्रांतों में राजभाषा हिंदी का वर्तमान — डॉ. के. श्रीलता विष्णु
10. अवधी भाषा के लोकगीतों में समाज और संस्कृति — डॉ. अमिता तिवारी
11. पत्रकारिता एवं जनसंचार के माहौल में हिंदी के बढ़ते रोजगार — रजत रानी मीनू (आर्य)
12. हिंदी सिनेमा में स्त्री निर्माता–निर्देशकों की भूमिका (निर्देशक अपर्णा सेन के संदर्भ में) — डॉ. विधि शर्मा
13. द्विजदेव की काव्यभाषा — डॉ. प्रदीप कुमार
14. छंदमुक्त काव्य और नई कविता — डॉ. अमृत कुमार

साक्षात्कार

15. हिंदीतरभाषी वरिष्ठ बालसाहित्यकार डॉ. शकुंतला कालरा का साक्षात्कार — डॉ. वेद मित्र शुक्ल

एकांकी नाटक

16. स्यमंतक की खोज — डॉ. दादूराम शर्मा

कहानी

17. जन्नत — डॉ. पंकज साहा
18. कत्लगाह — दिलीप कुमार

कविता

19. अकेली लड़की कमजोर नहीं होती — निवेदिता झा
20. परछाईं — संतोष श्रीवास्तव 'सम'

अनूदित खंड

कहानी

21. अंजीर (पंजाबी कहानी)	प्रो. फूलचंद मानव अनुवाद : प्रो. योगेश्वर कौर
22. सहने की सीमा (मैथिली कहानी)	अनुवाद : गंगेश गुंजन

कविता

23. चाँदमाला (बांग्ला / हिंदी)	सुनील गंगोपाध्याय अनुवाद : दिलीप कुमार शर्मा 'अज्ञात'
24. कविता (ओड़िया / हिंदी)	डॉ. मनोरंजन विसोई अनुवाद : यज्ञदत्त सामंतराय

परख

25. समय सापेक्ष दोहा–संग्रह 'दर्पण समय का' (दर्पण समय का / हरीलाल 'मिलन')	डॉ. कल्पना शर्मा
26. प्रेम की सौंदर्यानुभूति का सतरंगी संसार : पॉल की तीर्थयात्रा (पॉल की तीर्थयात्रा / अर्चना पैन्यूली)	योगेंद्र सिंह

सितंबर–अक्तूबर 2021

आलेख

1. विश्व मंच पर हिंदी	प्रो. मंजुला राणा
2. हिंदी की दशा–दिशा व चुनौतियाँ	गजानन पांडेय
3. देवनागरी लिपि वैज्ञानिक है	डॉ. सुशील कुमार पांडेय 'साहित्येंदु'
4. राजभाषा हिंदी का महत्व	राजेंद्र परदेसी
5. सूचना प्रौद्योगिकी और नागरी लिपि	गजानन सुरेश वानखेडे
6. हिंदी का आरंभिक युग : सामाजिक, राजनीतिक सरोकार	ब्रजेंद्र त्रिपाठी
7. नया मीडिया और हिंदी के बढ़ते चरण	संपतदेवी मुरारका
8. भाषा का मानकीकरण और हिंदी	डॉ. दिनकर प्रसाद
9. राजभाषा हिंदी का विकास : दशा व दिशा	रामशरण युयुत्सु
10. राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन–राष्ट्रभाषा बनाम राजभाषा–हिंदी	दानबहादुर सिंह
11. भारतीय भाषाओं की संपर्क–लिपि : देवनागरी	डॉ. व्यास नारायण दुबे
12. उत्तराखंड के पुरातात्विक धरातल पर राहुल सांकृत्यायन	डॉ. अनूप प्रसाद
13. विश्वभाषा के सिंहासन की ओर हिंदी	डॉ. शशिकांत मिश्र
14. छायावाद में प्रकृति और स्त्री	डॉ. चंद्रभान सिंह यादव
15. राजभाषा व राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के भावी विकास की दिशाएँ एवं नई शिक्षा नीति–2020	प्रो. निरंजन कुमार

साक्षात्कार
16. रामदरश मिश्र से प्रियंका कुमारी की बातचीत — प्रियंका कुमारी
यात्रा वृत्तांत
17. एवरेस्ट की छाँव में — कृष्ण कुमार 'कनक'

कहानी
18. एक प्रोफेसर की डायरी — डॉ. पवन कुमार खरे
19. छँटती हुई काई — शमा ख़ान
कविता
20. हिंदी है मेरी पहचान — सविता दास 'सवि'
21. महान क्रांतिकारी देशभक्त सुभाष को नमन — डॉ. नरेश कुमार

अनूदित खंड
कहानी
22. बक्षीस (मराठी कहानी) — दीपक तांबोली
अनुवाद : डॉ. अशोक बाचुलकर
23. संध्या (डोगरी कहानी) — प्रो. ललित मगोत्रा
अनुवाद : प्रो. भारत भूषण शर्मा

कविता
24. बुखार (मलयालम/हिंदी) — डॉ. एल तोमस कुट्टी
अनुवाद : डॉ. प्रमोद कोवप्रत
25. ढलती साँझ का सूरज (डोगरी/हिंदी) — पद्मा सचदेव
अनुवाद : कृष्ण शर्मा

परख
26. मानव मन के गहरे अँधेरे कोनों की पड़ताल करता उपन्यास–दृश्य से अदृश्य का सफर (दृश्य से अदृश्य का सफर/उपन्यास/सुधा ओम ढींगरा) — पंकज सुबीर

27. साहित्य, संस्कृति और भाषा (साहित्य, संस्कृति और भाषा/ऋषभदेव शर्मा) — डॉ. गुर्रमकोंडा नीरजा

नवंबर–दिसंबर 2021

आलेख
1. राम कथा कै मिति जग नाहीं — प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित
2. महात्मा गांधी और राम कथा : 'रामनाम' से 'हे राम' की यात्रा — डॉ. कमल किशोर गोयनका

3. मर्यादा पुरुषोत्तम राम एवं आद्या शक्ति सीता	डॉ. योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'
4. राम तत्व की ही प्रधानता : धर्मनगरी अयोध्या	प्रो. पूरनचंद टंडन
5. रीतिकाल के रामपरक प्रबंध काव्य	प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल
6. राम तत्व की निर्मिति में अभिवादन का महत्व	डॉ. नृत्य गोपाल
7. राम काव्य परंपरा और आधुनिक राम काव्य का स्वरूप	डॉ. दीनदयाल
8. रामचरितमानस में मानव मूल्यों का चित्रण एवं स्थापना	अखिलेष आर्येंदु
9. रहीम के राम	हरींद्र कुमार
10. रामकाव्य परंपरा का परम महाकाव्य रघुवंश शिरोमणि श्रीराम	डॉ. नरेश मिश्र
11. 'अपने–अपने राम' के राम	डॉ. शालिनी राजवंशी
12. रामचरितमानस में निर्गुण–सगुण–तत्व–समन्वय	डॉ. शुकंतला कालरा
13. राम कवन प्रभु पूछऊँ तोही	वीरेश कुमार
14. मैं न जिऊँ बिन राम	नीरजा माधव
15. रामचरितमानस में राम का मानवीय सरोकार	डॉ. दीपक कुमार पांडेय
16. तुलसी के राम काव्य में राम तत्व का सौंदर्य	साक्षी जोशी
17. तुलसीदास के साहित्य में सामाजिक चिंतन	डॉ. अहिल्या मिश्र
18. राम कौन हैं? रामायण क्या है?	गन्नू कृष्णामूर्ती
19. राम–तत्व की मीमांसा	डॉ. प्रभु वि उपासे
20. प्रकृति के संरक्षण में राम कथा	डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह
21. श्रीलंका की नृत्य–नाटिकाएँ एवं आधुनिक रंगमंच की रामलीलाएँ	डॉ. अमिला दमयंती
22. उर्दू कविता में रामकथा प्रसंग	डॉ. शेख़ अब्दुल ग़नी
23. राम भक्ति संप्रदाय के कवि और चैतन्य दर्शन	डॉ. शशिकांत मिश्र
24. रामचरितमानस में मनोवृत्तियों के उदात्तीकरण की उद्भावनाएँ	डॉ. दीपिका विजयवर्गीय
25. रामायण और भारतीय संस्कृति	प्रो. जयंतकर शर्मा
26. बंगाली संस्कृति और राम कथाः एक सांस्कृतिक विमर्श	प्रो. निरंजन कुमार
27. मानवीयता और जीवन–मंगल का महाकाव्य : रामचरितमानस	डॉ. आलोक रंजन पांडेय
28. रामायण और रामचरितमानस में 'राम'	डॉ. वेदप्रकाश
29. भोजपुरी लोकश्रुति परंपरा में राम कथा	प्रो. सुनील कुमार तिवारी
30. निराला के राम (निराला कृत 'राम की शक्तिपूजा' के विशेष संदर्भ में)	डॉ. अभिषेक शर्मा
31. रामभक्ति रस का पूर्ण परिपाक : विनयपत्रिका	प्रो. दिलीप सिंह
32. निराला के राम	डॉ. तृप्ता
33. वाल्मीकि रामायण के महारहस्य के उद्घाटक गुंटूर शेषेंद्र शर्मा	डॉ. जे. आत्माराम
34. तुलसीदास की भक्ति भावना और विशिष्टाद्वैतवाद	डॉ. देवी प्रसाद तिवारी

जनवरी–फरवरी 2022

आलेख

1.	ब्रिटेन और नारी जागरण	डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय
2.	'असाध्य वीणा' में 'महाशून्य की अनुगूँज'	डॉ. जयपाल सिंह प्रजापति
3.	गढ़वाल की अनूठी परंपरा – बेड्वार्त : स्वरूप और महत्व	डॉ. वीरेंद्र सिंह बर्त्वाल
4.	गणतंत्र की जन्मभूमि बज्जि संघ की जनपदीय भाषा बज्जिका–उद्भव, विकास तथा हिंदी से पारस्परिक संबंध	डॉ. विनोद कुमार सिन्हा
5.	आहोम वीरांगना सती जयमती	डॉ. जिनाक्षी चुतीया
6.	औपनिवेशिक भारत में कला–इतिहास लेखन : चुनौती और मुद्दे	रिपुंजय कुमार ठाकुर
7.	कश्मीर विषयक हिंदी कविता : उद्भव और विकास	उमर बशीर
8.	मातृभाषा के द्वारा अध्ययन और अध्यापन का समालोचनात्मक विमर्श	डॉ. ज्ञानेंद्र कुमार
9.	आदिवासी विमर्श में अस्मिता और अपनी भाषा अस्मिता के बचाव	सुरेंद्र कुमार
10.	अबकी अगर लौटा तो मनुष्यतर लौटूँगा	कुमार सौरभ एवं डॉ. अनुशब्द
11.	उत्तराखंड के पुरातात्विक धरातल पर राहुल सांकृत्यायन	डॉ. अनूप प्रसाद
12.	सिनेमा की भाषा और उसका सौंदर्य	डॉ. विजय कुमार मिश्र

साक्षात्कार

13.	देश के प्रमुख गीतकार अश्विनी कुमार आलोक से शोधार्थी संजय सिंह यादव का साक्षात्कार	संजय सिंह यादव

यात्रा वृत्तांत

14.	ऑस्ट्रेलिया दिवस, डैडिनांग और चेस्टन कैपिटल	प्रो. फूलचंद मानव

कहानी

15.	पागल पत्नी	देवेंद्र कुमार मिश्रा
16.	ऑटो खाली है	मनीष कुमार सिंह

कविता

17.	पिता	रमेशचंद्र पंत
18.	चाह	हेमंत गुप्ता
19.	तो भी क्यूँ	राम जैसवाल

अनूदित खंड

कहानी

20. चाँदनी रात की कहानी, खत्म नहीं हुई (मराठी कहानी)	तरुणकांति मिश्र अनुवाद : एनी राय
21. ग्वालिन (गुजराती कहानी)	कंचनलाल मेहता, 'मलयानील' अनुवाद : प्रो. (डॉ.) नलिनी पुरोहित

कविता

22. अऋतु ऋतु (ओड़िया / हिंदी)	डॉ. फनी महांति अनुवाद : डॉ. ममता प्रियदर्शिनी साहु
23. विवशता (मराठी / हिंदी)	प्रो. सौ. कांचन थोरात अनुवाद : प्रो. शौकात आतार

परख

24. संघर्ष के हथौड़ों में टूटती चट्टान (संघर्ष के लम्हें / काव्य संग्रह / लेखक–शुभदर्शन)	डॉ. वांमती रामचंद्रन
25. जीवन के महत्वपूर्ण सरोकारों से टकराती ग़ज़लें (लोग जिंदा हैं / ग़ज़ल संग्रह / लेखक–विनय मिश्र)	कुसुमलता सिंह
26. आधुनिक नारी का जीवन संघर्ष और जिजीविषा (लरकाई की वह प्रेम पिपासा / उपन्यास / लेखिका–उषा देव)	डॉ. संतोष खन्ना

स्मृतियाँ

27. लता जी का जाना जैसे संगीत के सर से साए का गुजर जाना	विनोद अनुपम
28. बप्पी लहरी : जिनके संगीत में थी सोने सी चमक–दमक	नीति सुधा

मार्च–अप्रैल 2022

आलेख

1. खामती भाषा एवं खामती रामायण 'लीक चाओ लामाङ'	प्रो. दिनेश कुमार चौबे
2. त्रिपुरा की जमातिया जनजाति में भक्ति का स्वरूप	डॉ. मिलन रानी जमातिया
3. पूर्वोत्तर राज्यों में प्रांतीय भाषाओं के विकास में हिंदी की भूमिका	प्रो. विनीता कुमारी
4. पूर्वोत्तर में नव–प्रतिरोधी संस्कृति के प्रणेता हिजाम इरावत	दिनेश कुमार वर्मा
5. त्रिपुरा की जनजातीय भाषा कॉकबरक का विकास	मुनींद्र मिश्र

	और लिपि का द्वंद्व	
6.	पूर्वोत्तर की भाषा, साहित्य और संस्कृति के प्राण–बांधव शंकर–माधव	डॉ. दीपक कुमार गुप्ता
7.	गालो जनजाति की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना	डॉ. तादाम रूती
8.	चोमांगकान : कार्बी जनजाति का सर्वप्रमुख मृत्यु–अनुष्ठान	प्रो. जय कौशल
9.	त्रिपुरी लोकगीतों में समाज एवं संस्कृतिः एक दृष्टि	डॉ. बीना देबबर्मा
10.	नेपाली भाषा के आदिकवि भानुभक्त आचार्य	डॉ. अभिजीत सिंह
11.	पूर्वोत्तर भारत का भाषिक परिदृश्य और हिंदी का भविष्य	वीरेंद्र परमार
12.	पूर्वोत्तर भाषा साहित्य	डॉ. उर्मिला शर्मा
13.	बिहू नृत्य आज बनी असम की पहचान	नूतन पांडेय
14.	असम की भाषा–समस्या	डॉ. जाहिदुल दीवान
15.	मेघालय के खासी लोककथाओं, मिथकों में मानवीय चेतना के स्वर	डॉ. अनीता पंडा
16.	असम के असमिया आदिवासी समुदायों के सांस्कृतिक स्वरूप एवं उनके लोकगीत	जीतू कुमार गुप्ता
17.	पूर्वोत्तर में प्राचीन भारतीय संस्कृति के उत्स	डॉ. रधुनाथ पांडेय
18.	बोकार लोकगीतों में अभिव्यक्त धार्मिक मान्यताएँ	पासांग रुकू
19.	पूर्वोत्तर की जनभाषाओं में लोकसंस्कृति	डॉ. संजय प्रसाद श्रीवास्तव
20.	असमिया जातीय–जीवन की रूपरेखा नामघर	डॉ. शरिफुज जामान
21.	पूर्वोत्तर भारत की अतुल्य भाषा, संस्कृति	प्रियंका कुमारी
22.	पूर्वोत्तर भारत के त्योहारों में लोक जीवन की अभिव्यक्ति	डॉ. सुनील कुमार शॉ
23.	असम की चाय जनगोष्ठी में स्त्री–जीवन	प्रियंकादास
24.	असमिया के आंचलिक उपन्यास 'सेई नदी निरबधि' और 'पिता–पुत्र' में चित्रित शिक्षा व्यवस्था	शहिदुल इस्लाम खान
25.	सिक्किम की सांस्कृतिक विरासत	उपमा शर्मा

मई–जून 2022

अनुक्रमणिका

आलेख

1.	अर्थविज्ञान की भारतीय एवं पाश्चात्य परंपरा का आर्थी सिद्धांत	त्रिभुवननाथ शुक्ल
2.	हिंदी बनाम अन्य भारतीय भाषाएँः प्रभावात्मक अंतर्संबंध	संध्या वात्स्यायन
3.	छायावादी काव्यः उद्भव एवं विकास की परिस्थितियाँ	नीलम सिंह
4.	भाषा और जेंडर	भावना मासीवाल

5. उत्तर बंगाल में हिंदी साहित्य का अतीत और वर्तमान — मुन्ना लाल प्रसाद
6. वर्तमान शिक्षक शिक्षा में सृजनात्मकता, समायोजन एवं प्रबंधन शैली का महत्व — सुनीता चौधरी एवं विशी शर्मा
7. चिंतामणिः समालोचना का बीजक — कृष्ण बिहारी पाठक
8. कवि 'निशंक' की रचनाधर्मिता– 'मृगतृष्णा : दर्पण अंतर्मन का' — निशा शर्मा
9. हिंदी का वैश्विक शिक्षणः कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न — मीरा सरीन
10. वृद्धों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति और उसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति — सविता धामा
11. समकालीन विमर्शों के दौर में 'राम' की प्रासंगिकता — मानसी रस्तोगी
12. भारतीय समाज का सशक्त स्वर : सिनेमा — कुमारी उर्वशी

यात्रा वृत्तांत

13. धौलाधार पर्वत श्रृंखला की गोद में स्थित–बौद्ध आध्यात्मिकता का प्रवेश द्वार –रमणीय पर्वतीय स्थल मैकलोडगंज (मिनी ल्हासा) — प्रदीप शर्मा 'स्नेही'

हिंदी कहानी

14. अफसोस के लिफाफे — सुमन बाजपेयी
15. दहशत — भगवान अटलानी
16. सबरस — अजय मलिक
17. बड़ी–बड़ी आँखें — रामदरश मिश्र

हिंदी कविता

18. महान ऋषिवरः मानव उद्धारक स्वामी दयानंद सरस्वती — नरेश कुमार
19. उस दौर में — देवेंद्र कुमार मिश्रा
20. कल्पवृक्ष — हेमंत गुप्ता

अनूदित खंड

कहानी

21. तिम्मा (मराठी कहानी) — प्रकाश ज्ञानोबा जाधव, अनुवादः सुनीता मोटे
22. बेटी लौट आई (ओड़िया कहानी) — गौरहरि दास, अनुवादः सुरभि बेहेर

कविता

23. सृष्टि, जीवन और मानव (डोगरी/हिंदी) — अनुवादः कृष्ण शर्मा

परख

24. स्त्री–जीवन और समकालीन यथार्थ को अभिव्यक्ति देती ग़ज़लें (आँगन का शजर/ ग़ज़ल संग्रह/लेखक– ममता किरण) — कमलेश भट्ट कमल

25. कुछ आखिरी नहीं होताः जीवन की अक्कासी (कुछ आखिरी नहीं होता/कविता संग्रह/लेखक– ओम प्रकाश शर्मा) — स्नेह सुधा नवल

26. समय को सही परिप्रेक्ष्य देने की कोशिश (गांधी को समझने का यही समय/ लेखक : जगमोहन सिंह राजपूत) — जितेंद्र श्रीवास्तव

जुलाई–अगस्त 2022

आलेख

1. गयानी हिंदी–हिंदी की विदेशी भाषिक शैली — विमलेश कांति वर्मा
2. बंग–भंग आंदोलन : गांधी एवं प्रेमचंद तथा 'सोज़ेवतन' कहानी संग्रह — कमल किशोर गोयनका
3. महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और माजुली की मुखौटा कला — आदित्य कुमार मिश्र
4. निराला की कविताओं में विवेकानंद का भाववाद — राजेंद्र परदेसी
5. जनकवि नागार्जुन : काव्य की अंर्तवस्तु — लीला मोदी
6. राम कथा और प्रेमचंद — आनंद पांडेय
7. कृष्णा सोबती–एक प्रखर कथाकार — रवि शर्मा 'मधुप'
8. परदे पर प्रेमचंद — प्रताप सिंह
9 डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की सामाजिक उपादेयता — रुचि कुमारी शर्मा
10. हिंदी, तमिल तथा तमिल–हिंदी अनुवाद परंपरा और प्रदेय — पी. राजरत्नम
11. रामदरश मिश्र : वसंत–व्यक्तित्व और मूल्यनिष्ठ सर्जना — वेदप्रकाश अमिताभ
12. अमृता शेरगिल : एक अनथक और युगांतरकारी पेंटर — अर्पण कुमार
13 लुप्तप्राय होने के कगार पर कैथी लिपि : दशा और दिशा — संजय प्रसाद श्रीवास्तव
14 महिला उपन्यासकारों की उपन्यास दृष्टि — रंजय कुमार सिंह

धरोहर

15. नीम — सुभद्रा कुमारी चौहान

यात्रा वृत्तांत

16. दो बार सिंगापुर — रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

हिंदी कहानी

17. माँ का दुःख — पवन कुमार खरे

लोककथा

18. हे पुत्र! तू सच्चा था — राकेश चक्र

हिंदी कविता

19. माँ — सत्यनारायण भटनागर
20. खुद बनूँगी अपने पंख — प्रदीप शर्मा 'स्नेही'
21. वल्लरी — सविता दास सवि

अनूदित खंड

कहानी

22. चंपा (मैथिली कहानी) — श्याम दरिहरे
    अनुवाद : वैद्यनाथ झा
23. ठूलो साइँला (नेपाली कहानी) — मूल एवं अनुवाद
    वीरभद्र कार्कीढोली

कविता

24. दो कविताएँ (राजस्थानी/हिंदी) — मूल और अनुवाद : निशांत

परख

25. चुनौतियों का स्वीकार्य, संघर्षशीलता तथा स्त्री–विमर्श पहचान हैं चित्रा मुद्गल की (चित्रा मुद्गल एक शिनाख़्त, संपादक : महेश दर्पण, परिकल्पना : जितेंद्र पात्रो) — करुणा शर्मा
26. भाषा : उद्गम से सृजन तक (संभव होने की अजस्त्र धारा/ लेखक : पवन माथुर) — निशा नाग

संपर्क सूत्र

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक
केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066
ई.मेल – chdsalesunit@gmail.com
फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए/ बीस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय/ बीसवर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : .....
पूरा पता : .....
.....
.....
मोबाइल/दूरभाष : .....
ई–मेल : .....
संबद्धता/व्यवसाय : .....
आयु : .....
पूरा पता जिस पर : .....
पत्रिका प्रेषित की जाए .....

सदस्यता	शुल्क डाकखर्च सहित
वार्षिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

भाषा द्वैमासिक पत्रिका के मार्च अप्रैल 2022 अंक का द्वितीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन, सूरत में लोकार्पण

'भाषा' द्वैमासिक पत्रिका की ओर से तिरुवनंतपुरम में अक्तूबर 2022 में आयोजित राष्ट्रीय साहित्यक परिसंवाद

'भाषा' द्वैमासिक पत्रिका की ओर से तिरुवनंतपुरम में अक्तूबर 2022 में आयोजित राष्ट्रीय साहित्यक परिसंवाद

'भाषा' द्वैमासिक पत्रिका की ओर से ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश में नवंबर 2022 में आयोजित राष्ट्रीय साहित्यक परिसंवाद

'भाषा' द्वैमासिक पत्रिका की ओर से ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश में नवंबर 2022 में आयोजित राष्ट्रीय साहित्यक परिसंवाद

'भाषा' द्वैमासिक पत्रिका के जनवरी–फरवरी 2022 अंक का ओड़िया भाषा में अनूदित संस्करण का लोकार्पण

'भाषा' द्वैमासिक पत्रिका के मई–जून 2022 अंक का लोकार्पण

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-6-2022
700

भाषा
नवंबर–दिसंबर 2022(विशेषांक)

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chd.education.gov.in
www.chdpublication.education.gov.in
bhashaunit@gmail.com